हिंदीभाषा का इतिहास

लेखक
धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०
रीडर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग
१९३३

प्रकाशक
हिंदुस्तानी एकेडेमी
प्रयाग

मूल्य { सजिल्द ४)
{ बिना जिल्द ३॥)

मुद्रक
महेन्द्रनाथ पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

पूज्य गुरु

महामहोपाध्याय

पंडित गंगानाथ झा

एम० ए०, डी० लिट्०, एलेल्० डी०,

विद्यासागर

की सेवा में

सादर समर्पित

वक्तव्य

भाषाविज्ञान के सर्वसम्मत सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुये आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन कुछ यूरोपीय विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ किया था। इस विषय पर प्रथम महत्वपूर्ण पुस्तक जान बीम्स कृत 'भारतीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' (*कम्पैरेटिव ग्रैमर आव दि माडर्न एरियन लैंग्वेजेज़ आव इंडिया*) है। इसका 'ध्वनि' शीर्षक प्रथम भाग १८७२ ई० में, 'संज्ञा तथा सर्वनाम' शीर्षक दूसरा भाग १८७५ ई० मे तथा 'क्रिया' शीर्षक तीसरा भाग १८७९ ई० मे प्रकाशित हुआ था। प्रथम भाग में लगभग सवा सौ पृष्ठ की भूमिका भी है। इस वृहत् ग्रंथ में बीम्स ने हिन्दी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया तथा बंगाली भाषाओं के व्याकरणों पर तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है और व्याकरण के प्रत्येक अंग के संबंध में बहुत सी उपयोगी सामग्री एकत्रित की है। बीम्स का 'ध्वनि' विषय पर प्रथम भाग उदाहरणों के कारण विशेष रोचक है। लगभग आधी सदी बीत चुकने पर भी न तो बीम्स के ग्रंथ का दूसरा संस्करण हो सका और न कोई अन्य अधिक पूर्ण ग्रंथ इस विषय पर निकल सका। अतः त्रुटिपूर्ण तथा अत्यन्त पुराना होने पर भी बीम्स का ग्रंथ आधुनिक भारतीय-आर्यभाषाओं के विद्यार्थी के लिये अब भी महत्व रखता है।

१८७६ ई० में ईसाई मिशनरी केलाग का 'हिन्दीभाषा का व्याकरण' (*ग्रैमर आव दि हिन्दी लैंग्वेज*) प्रकाशित हुआ था। इस हिन्दी व्याकरण की विशेषता यह है कि इस मे साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी के व्याकरण के साथ साथ तुलना के लिये ब्रजभाषा, अवधी आदि हिन्दी की मुख्य मुख्य

बोलियों तथा राजस्थानी, बिहारी और मध्यपहाड़ी भाषाओं की भी सामग्री जगह जगह पर दी गई है। साथ ही प्रत्येक अध्याय के अन्त में व्याकरण के मुख्य मुख्य रूपों का इतिहास भी संक्षेप में दिया गया है। केलाग के हिन्दी व्याकरण का दूसरा परिवर्द्धित तथा सशोधित सस्करण निकल चुका है। यह हिन्दी व्याकरण अपने ढंग का अकेला ही है।

१८७७ ई० मे रामकृष्ण गोपाल भंडारकर ने भारतीय आर्यभाषाओं पर सात व्याख्यान ('विलसन फ़िलालोजिकल लेक्चर्स') दिये थे जो १९१४ में पुस्तकाकार छपे थे। इनमें प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं का विवेचन अधिक विस्तार से किया गया है। कुछ व्याख्यान आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं पर भी हैं जिन मे इन भाषाओं से संबंध रखने वाली अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। एक भारतीय विद्वान का अपने देश की भाषाओं के संबंध में आधुनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का यह प्रथम प्रयास है। बीसवीं सदी के दृष्टिकोण से देखने पर इन व्याख्यानों के बहुत से अंश पुराने मालूम पड़ते हैं।

बीम्स के समकालीन विद्वान रूडल्फ़ हार्नली का 'पूर्वी हिन्दी व्याकरण' ('ग्रैमर आव दि ईस्टर्न हिन्दी) १८८० ई० मे प्रकाशित हुआ था। पूर्वी हिन्दी से हार्नली का तात्पर्य आधुनिक बिहारी तथा अवधी से है। वास्तव में भोजपुरी का विस्तृत वर्णनात्मक व्याकरण देने के साथ साथ हार्नली ने प्रत्येक अध्याय में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाली प्रचुर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक सामग्री दी है जिसमें कुछ तो बिलकुल नई है। हार्नली का ग्रंथ निबध के रूप में नहीं लिखा गया है इसी कारण लगभग ४०० पृष्ठ के इस छोटे से ग्रंथ मे बीम्स के तीन भागों से भी अधिक सामग्री संगृहीत है। यद्यपि हार्नली के ग्रंथ का भी दूसरा संशोधित संस्करण नहीं निकल सका किन्तु तिसपर भी हार्नली का ग्रंथ आजतक इस विषय पर कोष का सा काम देता है। इस तरह १८७० से १८८० ई० के बीच में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाले कई उपयोगी ग्रंथ निकले जो पुराने हो जाने पर भी आजतक इस विषय के विद्यार्थियों को काम दे रहे हैं।

जार्ज अब्रहम ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अध्ययन उन्नीसवीं सदी के अन्त में ही प्रारंभ कर दिया था। उनके 'बिहारी भाषाओं के सात व्याकरण' (*सेविन ग्रामर्स आव बिहारी लैंग्वेजेज़*) १८८३ ई० से १८८७ ई० तक निकल चुके थे किन्तु उनकी सब से बड़ी कृति 'भारतीय भाषाओं की सर्वे' (*लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया*) १८९४ ई० मे प्रारम्भ हुई थी और १९२७ ई० में समाप्त हुई। यह बृहत् ग्रंथ ग्यारह बड़ी बड़ी जिल्दों मे है जिसमे से अनेक जिल्दो में तीन चार तक पृथक् भाग हैं। ग्रियर्सन को भाषासर्वे में उत्तर भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं, उपभाषाओं तथा बोलियो के बहुत से नमूने संगृहीत हैं और इन नमूनों के आधार पर इसमें समस्त मुख्य बोलियों के संक्षिप्त व्याकरण भी दिये हैं। जिल्द ९, भाग १ मे पश्चिमी हिन्दी की तथा जिल्द ६ मे पूर्वी हिन्दी की सामग्री है। हिन्दी की भिन्न भिन्न आधुनिक बोलियो की सीमाओं तथा उनके ठीक ठीक रूप का वैज्ञानिक वर्णन पहले पहल इन्हीं जिल्दों मे मिलता है। जिल्द १ भाग १ में संपूर्ण ग्रंथ की भूमिका है। भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास का सब से अधिक प्रामाणिक तथा क्रमबद्ध वर्णन इस भूमिका मे सुगमता से मिल सकता है। प्रत्येक जिल्द मे नक्शो के होने से इस बृहत् ग्रंथ की उपादेयता और भी बढ़ गई है।

उत्तर भारत की समस्त भाषाओं की सर्वे के अतिरिक्त बीसवी सदी मे आकर हिन्दी को छोड़ कर कुछ अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं पर शास्त्रीय ढंग से विस्तृत काम भी हुआ है जिसमे हिन्दी भाषा के पूर्व इतिहास से संबंध रखने वाली थोड़ी बहुत सामग्री बिखरी पड़ी है। इन ग्रंथों मे फ्रांसीसी विद्वान ज्यूल० ब्लाक की फ्रांसीसी मे लिखी हुई 'मराठी भाषा' पर पुस्तक (*ला फ़ॉर्मेसिऑं दु ला लैंग मराथे*, १९१९) तथा सुनीति कुमार चैटर्जी का 'बंगाली भाषा की उत्पत्ति तथा विकास' पर बृहत् ग्रंथ (*आरिजिन ऐंड डेवेलपमेंट आव दि बेंगाली लैंग्वेज*, १९२६) विशेष उल्लेखनीय हैं।

किसी एक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा पर वैज्ञानिक दृष्टि से काम करनेवाले के लिये ब्लाक का मराठी भाषा पर ग्रंथ आदर्श स्वरूप है। चैटर्जी के ग्रंथ में प्रायः प्रत्येक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा से संबंध रखने वाली कुछ न कुछ उपयोगी सामग्री मौजूद है। बंगाली से संबंध रखने पर भी यह ग्रंथ आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास का विश्वकोष कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। पहली जिल्द में लगभग ढाई सौ पृष्ठ की भूमिका है जिसमें भाषा सर्वे की भूमिका के ढंग की बहुत सी वर्णनात्मक सामग्री दी हुई है। पहली जिल्द के शेष भाग मे बंगाली ध्वनियों का इतिहास है तथा दूसरे भाग में व्याकरण के रूपों का इतिहास दिया गया है।

पूर्वी हिन्दी की छत्तीसगढ़ी बोली का कुछ विस्तार के साथ वर्णन हीरालाल काव्योपाध्याय ने हिन्दी मे लिखा था। ग्रियर्सन ने इसका अंग्रेजी अनुवाद करके १९२१ ई० में छपवाया था। विस्तार तथा वैज्ञानिक विवेचन की दृष्टि से यह अध्ययन बहुत आदर्श ग्रंथ नही है। ब्लाक की 'मराठी भाषा' के ढंग का हिंदी भाषा से संबंध रखने वाला अध्ययन प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यापक बाबूराम सकसेना ने पहले पहल किया। अनेक वर्षों के अध्ययन के बाद १९३१ ई० में सकसेना ने प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० लिट्० डिगरी के लिये 'अवधी के विकास' (एवोल्यूशन आव अवधी) पर निबंध दिया। अवधी बोली के इस अध्ययन मे कई विशेषतायें हैं। इस ग्रंथ में पहले पहल एक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की ध्वनियों का प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण तथा वर्णन किया गया है। व्याकरण के अंश में प्रत्येक अध्याय तीन भागों मे विभक्त है। पहले मे आधुनिक अवधी का विस्तृत तथा वैज्ञानिक वर्णन है, दूसरे में रामचरितमानस और पद्मावत के आधार पर पुरानी अवधी का वर्णन है और तीसरे भाग में संक्षेप में अवधी व्याकरण के रूपों का इतिहास दिया गया है। प्रकाशित होने पर यह ग्रंथ हिन्दी की एक मुख्य बोली का प्रथम वैज्ञानिक तथा विस्तृत वर्णन समझा

जायगा। केवल अवधी बोली से संबंध रखने के कारण आधुनिक साहित्यिक खडीबोली हिंदी तथा प्राचीन मुख्य साहित्यिक बोली ब्रजभाषा की बहुत सी समस्याओं पर यह ग्रंथ भले ही विशेष प्रकाश न डाल सके किन्तु तो भी हिन्दी भाषा तथा उसकी बोलियो पर काम करने के लिये यह ग्रंथ आदर्श पथप्रदर्शक के समान रहेगा।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के शब्दसमूह का पहला तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन टर्नर के नेपाली भाषा के कोष (नेपाली डिक्शनरी, १९३१) मे मिलता है। इस नेपाली-अंग्रेजी कोष मे यथासंभव समस्त भारतीय आर्यभाषाओं के रूप देने का यत्न किया गया है। अन्त मे प्रत्येक भाषा की दृष्टि से शब्द सूचिये दी हुई हैं जिनसे प्रत्येक भाषा के उपलब्ध शब्द तथा उनके रूपान्तर आसानी से मिल सकते हैं। अपने ढंग का पहला प्रयास होने के कारण यह कोष बहुत पूर्ण नही है किन्तु तो भी लेखक का परिश्रम तथा खोज अत्यन्त सराहनीय है। भारतीय आर्यभाषाओं से सबंध रखने वाला वास्तव मे यह प्रथम वैज्ञानिक नैरुक्तिक कोष है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास तथा तुलनात्मक अध्ययन से संबंध रखने वाले ऐसे मुख्य मुख्य ग्रंथों का उल्लेख ऊपर किया गया है जो हिन्दी भाषा के इतिहास के अध्ययन मे किसी न किसी रूप से सहायक हैं। इन ग्रंथो के अतिरिक्त अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा जर्मन पत्रिकाओं मे इस विषय पर अनेक उपयोगी लेख निकले हैं जिनमे बहुत सी नई खोज मौजूद है। उदाहरण के लिये ग्रियर्सन का 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे बलात्मक स्वराघात' (ज० रा० ए० सो०, १८९५, पृ० १३९) शीर्षक लेख तथा टर्नर का गुजराती ध्वनिसमूह (ज० रा० ए० सो०, १९२१, पृ० ३२९, ५०५) शीर्षक लेख अत्यन्त महत्व पूर्ण हैं। इस तरह की सामग्री से परिचय प्राप्त किये विना इस विषय के विद्यार्थी का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता। यहाँ इस सामग्री का विस्तृत वर्णन करना संभव नही है।

यद्यपि यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने अंग्रेजी के माध्यम से इतना काम कर डाला है तथा आगे भी कर रहे हैं, किन्तु अत्यन्त खेद के साथ

कहना पड़ता है कि हिन्दी में आज तक इस विषय पर एक भी उल्लेखनीय ग्रंथ नही निकला है। समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अध्ययन तो दूर की बात है स्वयं हिन्दीभाषा का ही ऐतिहासिक अथवा तुलनात्मक व्याकरण अथवा हिन्दी की किसी एक भी बोली का प्रामाणिक वैज्ञानिक अध्ययन हिन्दी मे अभी तक मौजूद नही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का *हिंदी भाषा* शीर्षक विवेचन (१८९०), बालमुकुन्द गुप्त की *हिंदी भाषा* (१९०८ ई०), महावीर प्रसाद द्विवेदी की *हिंदी भाषा की उत्पत्ति* (१९०७ ई०) और बद्रीनाथ भट्ट की *हिन्दी* (१९२४ ई०) पुस्तकाकार वर्णनात्मक निबंध मात्र हैं जिनमें से कुछ में हिन्दी साहित्य और भाषा दोनों का विवेचन मिश्रित है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की *हिन्दी भाषा की उत्पत्ति* तथा हिंदी साहित्यसम्मेलन द्वारा प्रकाशित *नागरी अंक और अक्षर* शीर्षक निबंध-संग्रह बहुत दिनों तक हिन्दी विद्यार्थियों के पथ प्रदर्शक रहे हैं। इन विषयों पर हिन्दी ग्रंथ समूह की अवस्था का बोध इसी से हो सकता है। हिन्दी के सिर को ऊँचा करने वाला गौरीशंकर हीराचंद ओझा का *प्राचीन भारतीय लिपि माला* (प्रथम संस्करण १८९४ ई०, द्वितीय संस्करण १८९८ ई०) शीर्षक अकेला ही ग्रंथ है किन्तु इसमें देवनागरी लिपि और अंकों का इतिहास है, हिन्दी भाषा से इसका किसी तरह भी संबंध नहीं है। कामताप्रसाद गुरु का *हिन्दी व्याकरण* साहित्यिक खड़ी-बोली के वर्णनात्मक व्याकरण की दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय है किन्तु इसमे व्याकरण के रूपों का इतिहास संकेत रूप मे कहीं कहीं नाम मात्र को ही दिया गया है। इस व्याकरण का यह उद्देश भी नहीं है।

दुनीचंद का लिखा हुआ *पंजाबी और हिंदी का भाषा विज्ञान* (१९२५ ई०) शीर्षक ग्रंथ तुलनात्मक क्षेत्र मे प्रवेश कराता है किन्तु मौलिक होते हुये भी यह कृति बहुत पूर्ण नही है। १९२५ में श्यामसुन्दर दास ने *भाषा विज्ञान* नामक ग्रंथ लिखा था जिस के *हिन्दीभाषा का विकास* शीर्षक अन्तिम अध्याय में पहले पहल आधुनिक सामग्री के आधार पर भारतीय आर्यभाषाओं का संक्षिप्त परिचय तथा हिन्दी भाषा के मुख्य मुख्य रूपों का संक्षिप्त इतिहास देने

का प्रयास किया गया था। यह अध्याय इसी शीर्षक से अलग पुस्तकाकार भी छपा है तथा कुछ संशोधित रूप मे *हिंदीभाषा और साहित्य* ग्रंथ के पूर्वार्द्ध में भी मिलता है। हिंदी भाषा का यह विवेचन हिंदी मे अपने ढग का पहला है किन्तु इसमे बडी भारी त्रुटि यह है कि वर्णनात्मक अंश तथा ऐतिहासिक व्याकरण संबंधी अंश एक दूसरे से मिल गये हैं तथा ऐतिहासिक व्याकरण संबधी सामग्री अत्यन्त संक्षिप्त है। यह कृति हिंदी भाषा के विकास पर पुस्तकाकार विस्तृत निबंध मात्र है। वास्तव मे इस विषय पर हिंदी मे एक अधिक विस्तृत ग्रंथ की बडी आवश्यकता थी। प्रस्तुत *हिंदीभाषा का इतिहास* इसी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयास स्वरूप है।

हिंदी भाषा के इस इतिहास की सामग्री का मुख्य आधार गत साठ वर्ष के अन्दर यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानो द्वारा किया गया आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाला वह कार्य है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पुस्तक मे यथास्थान भिन्न भिन्न विद्वानों के मतों का उल्लेख स्थल निर्देश सहित वराबर किया गया है। बीम्स, हार्नली तथा चैटर्जी के ऐतिहासिक अंशों से विशेष सहायता ली गई है साथ ही पत्रिकाओं मे लेखों के रूप मे फैली हुई सामग्री का भी यथासभव उपयोग किया गया है। पुस्तक का विषय विभाग तथा विषय विवेचन का क्रम चैटर्जी की पुस्तक के ढंग पर रक्खा गया है। हिंदी ध्वनियो का वर्णन सक्सेना के अवधी ध्वनियों के वर्णन की शैली पर है। आधुनिक साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी—हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी—के व्याकरण के ढाँचे को हिंदी बोलियों मे प्रतिनिधि स्वरूप मान कर प्रस्तुत ग्रंथ मे उसी के रूपों का इतिहास देने का प्रयत्न किया गया है। ब्रज तथा अवधी बोलियों से संबंध रखने वाली ऐतिहासिक सामग्री कहो कही दी गई है किन्तु ये अंश पूर्ण नहीं हो सके हैं। वास्तव में पुस्तक का मुख्य उद्देश हिन्दी की बोलियों का विस्तृत इतिहास देना नही है। हिंदी की बोलियों से सबंध रखने वाली सामग्री की वर्तमान परिस्थिति में ऐसा प्रयास करना संभव नहीं था। अन्य आधुनिक भारतीय

आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाली तुलनात्मक सामग्री प्रस्तुत पुस्तक के क्षेत्र के बाहर पड़ती है अतः यह बिलकुल भी नहीं दी गई है। आरंभ में एक विस्तृत भूमिका का देना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसमे हिंदी भाषा तथा उसकी समकालीन तथा पूर्वकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का वर्णनात्मक परिचय है। भूमिका का मुख्य आधार ग्रियर्सन की भाषासर्वे की भूमिका मे पाई जाने वाली सामग्री है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। भूमिका तथा मूल ग्रंथ मे कुछ अंश ऐसे भी हैं जो साधारणतया हिंदी भाषा के इतिहास से संबंध रखने वाले ग्रंथ मे नहीं होने चाहिये थे, जैसे भूमिका मे 'संसार की भाषाओं का वर्गीकरण' अथवा मूल ग्रंथ में 'हिन्दी ध्वनि समूह' शीर्षक पहला ही अध्याय। किन्तु हिंदी मे इस प्रकार की सामग्री के अभाव के कारण तथा हिंदी भाषा के इतिहास को समझने के लिये इन विषयों की जानकारी की आवश्यकता को समझकर इन अपेक्षित रूप से असंबद्ध विषयों का भी समावेश कर लेना आवश्यक समझा गया।

ग्रंथ लिखते समय अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। सब से पहली कठिनाई पारिभाषिक शब्दों के संबंध मे थी। हिंदी में भाषा शास्त्र विषय के पारिभाषिक शब्द एक तो पर्याप्त नहीं हैं दूसरे जो हैं वे सब सम्मति से अभी स्वीकृत नहीं हो पाये हैं। इस कारण बहुत से नये पारिभाषिक शब्द बनाने पड़े तथा अनेक पुराने पारिभाषिक शब्दों को जाँच कर उनमे से उपयुक्त शब्दों को चुनना पड़ा। इस विषय पर भविष्य में काम करने वालों की सुविधा के लिये पारिभाषिक शब्दों की हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी-हिन्दी सूचियें पुस्तक के अन्त मे परिशिष्ट रूप से दे दी गई हैं। ध्वनिशास्त्र संबंधी पारिभाषिक शब्दो मे ग्रैहम बैली की सूची (*बुलेटिन आव दि स्कूल आव ओरियंटल स्टडीज* भाग ३, पृ० २८९) का भी उपयोग किया गया है। दूसरी कठिनाई हिन्दी तथा विदेशी नई ध्वनियों के लिये देवनागरी में नये लिपि-चिह्न बनाने के संबंध मे हुई। इस संबंध में भी बहुत विचार करने के बाद एक निश्चित मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। इन नये लिपि-चिह्नों के ढलवाने में हिन्दुस्तानी एकेडेमी को विशेष व्यय करना पड़ा किन्तु इनके समावेश से पुस्तक

बहुत अधिक पूर्ण हो सकी है तथा इस संबंध मे एक नया मार्ग खुल सका है। सामग्री के जुटाने तथा एक एक रूप के संबंध मे तुलना करने मे जो परिश्रम करना पड़ा वह पुस्तक पर एक दृष्टि डालने से ही विदित हो सकेगा। यह सब होने पर भी पुस्तक की त्रुटियों को मुझसे अधिक और कोई नही समझ सकता। हिंदी भाषा का सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास तभी लिखा जा सकता है जब हिंदी की प्रत्येक बोली पर वैज्ञानिक ढंग से काम हो चुके। अनेक विद्वान वर्षों काम करने के बाद बोलियों के संबंध मे इस तरह की समस्त सामग्री एकत्रित कर सकेंगे। अभी तो इस तरह का काम अच्छी तरह प्रारंभ भी नही हुआ है। ऐसी अवस्था मे हिन्दी भाषा का पूर्ण इतिहास लिखने के लिये दस बीस वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती। इतनी प्रतीक्षा करना व्यवहारिक न समझ कर मैंने हिंदी भाषा के इतिहास के इस पूर्व रूप को हिंदी भाषा के विद्यार्थियों तथा विद्वानों के सामने रख देना आवश्यक समझा। समस्त प्राचीन खोज के एक जगह इकट्ठे हो जाने से आगे बढ़ने मे सुभीता ही होता है। आशा है कि भविष्य मे हिन्दी भाषा के पूर्ण इतिहास के लिखने तथा इस विषय पर नये मार्गों मे खोज करने के लिये यह ग्रंथ पथ-प्रदर्शक का काम दे सकेगा।

अपने अनन्य मित्र श्री बाबूराम सक्सेना के प्रति कृतज्ञता प्रकट किये बिना यह वक्तव्य अधूरा ही रह जायगा। संपूर्ण ग्रंथ को आद्योपान्त पढ़ कर आपने अनेक बहुमूल्य परामर्श दिये। इसके अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दों तथा नये लिपि-चिह्नों के निर्णय करने मे भी आप की सम्मति सदा हितकर सिद्ध हुई। आपके विस्तृत अनुभव तथा सत्परामर्श से मैंने जो लाभ उठाया है उसके लिये मै आपका आभारी हूँ।

अनेक नये लिपि-चिह्नों आदि के प्रयोग के कारण इस पुस्तक की छपाई मे असाधारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रयाग के आदर्श यन्त्रालय लॉ जर्नल प्रेस के पूर्ण सहयोग तथा उत्साह के बिना पुस्तक का इस रूप में मुद्रित होना असंभव था। इस के लिये इस प्रेस के संचालक हार्दिक धन्यवाद तथा बधाई के पात्र हैं।

हिन्दी भाषा के इस इतिहास को लिखने का भार हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने मुझे १९२९ ई० में सौंपा था। तीन वर्ष के परिश्रम स्वरूप अब यह ग्रंथ हिंदी भाषा के विद्यार्थियों तथा विद्वानों के सन्मुख है। मुझे विश्वास है कि यदि इस ग्रंथ का कभी दूसरा संस्करण हुआ तो वह इससे अधिक पूर्ण हो सकेगा।

प्रयाग   धीरेन्द्र वर्मा

मार्च, १९३३

संक्षिप्त-रूप

अं०	अंगरेजी
अ०	अरबी
अ० तत्स०	अर्द्ध तत्सम
अ० माग०	अर्द्ध मागधी
अप०	अपभ्रंश
अव०	अवधी
आ० भा० आ०	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा
इ०	इत्यादि
इ० ब्रि०	इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिक
ई०	ईसवी
उदा०	उदाहरण
एक०	एकवचन
ओझा, भा० प्रा० लि०	ओझा—गौरीशंकर हीराचंद, भारतीय प्राचीन लिपि-माला (१९१८)
कादरी, हि० फो०	कादरी, हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स
कृ०	कृदन्त
के०, हि० ग्रै०	केलाग, हिंदी ग्रैमर (१८७६ ई०)
ख० बो०	खड़ी बोली
गु०, हि० व्या०	गुरु—कामता प्रसाद, हिंदी व्याकरण (विचारार्थ संस्करण)

चै०, बे० लै०	चैटर्जी—सुनीति कुमार, बेंगाली लैंग्वेज—आरिजिन ऐन्ड डेवेलपमेंट (१९२६ ई०)
ज० रा० ए० सो०	जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी
त०	तद्धित
तत्स०	तत्सम
तद्भ०	तद्भव
दे०	देखिये
ना० प्र० प०	नागरी प्रचारिणी पत्रिका
पं०	पंजाबी
पा०	पाली
पु०	पुल्लिंग
पू० ई०	पूर्व ईसा
पृ०	पृष्ठ
प्रा०	प्राकृत
प्रा० भा० आ०	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा
फा०	फारसी
बं०	बंगाली
बहु०	बहुवचन
बिहा०	बिहारी
बी०, क० ग्रै०	बीम्स, कम्पैरेटिव ग्रैमर आव दि माडर्न एरियन लैंग्वेजेज़ आव इंडिया (भाग १, १८७२ ई०; भाग २, १८७५ ई०; भाग ३, १८७९ ई०)
बो०	बोली
ब्र०	ब्रजभाषा
भा०	भाग
भा० आ०	भारतीय आर्यभाषा
भा० ई०	भारत-ईरानी

भा० यू०	भारत-यूरोपीय
म० भा० आ०	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा
महा०	महाराष्ट्री
राज०	राजस्थानी
लि० स०	लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया
वा०, फो० इं०	वार्ड, फोनेटिक्स आव इंगलिश (१९२९ ई०)
शौर०	शौरसेनी
सं०	संस्कृत
सक०, ए० आ०	सकसेना—बाबूराम, एवोल्यूशन आव अवधी (अप्रकाशित)
हा०, ई० हि० ग्रै०	हार्नली, ईस्टर्न हिन्दी ग्रैमर (१८८० ई०)
हि०	हिन्दी
हिन्दु०	हिन्दुस्तानी

नये लिपि-चिह्न

अ ⊥ — विवृत अग्र ह्रस्व अ। यह पुरानी फारसी—पहलवी—में मिलता है जैसे *मर्संर्लह्*। पहलवी में दीर्घ आ अग्र विवृत न होकर पश्च विवृत होता है।

अ‍ा ꞁ — विवृत अग्र दीर्घ आ, यह आठ प्रधान स्वरों मे चौथा स्वर है।

अ॑ ⊥ — अर्द्धविवृत मध्य ह्रस्वार्द्ध अथवा 'उदासीन स्वर'। यह स्वर पंजाबी तथा हिन्दी की कुछ बोलियों मे पाया जाता है, जैसे अव० सो॑र॑हीं, पंजाबी नौ॑क॑र्।

ॲ ˘ — अर्द्धविवृत पश्च ह्रस्वस्वर। यह प्रधान स्वर ऑ से अधिक नीचा है [अंग्रेजी स्वर नं० ६, जैसे अं० नॅट् (not), बॅक्स् (box)]।

ऑ ˇ — अर्द्धविवृत पश्च दीर्घस्वर। यह प्रधान स्वर ऑ से नीचा है। अंग्रेजी स्वर नं० ७ ऑ के लिये इस चिह्न का प्रयोग हिन्दी मे प्रचलित हो गया है, जैसे अं० ऑल् (all) सॉ (saw)। अंग्रेजी विदेशी शब्दों में ॲ के स्थान पर भी इस का प्रयोग होता है।

इ॔ — अर्द्धस्वर य् का शुद्ध वैदिक रूप।

इ॰ — फुसफुसाहट वाली इ जो अवधी आदि बोलियों मे पाई जाती है, दे० § २४।

उ̆	अर्द्धस्वर व़् का शुद्ध वैदिक रूप।
उ̥	फुसफुसाहट वाला उ जो अवधी आदि बोलियों में पाया जाता है, दे० § २०।
ए̆ ॆ	अर्द्धसंवृत अग्र ह्रस्वस्वर अर्थात् ह्रस्व ए, दे० § २६।
ए̥	फुसफुसाहट वाला ए जो अवधी आदि कुछ बोलियों मे पाया जाता है, दे० § २७।
ए̔ ॖ	अर्द्धविवृत मध्य दीर्घस्वर। अंग्रेजी स्वर नं० ११, जैसे अं० ब॑ड् (bird) ल॑न् (learn)।
ऍ̆ ॅ	अर्द्धविवृत् अग्र ह्रस्वस्वर। अंग्रेजी स्वर नं० ३, जैसे अं० कॉलॅज् (college), बॅंच् (bench)।
ऍ ॅ	अर्द्धविवृत् अग्र दीर्घस्वर। प्रधान स्वर न० ३, दे० § २८।
ऐ̆ ॅ	अर्द्धविवृत् अग्र ह्रस्वस्वर, किन्तु प्रधान स्वर नं० ३ से काफ़ी नीचा। अंग्रेज़ी स्वर नं० ४, जैसे अं० मॅन् (man), गॅस् (gas)।
ओ̆ ो	अर्द्धसंवृत् पश्च ह्रस्वस्वर अर्थात ह्रस्व ओ, दे० § १७।
ऑ̆ ॉ̆	अर्द्धविवृत् पश्च ह्रस्वस्वर, दे० § १५।
ऑ ॉ	अर्द्धविवृत् पश्च दीर्घस्वर, दे० § १६। प्रधान स्वर नं० ६। अंग्रेज़ी स्वर नं० ७ जो वास्तव मे ऑ के अधिक निकट है।
ʔ	स्वरयंत्रमुखी अघोष स्पर्श व्यंजन अर्थात् अरबी 'हम्ज़ा'।
ʕ	उपालिजिह्व घोष संघर्षी ध्वनि, अर्थात् अरबी ع।
क़्	अलिजिह्व अघोष स्पर्श, जो अरबी में पाया जाता है। यह फारसी में जिह्वामूलीय क़् हो जाता है।
ख़्	अलिजिह्व अघोप संघर्षी। यह अरबी में पाया जाता है। फारसी मे यह जिह्वामूलीय ख़् हो जाता है।

ग़्	अलिजिह्व घोष संघर्षी। यह अरबी में पाया जाता है। फ़ारसी में यह जिह्वामूलीय ग़् हो जाता है।
च़्	स्पर्श-संघर्षी तालव्य-वर्त्स्य अघोष जो अंग्रेज़ी तथा पहलवी में है, जैसे अं० चॅ॒अ्र (Chair)।
ज़्	स्पर्श-संघर्षी तालव्य-वर्त्स्य घोष, जैसे अं० ज॒ज॒ (Judge)।
ज़्	कंठस्थान युक्त वर्त्स्य घोष संघर्षी, जैसे अरबी ظ।
ज़्	उर्दू ض की देवनागरी अनुलिपि।
झ़्	तालव्य वर्त्स्य घोष संघर्षी अर्थात् श् का घोष रूप। यह अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी आदि में है।
झ़्	कंठस्थान युक्त वर्त्स्य घोष पार्श्विक। यह ध्वनि अरबी में है।
ट़्	वर्त्स्य अघोष स्पर्श। यह ध्वनि अंग्रेज़ी में पाई जाती है। हिन्दी ट् मूर्द्धन्य है वर्त्स्य नहीं।
ड़्	*वर्त्स्य घोष स्पर्श अर्थात् ट़् का घोष रूप।*
ळ्	मूर्द्धन्य पार्श्विक घोष अल्पप्राण। यह ध्वनि वैदिक भाषा में थी।
ळ्ह्	मूर्द्धन्य पार्श्विक घोष महाप्राण। यह ध्वनि भी वैदिक भाषा मे थी।
त़्	कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य अघोष स्पर्श, जैसे अरबी ط।
थ़्	दन्त्य अघोष संघर्षी। यह ध्वनि अरबी तथा अंग्रेज़ी में मिलती है, जैसे अं० थिन् (thin)। हिन्दी थ् संघर्षी न होकर स्पर्श ध्वनि है।
द़्	कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य घोष स्पर्श; अरबी ض।
द़्	दन्त्य घोष संघर्षी अर्थात् थ़् का घोष रूप। यह ध्वनि अरबी तथा अंग्रेज़ी में मिलती है।
य़्	वैदिक मूल अर्द्धस्वर इ॑ का रूपान्तर।

ल़् — कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य घोष पार्श्विक। यह ध्वनि अरबी तथा अंग्रेजी मे है। अंग्रेजी में यह अस्पष्ट ल् (dark *l*) कहलाता है।

व — कंठयोष्ठ्य अर्द्धस्वर। हिन्दी में शब्द के मध्य में आने वाले हलन्त व् का उच्चारण व़् के समान होता है, दे० § ८०। अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी आदि में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

स़् — कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य अघोष संघर्षी, जैसे अरबी ص।

स़् — उर्दू ث की अनुलिपि।

ह़् — स्वरयंत्रमुखी अघोष संघर्षी अर्थात् विसर्ग या अघोष ह्।

ह़् — उपालिजिह्व अघोष संघर्षी, जैसे अरबी ح जो ع का घोष रूप है।

× — वैदिक भाषा में यह उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय दोनों का लिपिचिह्न है। उपध्मानीय द्वयोष्ठ्य संघर्षी अघोष ध्वनि थी जो देवनागरी लिपि में फ़् या इसी प्रकार के किसी अन्य लिपिचिह्न से प्रकट की जा सकती है। जिह्वामूलीय जिह्वामूलस्थानीय संघर्षी अघोष ध्वनि थी जो ख़् के समान रही होगी।

विशेष-चिह्न

>	यह चिह्न पूर्वरूप से पररूप के परिवर्तन को बताता है, जैसे सं० *अग्नि* > प्रा० *अग्गि* > हि० *आग*।
<	यह चिह्न पररूप से पूर्वरूप के परिवर्तन को बताता है, जैसे हि० *आग* < प्रा० *अग्गि* < सं० *अग्नि*।
*	यह चिह्न शब्दों के उन रूपों पर लगाया गया है जो वास्तव मे प्राचीन भाषाओं मे व्यवहृत नहीं हुए हैं बल्कि संभावित रूप मात्र हैं, जैसे संस्कृत पक्वे का सभावित प्राकृत रूप पक्के* ।
√	यह धातु का चिह्न है, जैसे सं० √ घृ ।

विषय-सूची

परिशिष्ट

पंजाबी
सिंधी
गढ़वाली
कुमाऊँनी
बांगरू
खड़ीबोली
ब्रजभाषा
हिन्दी
नेपाली
मारवाड़ी
जयपुरी
अवधी
भोजपुरी
मैथिली
राजस्थानी
बुंदेली
बिहारी
बघेली
मगही
गुजराती
बंगाली
मालवी
छत्तीसगढ़ी
उड़िया
मराठी
अरब सागर
तेलगु

हिन्दीभाषा का क्षेत्र

भूमिका

भूमिका

अ. संसार की भाषाएँ और उनमें हिन्दी का स्थान

क. ससार की भाषाओं का वश-क्रम के अनुसार वर्गीकरण[1]

वंश क्रम के अनुसार भाषातत्वविज्ञ ससार की भाषाओं को कुलों, उपकुलों, शाखाओं, उपशाखाओं तथा समुदायों मे विभक्त करते हैं।[2] हिन्दी भाषा का संसार मे कहाँ स्थान है यह समझने के लिये इन विभागो का संक्षिप्त वर्णन देना आवश्यक है। उन सब भाषाओं की गणना एक कुल मे की जाती है जिन के संबंध मे यह प्रमाणित हो चुका है कि ये सब किसी एक मूल भाषा से उत्पन्न हुई हैं। नये प्रमाण मिलने पर इस वर्गीकरण मे परिवर्तन सभव है। अब तक की खोज के आधार पर संसार की भाषाएँ निम्नलिखित मुख्य कुलो मे विभक्त की गई हैं—

१. भारत-यूरोपीय कुल—हमारे दृष्टि कोण से इस का स्थान सब से प्रथम है। कुछ विद्वान इस कुल को आर्य्य, भारत-जर्मनिक अथवा जफ़ेटिक[3] नामों से भी पुकारते हैं। इस कुल की भाषाएँ उत्तर भारत, अफ़गानि-

---

[1] इ ब्रि (११वाँ सस्करण), 'फिलॉलोजी' शीर्षक लेख, भाग २१, पृ० ४२६ इ०।

[2] भाषा क्या है, उस की उत्पत्ति कैसे हुई, आदि में मनुष्य मात्र की क्या कोई एक मूल भाषा थी इत्यादि प्रश्न भाषा विज्ञान के विषय से सबध रखते हैं अत प्रस्तुत विषय के क्षेत्र से ये पूर्ण रूप से बाहर हैं।

[3] जफ़ेटिक नाम बाइबिल के अनुसार मनुष्य जाति के वर्गीकरण के आधार पर दिया गया था। जफ़ेटिक के अतिरिक्त मनुष्य जाति के दो अन्य विभाग सेमि-

स्तान, फारस तथा प्रायः संपूर्ण यूरोप मे बोली जाती हैं। संस्कृत, पाली, जेन्द, पुरानी फारसी, ग्रीक, लेटिन इत्यादि प्राचीन भाषाएँ इसी कुल की थीं। आजकल इस कुल मे अंग्रेजी, फ्राँसीसी, जर्मन, नई फारसी, परतो, हिंदी, मराठी, बँगला तथा गुजराती आदि भाषाएँ हैं।

२. **सेमिटिक कुल**—प्राचीन काल की कुछ प्रसिद्ध सभ्यताओं के केन्द्र जैसे फोनेशिया, आरमीय तथा असीरिया के लोगों की भाषाएँ इसी

टिक तथा हैमिटिक के नाम से बाइबिल में किए गए हैं। इनमें से भी प्रत्येक के नाम पर एक एक भाषा कुल का नाम पड़ा है। मनुष्य जाति के इस वर्गीकरण के शास्त्रीय होने में सदेह होने पर जफेटिक नाम छोड़ दिया गया, यद्यपि शेष दो नाम अब भी प्रचलित हैं। भारत-जर्मनिक से तात्पर्य उन भाषाओं से लिया जाता था जो पूरब में भारत से लेकर पश्चिम में जर्मनी तक बोली जाती हैं। बाद को जब यह मालूम हुआ कि जर्मनी के और भी पश्चिम में आयर्लैंड की केल्टिक भाषा भी इसी कुल की है, तब यह नाम भी अनुपयुक्त समझा गया। आरम्भ में भाषा-शास्त्र में जर्मन विद्वानों ने अधिक कार्य किया था और यह नाम भी उन्हीं का दिया हुआ था। जर्मनी में अब भी इस कुल का यही नाम प्रचलित है। आर्य-कुल नाम सरल तथा उपयुक्त था, किन्तु एक तो इससे यह भ्रम होता था कि आर्य-कुल की भाषाएँ बोलनेवाले सब लोग आर्य जाति के होंगे, जो सत्य नहीं है, इस के अतिरिक्त ईरानी तथा भारतीय उपशाखाओं का सयुक्त नाम आर्य उपकुल पड़ चुका था, अत यह सरल नाम छोड देना पडा। भारत-यूरोपीय नाम भी बहुत उपयुक्त नहीं है। इस नाम के अनुसार भारत और यूरोप में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की गणना इस कुल में होनी चाहिए। किन्तु भारत में ही द्राविड इत्यादि दूसरे कुलों की भाषाएँ भी बोली जाती हैं। इस नाम में दूसरी त्रुटि यह है कि भारत और यूरोप के बाहर बोली जाने वाली ईरानी भाषा की उपशाखा का उल्लेख इस में नहीं हो पाता। इन त्रुटियों के रहते हुए भी इस कुल का यही नाम प्रचलित हो गया है। अंग्रेज़ी तथा फ्राँसीसी विद्वान इस कुल को भारत-यूरोपीय नाम से ही पुकारते हैं।

कुल की थी। इन प्राचीन भाषाओं के नमूने अब केवल शिला-लेखों इत्यादि मे मिलते हैं। यहूदियों की प्राचीन हिब्रू भाषा जिस मे मूल बाइबिल लिखी गई थी और प्राचीन अरबी भाषा जिस मे कुरान है, इसी कुल की हैं। आजकल इस कुल की उत्तराधिकारिणी वर्तमान अरबी तथा हबशी भाषाएँ हैं।

३. हैमिटिक कुल—इस कुल की भाषाएँ उत्तर अफ्रीका मे बोली जाती हैं जिन में मिश्र देश की प्राचीन भाषा काप्टिक मुख्य है। प्राचीन काप्टिक के नमूने चित्र लिपि में खुदे हुए मिलते हैं। उत्तर अफ्रीका के समुद्र-तट के कुछ भाग मे प्रचलित लीबियन या बर्बर, पूर्व भाग के कुछ अश में बोली जाने वाली एथिओपियन तथा सहारा मरुभूमि की हौसा भाषा इसी कुल मे हैं। अरब के मुसलमानो के प्रभाव के कारण मिश्र देश की वर्तमान भाषा अब अरबी हो गई है। कुछ समय पूर्व मूल मिस्री-भाषा काप्टिक के नाम से जीवित थी। मिस्र देश के मूल निवासी, जो काप्टिक नाम से ही प्रसिद्ध हैं, अपनी भाषा के उद्धार का प्रयत्न कर रहे हैं।

४. तिब्बती-चीनी कुल—इस कुल को बौद्ध कुल नाम देना अनुपयुक्त न होगा, क्योंकि जापान को छोड कर शेष समस्त बौद्ध धर्मावलम्बी देश, जैसे चीन, तिब्बत, बर्मा, स्याम तथा हिमालय के अन्दर के प्रदेश, इसी कुल की भाषाएँ बोलनेवालो से बसे है। सपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया में इस कुल की भाषाएँ प्रचलित है। इन सब में चीनी भाषा मुख्य है। ईसा से दो सहस्र वर्ष पूर्व तक चीनी भाषा के अस्तित्व के प्रमाण मिलते है।

५. यूरल-अलटाइक कुल—इस को तूरानी या सीदियन कुल भी कहते है। इस कुल की भाषाएँ चीन के उत्तर में मगोलिया, मचूरिया तथा साइबेरिया मे बोली जाती हैं। तुर्की या तातारी भाषा इसी कुल की है। यूरोप मे भी इसकी एक शाखा गई है जिस की भिन्न भिन्न बोलियाँ रूस के कुछ पूर्वी भागो मे बोली जाती हैं। कुछ विद्वान् जापान तथा कोरिया की भाषाओं की गणना भी इसी कुल मे करते हैं। दूसरे इन्हे तिब्बती चीनी कुल में रखते है।

६. द्राविड कुल—इस कुल की भाषाएँ दक्षिण-भारत मे बोली जाती हैं जिन मे मुख्य तामिल, तेलगू, मलयालम तथा कनारी है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये उत्तर भारत की आर्य भाषाओं से बिलकुल भिन्न है।

७. **मैले-पालीनेशियन कुल**—मलाया प्रायद्वीप, प्रशांत महासागर के सुमात्रा, जावा, बोर्नियो इत्यादि द्वीपों तथा अफ्रीका के निकटवर्ती मडागास्कर द्वीप में इस कुल की भाषाएँ बोली जाती हैं। न्यूज़ीलैंड की भाषा भी इसी कुल की है। भारत में संथालों इत्यादि की कोल-भाषाएँ इसी कुल में गिनी जाती हैं। मलय साहित्य तेरहवीं शताब्दी तक का पाया जाता है। जावा में तो ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों तक के लेख इसी कुल की भाषाओं में मिले हैं। इन देशों को सभ्यता पर भारत के हिन्दू काल का बहुत प्रभाव पड़ा था।

८. **बंटू कुल**—इस कुल की भाषाएँ दक्षिण अफ्रीका के आदिम निवासी बोलते हैं। जंजीबार की स्वाहिली भाषा इसी कुल में है। यह व्यापारियों के बहुत काम की है।

९. **मध्य-अफ्रीका कुल**—उत्तर के हैमिटिक तथा दक्षिण के बंटू कुलों के बीच में शेष मध्य-अफ्रीका में एक तीसरे कुल की बोलियाँ बोली जाती हैं। इन की गिनती मध्य-अफ्रीका कुल में की गई है। ब्रिटिश सूडन की भाषाएँ इसी कुल में हैं।

१०. **अमेरिका की भाषाओं का कुल**—उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के मूल निवासियों की बोलियों को एक पृथक् कुल में स्थान दिया गया है। मध्य-अफ्रीका की बोलियों की तरह इन की संख्या भी बहुत है तथा इनमें आपस में भेद भी बहुत है। थोड़ी थोड़ी दूर पर बोली में अन्तर हो जाता है।

११. **आस्ट्रेलिया तथा प्रशान्त महासागर की भाषाओं के कुल**—आस्ट्रेलिया महाद्वीप तथा टस्मेनिया के मूल निवासियों की भाषाएँ एक कुल के अन्तर्गत रक्खी जाती हैं। प्रशान्त महासागर के छोटे छोटे द्वीपों में दो अन्य भिन्न कुलों की भाषाएँ बोली जाती हैं।

१२. **शेष भाषाएँ**—कुछ भाषाओं का वर्गीकरण अभी तक ठीक ठीक नहीं हो पाया है। उदाहरणार्थ काकेशिया प्रदेश की भाषाओं को किसी कुल में सम्मिलित नहीं किया जा सका है। इनमें जार्जियन का प्रचार सब से अधिक है। यूरोप की बास्क तथा यूटस्कन नाम की भाषाएँ भी बिलकुल

निराली हैं। संसार के किसी भाषा कुल में इन की गणना नही की जा सकी है। यूरोप के भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं से इन का कुछ भी संबंध नहीं है।

ख. भारत-यूरोपीय कुल[1]

संसार की भाषाओं के इन बारह मुख्य कुलों मे भारत-यूरोपीय कुल से हमारा विशेष संबंध है। जैसा बतलाया जा चुका है, इस कुल की भाषाएँ प्रायः संपूर्ण यूरोप, ईरान, अफ़गानिस्तान तथा उत्तर भारत मे फैली हुई हैं। इन्हें प्रायः दो समूहों मे विभक्त किया जाता है जो 'केन्टम्' और 'शतम्' समूह कहलाते हैं।[2] प्रत्येक समूह में चार चार उपकुल हैं। इन आठों उपकुलों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

१. आर्य्य या भारत-ईरानी—इस उपकुल में तीन मुख्य शाखाएँ हैं। प्रथम मे भारतीय आर्य भाषाएँ हैं तथा दूसरे मे ईरानी भाषाएँ। एक तीसरी शाखा दर्द या पैशाची भाषाओं की भी मानी जाने लगी है। इनका विशेष उल्लेख आगे किया जायगा।

---

[1] इ. ब्रि. (१४ वाँ संस्करण), दे० 'इंडो-युरोपियन' शीर्षक लेख में भाषा संबंधी विवेचन।

[2] भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं को दो समूहों में विभक्त करने का आधार कुछ कंठ देशीय मूल वर्णों (क, ग, ख, घ) का इन समूहों की भाषाओं में भिन्न भिन्न रूप ग्रहण करना है। एक समूह में ये व्यंजन ही रहते हैं, किन्तु दूसरे में ये ऊष्म (sibilants) हो जाते हैं। यह भेद इन भाषाओं में पाए जाने वाले "सौ" शब्द के दो भिन्न रूपों से भली प्रकार प्रकट होता है। लैटिन में, जो प्रथम समूह की भाषाओं मे से एक है, 'सौ' के लिए 'केन्टम्' शब्द आता है; किन्तु संस्कृत मे, जो दूसरे समूह की है, 'शतम्' रूप मिलता है। पहिला समूह बिलकुल यूरोपीय है और 'केन्टम् समूह' के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे समूह में पूर्व-यूरोप, ईरान तथा भारत की आर्य भाषाएँ सम्मिलित हैं। यह 'शतम् समूह' कहलाता है।

२. **आरमेनियन**—आर्य उपकुल के पश्चिम में आरमेनियन है। इस मे ईरानी शब्द अधिक मात्रा मे पाए जाते हैं। आरमेनियन भाषा यूरोप और एशिया की भाषाओं के बीच मे है।

३. **बाल्टो-स्लैवोनिक**—इस उपकुल की भाषाएँ काले समुद्र के उत्तर मे प्राय सपूर्ण रूस मे फैली हुई हैं। आर्य उपकुल की तरह इस को भी शाखाएँ हैं। बाल्टिक शाखा में लिथूएनियन, लेटिश, और प्राचीन प्रशियन बोलियाँ हैं। स्लैवोनिक शाखा मे बलगेरिया की प्राचीन भाषा, रूस की भाषाएँ, सर्वियन, स्लोवेन, पोलैंड की भाषा, ज़ेक अथवा बोहेमियन और सर्व ये मुख्य भेद हैं।

४. **अलबेनियन**—'शतम् समूह' की अन्तिम भाषा अलबेनियन है। आरमेनियन की तरह इस पर भी निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव अधिक है। इस भाषा में प्राचीन साहित्य नही पाया जाता।

५. **ग्रीक**—'केन्टम् समूह' की भाषाओं में यह उपकुल सब से प्राचीन है। प्रसिद्ध कवि होमर ने 'ईलियड' तथा 'ओडेसी' नामक महाकाव्य प्राचीन ग्रीक भाषा मे ही लिखे थे। सुकरात तथा अरस्तू के मूल ग्रन्थ भी इसी मे हैं। आज कल भी यूनान देश मे इसी प्राचीन भाषा की बोलियों में से एक का नवीन रूप बोला जाता है।

६. **इटैलिक या लैटिन**—प्राचीन रोमन साम्राज्य की लैटिन भाषा के कारण यह उपकुल विशेष आदरणीय हो गया है। यूरोप की सपूर्ण वर्तमान भाषाओं पर लैटिन और ग्रीक भाषाओं का बहुत प्रभाव पडा है। आधुनिक यूरोपीय भाषाओं मे भी विज्ञान के शब्दों का निर्माण इन्ही प्राचीन भाषाओं के सहारे होता है। इटली, फ्रास, स्पेन, रूमानिया तथा पुर्तगाल की वर्तमान भाषाएँ लैटिन ही की पुत्रियाँ हैं।

७. **केल्टिक**—इस उपकुल की भाषाओं मे दो मुख्य भेद हैं। एक का वर्तमान रूप आयर्लैंड मे मिलता तथा दूसरे का ग्रेट ब्रिटेन के स्काटलैंड, वेल्स तथा कार्नवाल प्रदेशों मे पाया जाता है। इस उपकुल की पुरानी गाल भाषा अब जीवित नही है।

८. **जर्मनिक या ट्यूटानिक**—इसका प्राचीन रूप गाथिक और नार्स भाषाओं मे मिलता है। प्राचीन नार्स भाषा से निकट ऐतिहासिक काल मे स्वीडेन, नार्वे, डेन्मार्क तथा आइसलैंड की भाषाएँ निकली हैं। जर्मन, डच, फ्लेमिश तथा अंग्रेजी भाषाएँ इसी कुल मे हैं।

ग. आर्य्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल

भारत-यूरोपीय कुल के इन आठ उपकुलों मे आर्य्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल का कुछ विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। जैसा कहा जा चुका है इसकी तीन मुख्य शाखाएँ हैं।—१ ईरानी, २. पैशाची या दर्द, तथा ३. भारतीय आर्य भाषा।

१. **ईरानी**[१]—ऐतिहासिक क्रम के अनुसार ईरान की भाषाओं के तीन भेद मिलते हैं—(i) पुरानी फारसी के सबसे प्राचीन नमूने पारसियों के धर्म ग्रन्थ अवस्ता में मिलते हैं। अवस्ता के सबसे पुराने भाग ईसा से लगभग चौदह शताब्दी पूर्व के माने जाते हैं। अवस्ता की भाषा ऋग्वेद की भाषा से बहुत मिलती जुलती है। इसमे आश्चर्य भी नहीं, क्योकि ईरान के प्राचीन लोग अपने को आर्य्य वर्ग का मानते थे। इसका उल्लेख इनके ग्रंथों मे बहुत स्थलों पर आया है। अवेस्ता के बाद पुरानी फारसी भाषा के नमूने कीलाक्षर लिपि मे लिखे हुए शिला-खंडो और ईंटों पर पाए गए हैं। इनमे सबसे प्रसिद्ध हखामनीय वंश के महाराज दारा (५२२-४८९ पू० ई०) के शिलालेख हैं। इन लेखो में दारा अपने आर्य्य होने का उल्लेख गर्व के साथ करता है। (ii) पुरानी फारसी के बाद माध्यमिक-फारसी का काल आता है। इसका मुख्य रूप पहलवी है। ईसवी तीसरी से सातवीं शताब्दी तक ईरान मे सासन वंशी राजाओं ने राज्य किया था। उनके संरक्षण मे पहलवी साहित्य ने बहुत उन्नति की थी। (iii) नई-फारसी का सबसे प्राचीन रूप

[१] इ. ब्रि., १४ वाँ सस्करण, 'ईरानियन लैंग्वेजेज़ ऐंड पर्शियन'।
लि. स., भूमिका, भा० १, अ० ९, 'ईरानियन ब्रांच'।

फिरदौसी के शाहनामे मे मिलता है। फिरदौसी ने सेमिटिक कुल की भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा मे अधिक नहीं मिलने दिया था, परन्तु आज कल साहित्यिक फारसी मे अरबी शब्दों की भरमार हो गई है। रूसी तुर्किस्तान की ताजीकी, अफ़गानिस्तान की पश्तो तथा बलूचिस्तान की बलूची भाषाएँ नई फारसी की ही प्रशाखाएँ हैं।

२. **पैशाची**[१]—यह माना जाता है कि मध्य एशिया की ओर से आर्य्य लोग भारत में कदाचित दो मुख्य मार्गों से आए थे। एक तो हिंदूकुश पर्वत के पश्चिम से होकर काबुल के मार्ग से और दूसरे वक्षु (Oxus) नदी के उद्गम स्थान से सीधे दक्षिण की ओर दुर्गम पर्वतों को पार करके। इस दूसरे मार्ग से आने वाले समस्त आर्य्य उत्तर भारत के मैदानों में पहुँच गए होंगे इसमे सदेह है। कम से कम कुछ आर्य्य हिमालय के पहाडी प्रदेश मे अवश्य रह गए होंगे। इन लोगों की भाषा पर सस्कृत का प्रभाव न पडना स्वाभाविक है, क्योकि सस्कृत का विशेष रूप भारत मे आने के बाद हुआ था। आज कल इन भाषाओं के बोलने वाले काश्मीर तथा उसके उत्तर में हिमालय के दुर्गम प्रदेशों मे पाए जाते हैं। यह भाषाएँ भारतीय-असस्कृत-आर्य-भाषाएँ कहला सकती हैं। इनका दूसरा नाम पिशाच या दर्द भाषाएँ भी है। काश्मीरी भाषा इन्ही मे से एक है। इस पर सस्कृत का इतना अधिक प्रभाव पडा था कि कुछ दिनों पूर्व तक यह भारत की शेष आर्य भाषाओं मे गिनी जाती थी। काश्मीरी भाषा प्राय शारदा लिपि में लिखी जाती है। मुसलमान लोग फारसी लिपि का व्यवहार करते हैं।

३. **भारतीय आर्य भाषा**—यह शाखा भी तीन कालों में विभक्त की जाती है—प्राचीन काल, मध्यकाल, तथा आधुनिक काल। (I) प्राचीन काल की भाषा का अनुमान ऋग्वेद के प्राचीन अशों से हो सकता है। इस काल की भाषा का और कोई चिन्ह नहीं रहा है। (II) मध्यकाल की भाषा के बहुत उदाहरण मिलते हैं। पाली, अशोक की धर्मलिपियों की

---

[१] लि स, भूमिका, भा० १, अ० १०।

भाषा, साहित्यिक प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ इसी काल में गिनी जाती हैं। (iii) आधुनिक काल मे भारत की वर्तमान आर्य भाषाएँ हैं। इनके भिन्न भिन्न रूप आजकल समस्त उत्तर भारत मे बोले जाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से इनमें हिंदी, बँगला, मराठी तथा गुजराती मुख्य हैं। इस शाखा की भाषाओं का विस्तृत विवेचन आगे किया गया है।

संसार की भाषाओं मे हिन्दी का स्थान क्या है यह अब स्पष्ट हो गया होगा। ऊपर दिये हुये पारिभाषिक नामो के सहारे संक्षेप मे हम कह सकते है कि संसार के भाषा समूहों मे भारत-यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी उपकुल मे भारतीय-आर्य्य शाखा की आधुनिक भाषाओं मे से एक मुख्य भाषा हिन्दी है।

आ. भारतीय आर्य्य भाषाओं का इतिहास

क. आर्य्यों का आदिम स्थान तथा भारत में आगमन[1]

यह स्पष्ट है कि भारत की अन्य आधुनिक आर्य्य भाषाओं के समान हिन्दी भाषा का जन्म भी आर्य्यों की प्राचीन भाषा से हुआ है। भारतीय आर्य्यों की तत्कालीन भाषा धीरे-धीरे हिन्दी भाषा के रूप मे कैसे परिवर्तित हो गई, यहाँ इसी पर विचार करना है। किन्तु सब से पहिले इन भारतीय आर्य्यों के आदिम स्थान के संबंध मे कुछ जान लेना अनुचित न होगा[2]।

---

[1] लि. स., भूमिका, भा० १, अ० ८।

[2] प्राचीन भारतीय ग्रंथों में आर्य्यों के भारत आगमन के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। पुराने ढंग के भारतीय विद्वानो का मत था कि आर्य्य लोगो का मूल स्थान तिब्बत में किसी जगह पर था। वहीं मनुष्य-सृष्टि हुई थी और उसी स्थान से संसार में लोग फैले। भारत मे भी आर्य्य लोग वहीं से आए थे।

ऋग्वेद के कुछ मंत्रो के आधार पर लोकमान्य पंडित बाल गंगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रुव के निकटवर्त्ती प्रदेश में आर्य्यों का मूलस्थान होना प्रतिपादित किया था।

हमारे पूर्वज आर्य्यों का मूल वासस्थान कहाँ था, इस संबंध में बहुत मतभेद है। भाषा-विज्ञान के आधार पर यूरोपीय विद्वानों का अनुमान है कि वे मध्य एशिया अथवा दक्षिण-पूर्व यूरोप में कहीं रहते थे। यह अनुमान इस प्रकार लगाया गया है कि भारत-यूरोपीय कुल की यूरोपीय, ईरानी तथा भारतीय प्रशाखाएँ जहाँ पर मिली हैं, उसी के आस-पास कहीं इन भाषाओं के बोलने वालों का मूल स्थान होना चाहिए, क्योंकि उसी जगह से ये लोग तीन भागों में विभक्त हुए होंगे। सब से पहले यूरोपीय शाखा अलग हो गई थी, क्योंकि उसकी भाषाओं और शेष आर्य्यों की भारत-ईरानी भाषाओं में बहुत

इस कल्पना का खण्डन करते हुए बंगाल के एक नवयुवक विद्वान् ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदिक-इण्डिया' में यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्य्यों का मूलस्थान भारत में ही सरस्वती नदी के तट पर अथवा उसी के उद्गम के निकट हिमालय के अन्दर के हिस्से में कहीं पर था। उनके मतानुसार प्राचीन ग्रंथों में ब्रह्मावर्त्त देश की पवित्रता का कारण कदाचित् यही था। यहीं से जा कर आर्य्य लोग ईरान में बसे। भारतीय आर्य्यों के पश्चिम की ओर बसने वाली कुछ अनार्य्य जातियाँ, जिनकी भाषा पर आर्य भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, बाद को भगाई जाने पर यूरोप के मूलनिवासियों को विजय करके वहाँ जा बसी थीं। यूरोपीय भाषाओं में इसी लिए आर्य्य भाषा के चिह्न बहुत कम पाए जाते हैं। वास्तव में वे आर्य्य भाषाएँ हैं ही नहीं।

जो कुछ हो, आर्य्यों के मूलस्थान के विषय में निश्चयपूर्वक अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता। संसार के विद्वानों का, जिनमें यूरोप के विद्वानों का आधिक्य है, आजकल यही मत है कि आर्य्यों का आदिम स्थान पूर्व यूरोप मे बाल्टिक समुद्र के निकट कहीं पर था। इस स्थान से ईरान तथा भारत की ओर आने के मार्ग के संबंध में दो मत हैं। पुराने मत के अनुसार यह मार्ग 'कैस्पियन समुद्र' के उत्तर से मध्य एशिया में हो कर माना जाता था। थोड़े दिन हुए पश्चिम फारिस तथा टर्की में कुछ प्राचीन आर्य्य देवताओं के नाम (मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्य) एक लेख पर मिले हैं। यह लेख लगभग २५०० पू० ई० काल का माना जाता है। इस

भेद है। यह शेष आर्य्य कदाचित् बहुत समय तक साथ रहते रहे। बाद को एक शाखा ईरान मे जा बसी और दूसरी भारत मे चली आई। इन दोनो शाखाओं के लोगों के प्राचीनतम ग्रथ अवस्ता और ऋग्वेद है, जिनकी भाषा एक दूसरी से बहुत कुछ मिलती है। उच्चारण के कुछ साधारण नियमों के अनुसार परिवर्तन करने पर दोनों भाषाओं का रूप एक हो जाता है।

भारत मे आने वाले आर्य्य एक ही समय मे नही आए होंगे, किन्तु सभावना ऐसी है कि ये कई बार मे आए होंगे। वर्तमान भारतीय आर्य्य-भाषाओं से पता चलता है कि आर्य्य लोग भारत मे दो बार में अवश्य आए थे[१]। ऋग्वेद तथा बाद के संस्कृत साहित्य मे भी इसके कुछ प्रमाण मिलते हैं।[२] यदि वे एक दूसरे से बहुत समय के अनन्तर आए होंगे, तो इनकी

कारण एक नवीन मत यह हो गया है कि इडो यूरोपियन बोलने वालो का एक समूह काले समुद्र के पश्चिम से हो कर आया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी समूह में से कुछ लोग ईरान में बसते हुए आगे मध्य एशिया तथा भारत की ओर बढ सकते है। मध्य एशिया की प्रशाखा के लोग हिन्दूकुश की घाटियों में हो कर बाद को दर्दिस्तान तथा काश्मीर में कदाचित् जा बसे हो। ये ही वर्तमान पैशाची या दर्द भाषा के बोलने वालो के पूर्वज रहे होंगे।

[१]भाषा शास्त्र के नियमों के अनुसार भाषाओं के सूक्ष्म भेदो पर विचार करने के अनन्तर हार्नली साहब भी (हा ई हि ग्रै, भू० पृ० ३२) इसी मत पर पहुँचे थे। उनके मत में प्राचीन उत्तर भारत में दो भाषा-समुदाय थे, एक शौरसेनी भाषा समुदाय तथा दूसरा मागधी भाषा समुदाय। मागधी भाषा का प्रभाव भारत के पश्चिमोत्तर कोने तक था। शौरसेनी के दबाव के कारण पश्चिम में इसका प्रभाव धीरे धीरे कम हो गया। ग्रियर्सन महोदय भी कुछ-कुछ इसी मत की पुष्टि करते हैं। (लि स भूमिका, भा० १, पृ० ११८)।

[२]ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं से अरकोसिया का राजा दिवोदास तत्कालीन जान पड़ता है। अन्य ऋचाओं में दिवोदास के पौत्र पजाब के राजा सुदास का वर्णन समकालीन की भाँति है। राजा सुदास की विजयो का वर्णन करते हुए कहा गया है

भाषा में भी कुछ भेद हो गया होगा। पहली बार मे आने वाले आर्य्य कदाचित् काबुल की घाटी के मार्ग से आए थे, किन्तु दूसरी बार में आने वाले आर्य्य किस मार्ग से आए थे इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संभावना ऐसी है कि ये लोग काबुल की घाटी के मार्ग से नहीं आए, बल्कि गिलगित और चितराल होते हुए सीधे दक्षिण की ओर उतरे थे।

पंजाब में उतरने पर इन नवागत आर्य्यों को अपने पुराने भाइयों से सामना करना पड़ा होगा, जो इतने दिनों तक इनसे अलग रहने के कारण कुछ भिन्न-भाषा-भाषी हो गए होंगे। ये नवागत आर्य्य कदाचित् पूर्व पंजाब में सरस्वती नदी के निकट बस गए। इनके चारों ओर पूर्वागत आर्य्य बसे हुए थे। धीरे-धीरे ये नवागत आर्य्य फैले होंगे। संस्कृत साहित्य मे एक 'मध्यदेश'[1]

कि उन्होंने पुरु नाम की एक अन्य आर्य्य जाति को, जो पूर्व यमुना के किनारे रहती थी, विजय किया था। पुरु लोगों को 'मृध्रवाच' अर्थात् अशुद्ध भाषा बोलने वाले कह कर संबोधन किया है। उत्तर-भारत के आर्य्यों में इस भेद के होने के चिह्न बाद को भी बराबर मिलते हैं। ऋग्वेद में ही पश्चिम के ब्राह्मण वसिष्ठ और पूरब के क्षत्रिय विश्वामित्र की अनबन का बहुत कुछ उल्लेख है। विश्वामित्र ने रुष्ट हो कर वसिष्ठ को 'यातुधान' अर्थात् राक्षस कहा था। यह वसिष्ठ को बहुत बुरा लगा। महाभारत का कुरु और पांचालों का युद्ध भी इस भेद की ओर संकेत करता है। लैस्सन साहब ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि पंचाल लोग कुरुओं की अपेक्षा पहले से भारत में बसे हुए थे। रामायण से भी इस भेद-भाव की कल्पना की पुष्टि होती है। महाराज दशरथ मध्य देश के पूर्व में कोशल जनपद के राजा थे, किन्तु उन्होंने विवाह मध्यदेश के पश्चिम केकय जनपद में किया था। इक्ष्वाकु लोगों का मूलस्थान सतलज के निकट इक्षुमती नदी के तट पर था। ये सब अनुमान तथा कल्पनाएँ पश्चिमी विद्वानों की खोज के फलस्वरूप हैं।

[1] इस शब्द के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए ना. प्र. प., भा० ३ अ० १ में लेखक का 'मध्यदेश का विकास' शीर्षक लेख।

शब्द आता है। इसका व्यवहार आरंभ में केवल कुरु-पंचाल और उसके उत्तर के हिमालय प्रदेश के लिए हुआ है। बाद को इस शब्द से अभिप्रेत भूमिभाग की सीमा में वृद्धि हुई है। संस्कृत ग्रंथों ही के आधार पर हिमालय और विन्ध्य के बीच में तथा सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान से प्रयाग तक का भूमिभाग 'मध्यदेश' कहलाने लगा था। इस भूमिभाग में बसने वाले लोग उत्तम माने गए हैं और उनकी भाषा भी प्रामाणिक मानी गई है। कदाचित् यह नवागत आर्य्यों की ही बस्ती थी, जो अपने को पूर्वागत आर्य्यों से श्रेष्ठ समझती थी। वर्तमान आर्य्य भाषाओं में भी यह भेद स्पष्ट है। प्राचीन मध्यदेश की वर्तमान भाषा हिन्दी चारों ओर की शेष आर्य्य भाषाओं से अपनी विशेषताओं के कारण पृथक् है। इसी भूमिभाग की शौरसेनी प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है। कुछ विद्वान् साहित्यिक संस्कृत का उत्पत्ति स्थान भी शूरसेन (मथुरा) प्रदेश ही मानते हैं।

ख. प्राचीन भारतीय आर्य्य भाषा काल[1]

(१५०० पू० ई०—५०० पू० ई०)

भारतीय आर्य्यों की तत्कालीन भाषा का थोड़ा बहुत रूप अब केवल ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना भिन्न भिन्न देश कालों में हुई थी, किंतु उनका संपादन कदाचित् एक ही हाथ से एक ही काल में होने के कारण उसमें भाषा का भेद अब अधिक नहीं पाया जाता। ऋग्वेद का संपादन पश्चिम 'मध्य देश' अर्थात् पूर्वी पंजाब और गंगा के उत्तरी भाग में हुआ था, अतः यह इस भूमिभाग के आर्य्यों की भाषा का बहुत कुछ पता देता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक है। आर्य्यों की अपनी बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर अवश्य होगा। उस समय के आर्य्यों की बोली का शुद्ध रूप अब हमें कहीं नहीं मिल सकता। उसकी जो थोड़ी बहुत बानगी साहित्यिक

---

[1] लि. स., भूमिका, भा० १, अ० ११, १२।

भाषा में आगई हो, उसी की खोज की जा सकती है। ऋग्वेद के अतिरिक्त उस समय की भाषा का अन्य कोई भी आधार नहीं हैं। ऋग्वेद का रचना काल ईसा से एक सहस्र वर्ष से भी अधिक पहले का माना जाता है। इन आर्यों की शुद्ध बोली प्राचीन-भारतीय-आर्य्य-भाषा कहला सकती है। इस काल की बोल-चाल की भाषा से मिश्रित साहित्यिक रूप ऋग्वेद मे मिलता है। आर्य्यों की इस साहित्यिक भाषा में परिवर्तन होता रहा। इस के नमूने ब्राह्मण ग्रंथों और सूत्र ग्रंथों मे मिलते हैं। सूत्र-काल के साहित्यिक रूप को वैयाकरणों ने बाँधना आरंभ किया। पाणिनि ने (३०० पू० ई०) उस को ऐसा जकड़ा कि उस में परिवर्तन होना बिलकुल रुक गया। आर्य्यों की भाषा का यह साहित्यिक रूप संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका प्रयोग उस समय से अब तक संपूर्ण भारत मे विद्वान लोग धर्म और साहित्य में करते आए हैं। साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त आर्य्यों की बोल चाल की भाषा में भी परिवर्तन होता रहा। ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलती जुलती आर्य्यों की मूल बोली भी धीरे धीरे बदली होगी। जिस समय 'मध्यदेश' मे संस्कृत साहित्यिक भाषा का स्थान ले रही थी, उस समय की वहाँ के जन समुदाय की बोली[१] के नमूने अब हमे प्राप्त नहीं हैं।

किंतु पूर्व मे मगध अथवा कोसल की बोली का तत्कालीन परिवर्तित रूप (यह ध्यान रखना चाहिए कि वैदिक काल में मगध आदि पूर्वी प्रान्तों की भी बोली भिन्न रही होगी) उस बोली में बुद्ध भगवान के धर्म प्रचार करने के कारण सर्व मान्य हो गया। इस मध्यकालीन-भारतीय-आर्य्य-भाषा-

---

[१] साहित्यिक भाषा से भिन्न लोगों की कुछ बोलियाँ भी अवश्य थीं, इसके प्रमाण हमें तत्कालीन संस्कृत साहित्य में मिलते हैं। पतञ्जलि के समय में व्याकरण शास्त्र जाननेवाले केवल विद्वान् ब्राह्मण शुद्ध संस्कृत बोल सकते थे। अन्य ब्राह्मण अशुद्ध संस्कृत बोलते थे तथा साधारण लोग 'प्राकृत भाषा' (स्वाभाविक बोली) बोलते थे।

काल की मगध अथवा कोसल की बोली का कुछ नमूना हमे पाली मे मिलता है। वास्तव मे पाली मे लोगो की बोली और साहित्यिक रूप का मिश्रण है। उत्तर भारत के आर्य्यो की बोली मे फिर भी परिवर्तन होता रहा। आजकल इस के भिन्न भिन्न रूप उत्तर भारत की वर्तमान बोलियो और उन के साहित्यिक रूपों मे मिलते हैं। इस अंतिम काल को आधुनिक-भारतीय-आर्य्य-भाषा काल नाम देना उचित होगा। खडी बोली हिंदी इसी तृतीय काल की मध्य देश की वर्तमान साहित्यिक भाषा है।

इन तीनों कालो के बीच मे बिलकुल अलग अलग लकीरे नही खीची जा सकती। ऋग्वेद मे जो एक आध रूप मिलते हैं, उन को यदि छोड दिया जाय, तो मध्य काल के उदाहरण अधिक माना मे पहले पहल अशोक की धर्म्म-लिपियो मे (२५० पू० ई०) पाए जाते हैं। यहाँ यह प्राकृत प्रारम्भिक अवस्था में नही है किंतु पूर्ण विकसित रूप में है। मध्य काल की भाषा से आधुनिक काल की भाषा मे परिवर्तन इतने सूक्ष्म ढग से हुआ है कि दोनो के मध्य की भाषा को निश्चित रूप से किसी एक मे रखना कठिन है। इन कठिनाइयों के होते हुए भी इन तीनो कालो मे भाषाओ की अपनी अपनी विशेषताए स्पष्ट है। प्रथम काल मे भाषा सयोगात्मक है तथा सयुक्त व्यजनो का प्रयोग स्वतन्त्रता पूर्वक किया गया है। द्वितीय काल मे भी भाषा सयोगात्मक ही रही है, किंतु सयुक्त स्वरों और सयुक्त व्यजनों का प्रयोग बचाया गया है। इस काल के अंतिम साहित्यिक रूप महाराष्ट्री प्राकृत के शब्दों मे तो प्राय केवल स्वर ही स्वर रह गए है, जो एक आध व्यजन के सहारे जुड़े हुए हैं। यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती थी। तृतीय काल में भाषा वियोगात्मक हो गई और स्वरों के बीच मे फिर सयुक्त वर्ण डाले जाने लगे। वर्तमान बाह्य समुदाय की कुछ भाषाएँ तो आजकल फिर सयोगात्मक होने की ओर झुक रही हैं। इस प्रकार वे प्रथम काल की भाषा का रूप धारण कर रही हे। मालूम होता है कि परिवर्तन का यह चक्र पूर्ण हुए बिना न रहेगा।

ग. मध्यकालीन भारतीय आर्य्य भाषा काल
(५०० पू० ई०—१००० ई०)

इस का उल्लेख किया जा चुका है कि प्रथम काल में बोलियों का भेद वर्तमान था। उस समय कम से कम दो भेद अवश्य थे—एक पूर्व प्रदेश में पूर्वागत आर्य्यों की बोली और दूसरे पश्चिम भाग अर्थात् 'मध्य देश' में नवागत आर्य्यों की बोली, जिस का साहित्यिक रूप ऋग्वेद में मिलता है। पश्चिमोत्तर भाग की भी कोई पृथक् बोली थी या नहीं, इस का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

१. पाली तथा अशोक की धर्म लिपियाँ (५०० पू० ई०—१ पू० ई०)—द्वितीय प्राकृत काल में भी बोलियों का यह भेद पाया जाता है। इस संबंध में महाराज अशोक की धर्म्म लिपियों से पूर्व का हमें कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं मिलता। इन धर्म्म लिपियों की भाषा देखने से विदित होता है, कि उस समय उत्तर भारत की भाषा में कम से कम तीन भिन्न भिन्न रूप—पूर्वी, पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तरी—अवश्य थे। कोई दक्षिणी रूप भी था या नहीं, इस संबंध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस काल की साहित्यिक भाषा पाली कदाचित् अर्द्ध मागधी क्षेत्र की प्राचीन बोली के आधार पर बनी थी।

२. साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ (१ ई०-५०० ई०)—लोगों की बोली में बराबर परिवर्तन होता रहा और अशोक की धर्म्मलिपियों की भाषाएँ ही बाद को "प्राकृत" के नाम से प्रसिद्ध हुई। मध्यकाल में संस्कृत के साथ साथ साहित्य में इन प्राकृतों का भी व्यवहार होने लगा। इनमें काव्य ग्रंथ तथा धर्म पुस्तकें लिखी जाने लगीं। संस्कृत नाटकों में भी इन्हें स्वतंत्रतापूर्वक बराबर की पदवी मिलने लगी। समकालीन अथवा कुछ समय के अनन्तर होने वाले विद्वानों ने इन प्राकृत भाषाओं के भी व्याकरण रच डाले। साहित्य और व्याकरण के प्रभाव के कारण इनके मूल रूप में बहुत अन्तर हो गया। इन प्राकृतों के साहित्यिक रूपों के ही नमूने आजकल हमें प्राकृत-ग्रंथों में

देखने को मिलते हैं। उस समय की बोलियों के शुद्ध रूप के सबध मे हम लोगों को अधिक ज्ञान नही है। तो भी अशोक की धर्म्मलिपियो की भाषा की तरह उस समय भी पूर्वी और पश्चिमी दो भेद तो स्पष्ट ही थे। पश्चिमी भाषा का मुख्य रूप शौरसेनी प्राकृत था और पूर्वी का मागधी प्राकृत, अर्थात् मगध या दक्षिण विहार की भाषा। इन दोनो के बीच मे कुछ भाग की भाषा का रूप मिश्रित था, यह अर्द्ध-मागधी कहलाती थी। इस अतिम रूप से अधिक मिलती जुलती महाराष्ट्री प्राकृत थी, जो आजकल के बरार प्रान्त और उसके निकटवर्त्ती प्रदेश मे बोली जाती थी। इनके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश मे एक भिन्न भाषा बोली जाती थी, जो प्रथम प्राकृत काल में सिंधु नदी के तट पर बोली जानेवाली भाषा से निकली होगी। इस भाषा की स्थिति का प्रमाण द्वितीय प्राकृत काल की भाषाओं के अतिम रूप अपभ्रशों से मिलता है।

§ ३. अपभ्रश भाषाएँ (५०० ई०-१००० ई०)—साहित्य मे प्रयुक्त होने पर वैयाकरणों ने 'प्राकृत' भाषाओं को कठिन अस्वाभाविक नियमों से बाँध दिया, किन्तु जिन बोलियो के आधार पर उनकी रचना हुई थी, वे बाँधी नही जा सकती थी। लोगो की ये बोलियाँ विकास को प्राप्त होती गई। व्याकरण के नियमो के अनुकूल मँजी और बँधी हुई साहित्यिक प्राकृतो के सन्मुख वैयाकरणो ने लोगो की इन नवीन बोलियो को 'अपभ्रश' अर्थात् बिगडी हुई भाषा नाम दिया। भाषा तत्त्ववेत्ताओं की दृष्टि मे इसका वास्तविक अर्थ 'विकास को प्राप्त' हुई भाषाएँ होगा।

जब साहित्यिक प्राकृते मृत भाषाएँ हो गई, उस समय इन अपभ्रशों का भी भाग्य जगा और इनको भी साहित्य के क्षेत्र मे स्थान मिलने लगा। साहित्यिक अपभ्रशो के लेखक अपभ्रशों का आधार प्राकृतो को मानते थे। उनके मत में यह 'प्राकृतोऽपभ्रश' थी। ये लेखक तत्कालीन बोली के आधार पर आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रश बना लेते थे, शुद्ध अपभ्रश अर्थात् लोगो की असली बोली मे नहीं लिखते थे। अतएव साहित्यिक प्राकृतो के समान साहित्यिक अपभ्रशो से भी लोगो की तत्कालीन

असली बोली का ठीक पता नहीं चल सकता। तो भी यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय, तो उस समय की बोली पर बहुत कुछ प्रकाश अवश्य पड़ सकता है।

प्रत्येक प्राकृत का एक अपभ्रंश रूप होगा, जैसे शौरसेनी प्राकृत का शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी प्राकृत का मागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत का महाराष्ट्री अपभ्रंश इत्यादि। वैयाकरणों ने अपभ्रंशों को इस प्रकार विभक्त नहीं किया था। वे केवल तीन अपभ्रंशों के साहित्यिक रूप मानते थे। इनके नाम नागर, ब्राचड़ और उपनागर थे। इनमें नागर अपभ्रंश मुख्य थी। यह गुजरात के उस भाग में बोली जाती थी, जहाँ आजकल नागर ब्राह्मण बसते हैं। नागर ब्राह्मण विद्यानुराग के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इन्हीं के नाम से कदाचित् नागरी अक्षरों का नाम पड़ा। नागर अपभ्रंश के व्याकरण के लेखक हेमचंद्र (बारहवीं शताब्दी) गुजराती ही थे। हेमचंद्र के मतानुसार नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत था। ब्राचड़ अपभ्रंश सिन्ध में बोली जाती थी। उपनागर अपभ्रंश ब्राचड़ तथा नागर के मेल से बनी थी अतः यह पश्चिमी राजस्थान और दक्षिणी पंजाब की बोली होगी। अपभ्रंशों के संबंध में हमारे ज्ञान के मुख्य आधार हेमचंद्र हैं। इन्होंने केवल नागर (शौरसेनी) अपभ्रंश का ही वर्णन किया है। मार्कंडेय के व्याकरण से भी इन अपभ्रंशों के संबंध में अधिक सहायता नहीं मिलती। इन अपभ्रंश भाषाओं का काल छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक माना जा सकता है। अपभ्रंश भाषाएँ द्वितीय काल की अन्तिम अवस्था की द्योतक हैं।

घ. आधुनिक भारतीय आर्य्य भाषाकाल

(१००० ई० से वर्तमान समय तक)

इनमें भारत की वर्तमान आर्य्य भाषाओं की गणना है। इनकी उत्पत्ति प्राकृत भाषाओं से नहीं हुई थी, बल्कि अपभ्रंशों से हुई थी। शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी, गुर्जराती और पहाड़ी भाषाओं का संबंध है। इनमें से गुजराती और राजस्थानी का संपर्क शौरसेनी के नागर

अपभ्रंश के रूप से अधिक है। बिहारी, बँगला, आसामी और उडिया का संबंध मागध अपभ्रंश से है। पूर्वी हिन्दी का अर्धमागधी अपभ्रंश से तथा मराठी का-महाराष्ट्री अपभ्रंश से सबध है। वर्तमान पश्चिमोत्तरी भाषाओं का समूह शेष रह गया। भारत के इस विभाग के लिए प्राकृतो का कोई साहित्यिक रूप नही मिलता। सिन्धी के लिए वैयाकरणो को व्राचड अपभ्रंश का सहारा अवश्य है। लहदा के लिए एक केकय अपभ्रंश की कल्पना की जा सकती है। यह व्राचड अपभ्रंश से मिलती जुलती होगी। पजाबी का सबध भी केकय अपभ्रंश से होना चाहिए किन्तु बाद को इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव बहुत पडा है। पहाड़ी भाषाओं के लिये खस अपभ्रंश की कल्पना की गई है किन्तु बाद को ये राजस्थानी से बहुत प्रभावित हो गई थी।[१]

---

[१]अपभ्रंशो या प्राकृतो और आधुनिक आर्य भाषाओं का इस तरह का सबध बहुत सतोषजनक नहीं मालूम पड़ता। उदाहरण के लिये बिहारी, बँगला, उडिया तथा आसामी भाषाओ का सबध मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। यदि इसका केवल इतना तात्पर्य हो कि मागधी अपभ्रंश के रूपो में थोडे से ऐसे प्रयोग पाये जाते हैं जो आजकल इन समस्त पूर्वीय आर्यभाषाओं में भी मिलते हैं तब तो ठीक है। किन्तु यदि इसका यह तात्पर्य हो कि ५०० ई० से १००० ई० के बीच में बिहार, बगाल, आसाम तथा उडीसा में केवल एक बोली थी जिसका साहित्यिक रूप मागधी अपभ्रंश है तब यह बात सभव नहीं मालूम होती। एक बोली बोलनेवाली जनता भी यदि इतने विस्तृत भूमि खड में फैल कर अधिक दिन रहेगी तो उसकी एक बोली के अनेक रूपान्तर हो जाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार मागधी प्राकृत समस्त पूर्वी प्रदेशो की साहित्यिक भाषा तो भले ही रही हो किन्तु १ ईसवी से ५०० ईसवी के बीच मे इस प्राकृत से सबंध रखने वाली एक ही बोली समस्त पूर्वी प्रदेशो में बोली जाती हो यह सभव नहीं प्रतीत होता। मेरी धारणा तो यह है कि मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषायें मगध प्रदेश की बोली के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषायें रही होगी। मगध के राज

वर्तमान भारतीय आर्य्य भाषाओं का साहित्य मे प्रयोग होना कम से कम तेरहवी शताब्दी ईसवी के आदि से अवश्य प्रारम्भ हो गया था और अपभ्रशो का व्यवहार ग्यारहवी शताब्दी तक साहित्य मे होता रहा। किसी भाषा के साहित्य मे व्यवहृत होने के योग्य बनने मे कुछ समय लगता है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि मध्यकालीन-भारतीय-आर्य्य-भाषाओ के अन्तिम रूप अपभ्रशों से तृतीय काल की

नैतिक प्रभाव के कारण यहाँ की बोली के आधार पर बनी हुई ये साहित्यिक भाषायें समस्त पूर्वी प्रदेशों में मान्य हो गई होगी। इन प्राकृत तथा अपभ्रश कालो में भी बगाल, आसाम, उडीसा, मिथिला तथा काशी प्रदेशों की बोलियाँ भिन्न भिन्न रही होगी। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण अपभ्रश तथा प्राकृत काल के इन प्रदेशों की भाषा के नमूने हमें उपलब्ध नहीं हो सकते। मेरे अनुमान से बोलियो का यह भेद ६०० पू० ई० के लगभग भी कदाचित् मौजूद था। इस भेद का मूलाधार आर्यों के प्राचीन जनपद के विभागो से सबध रखता है। मेरी धारणा है कि १००० पू० ई० के लगभग काशी, मगध, विदेह, अग, बग आदि जनपदो के आर्यों की बोलियो में आज के इन प्रदेशों की बोलियो की अपेक्षा अधिक साम्य रहते हुये भी ये एक दूसरे से कुछ भिन्न अवश्य रही होगी। तात्पर्य यह है प्रत्येक जनपद की प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में कुछ विशेषतायें रही होंगी जो विकास को प्राप्त होकर आजकल की भिन्न भिन्न भाषायें तथा बोलियॉं हो गई हैं। अत आधुनिक भाषाओ और बोलियो का मूलभेद कदाचित् १००० पू० ई० तक पहुँचता है।

शूरसेनी आदि अन्य अपभ्रशों तथा प्राकृतो के सबध में भी मेरी यही कल्पना है। शूरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रश से आधुनिक पजाबी, राजस्थानी गुजराती, तथा पश्चिमी हिन्दी निकली हो यह समझ में नहीं आता। शूरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रश शूरसेन प्रदेश अर्थात् आजकल के ब्रज प्रदेश की उस समय की बोलियो के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषायें रही होगी। साथ ही उस काल में अन्य प्रदेशो में भी आजकल की भाषाओ तथा बोलियों के पूर्व रूप

आधुनिक भारतीय-आर्य्य-भाषाओं का आविर्भाव दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग हुआ होगा। भारत की राजनीतिक उथल पथल में इसी समय एक स्मरणीय घटना हुई थी, १००० ईसवी के लगभग ही महमूद गज़नवी ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया था। इन आधुनिक भारतीय-आर्य्य भाषाओं में हमारी हिंदी भाषा भी सम्मिलित है, अत उसका जन्म काल भी दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग मानना होगा।

प्रचलित रहे होंगे जिनका प्रयोग साहित्य में न होने के कारण उनके अवशेष अब हमें नहीं मिल सकते। आजकल भी ठीक ऐसी ही परिस्थिति है।

आज बीसवीं सदी ईसवी में भागलपुर तक समस्त गगा की घाटी मे केवल एक साहित्यिक भाषा हिन्दी है जिसका मूलाधार मेरठ बिजनौर प्रदेश की खड़ी बोली है। किन्तु साथ ही मारवाडी, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, बुदेली आदि अनेक बोलियाँ अपने अपने प्रदेशो में जीवित अवस्था म मौजूद हैं। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण बीसवीं सदी की इन अनेक बोलियो के नमूने भविष्य में नहीं मिल सकेंगे। केवल खडी बोली हिन्दी के नमूने जीवित रह सकेंगे। किन्तु इस कारण पाँच सौ वर्ष बाद यह कहना कहाँ तक उपयुक्त होगा कि पचीसवीं शताब्दी में गगा की घाटी में पाई जाने वाली समस्त बोलियाँ खड़ी बोली हिन्दी से निकली हैं। उस समय के भारतवर्ष की समस्त भाषाओं में खड़ी बोली हिन्दी गगा की घाटी की बोलियो के निकटतम अवश्य होगी किन्तु यह तो दूसरी बात हुई।

प्रत्येक आधुनिक भाषा तथा बोली के प्रा भा आ तथा म भा आ काल के क्रमबद्ध उदाहरण मिलना सभव नहीं है। अत इस विषय पर शास्त्रीय ढग से विवेचन हो सकना असभव है। तो भी अपने देश तथा अन्य देशों की आधुनिक परिस्थिति को देखकर इस तरह का अनुमान लगाना बिलकुल स्वाभाविक होगा। कुछ प्रदेशों के सबध में थोडा बहुत क्रमबद्ध अध्ययन भी सभव है। हिन्दुस्तान की आधुनिक बोलियो के प्रदेशो के प्राचीन जनपदो से साम्य के सबध में ना प्र प, भा० ३, अ० ४ मे विस्तार के साथ विचार प्रकट किये गये हैं।

इ. आधुनिक भारतीय आर्य भाषायें

क. वर्गीकरण

भाषा तत्व के आधार पर ग्रियर्सन साहब[1] आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं को तीन उपशाखाओं में विभक्त करते हैं जिनके अन्दर छः भाषा समुदाय मानते हैं। यह वर्गीकरण निम्न-लिखित कोष्ठक में दिखलाया गया है :—

	बोलने वालों की संख्या १९२१ की जन संख्या के आधार पर करोड़—लाख
अ. बाहरी उपशाखा	
पश्चिमोत्तरी समुदाय	
१. लहंदा	० —५७
२. सिंधी	० —३४
दक्षिणी समुदाय	
३. मराठी	१ —८८
पूर्वी समुदाय	
४. उड़िया	१ — ०
५. बंगाली	४ —९३
६. आसामी	० —१७
७. बिहारी	३ —४३
आ. बीच की उपशाखा	
बीच का समुदाय	
८. पूर्वी हिंदी	२ —२६
इ. भीतरी उपशाखा	
अन्दर का समुदाय	

[1] लि. स., भूमिका, अ० ११, पृ० १२०।

	९. पश्चिमी हिंदी	४ —१२
	१०. पंजाबी	१ —६२
	११. गुजराती	० —९६
	१२. भीली	० —१९
	१३. खानदेशी	० — २
	१४. राजस्थानी	१ —२७
पहाड़ी समुदाय		
	१५ पूर्वी पहाड़ी या नैपाली	० — ३
	१६. बीच की पहाड़ी[1]	० — ०
	१७. पश्चिमी पहाड़ी	० —१७

ग्रियर्सन महोदय के मतानुसार बाहरी उपशाखा की भिन्न-भिन्न भाषाओं मे उच्चारण तथा व्याकरण संबंधी कुछ ऐसे साम्य पाये जाते हैं जो उन्हे भीतरी उपशाखा की भाषाओ से पृथक् कर देते हैं।[2] उदाहरणार्थ भीतरी उपशाखा की भाषाओ के स का उच्चारण बाहरी उपशाखा की बंगला आदि पूर्वी समुदाय की भाषाओं में श हो जाता है तथा पश्चिमोत्तरी समुदाय की कुछ भाषाओ मे ह हो जाता है। संज्ञा के रूपांतरो में भी यह भेद पाया जाता है। भीतरी उपशाखा की भाषायें अभी तक वियोगावस्था मे हैं किन्तु बाहरी उपशाखा की भाषायें इस अवस्था से निकल कर प्राचीन आर्य्य भाषाओं के समान संयोगावस्था को प्राप्त कर चली हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी मे संबध कारक का, के, की लगा कर बनाया जाता है। इन चिन्हो का संज्ञा से पृथक् अस्तित्व है। यही कारक बंगला मे, जो बाहरी उपशाखा की भाषा है, संज्ञा मे—एर लगा कर बनता है और यह चिह्न संज्ञा का एक भाग हो जाता है। क्रिया के रूपांतरों में भी इस तरह के भेद पाये जाते हैं जैसे हिन्दी में तीनो पुरुषों के सर्वनामों

---

[1] १९२१ की जनसंख्या में बीच की पहाड़ी बोलने वालो की भाषा प्रायः हिंदी लिखी गई है अत: इनकी संख्या केवल ३८५३ दिखलाई गई है।

[2] लि. स., भूमिका, अ० ११।

के साथ केवल एक *मारा* कृदन्त रूप का व्यवहार होता है किन्तु बँगला तथा बाहरी समुदाय की अन्य भाषाओं में अधिक रूपों का प्रयोग करना पड़ता है।

आ भा आ भाषाओं को दो या तीन उपशाखाओं मे विभक्त करने के सिद्धान्त से चैटर्जी महोदय सहमत नहो हैं और इस सम्बन्ध में उन्होंने पर्याप्त प्रमाण[1] भी दिये हैं। चैटर्जी महोदय का वर्गीकरण संक्षेप मे नीचे लिखे ढंग से दिखलाया जा सकता है। ग्रियर्सन साहब के समुदायों के विभाग से उनका वर्गीकरण बहुत कुछ साम्य रखता है:—

- क उदीच्य (उत्तरी)
  - १. सिंधी
  - २. लहंदा
  - ३ पंजाबी
- ख. प्रतीच्य (पश्चिमी)
  - ४. गुजराती
  - ५. राजस्थानी
- ग. मध्यदेशीय (बीच का)
  - ६ पश्चिमी हिन्दी
- घ. प्राच्य (पूर्वी)
  - ७. पूर्वी हिन्दी
  - ८ बिहारी
  - ९. उड़िया
  - १०. बंगाली
  - ११. आसामी
- ङ. दाक्षिणात्य (दक्षिणी)
  - १२, मराठी

---

[1] चै, बे लै, § २९-३१, § ७६-७९।
[2] चै, बे. लै, पृ० ६ मानचित्र।

पहाड़ी भाषाओं का मूल आधार चैटर्जी महोदय पैशाची दर्द या खस को मानते हैं। बाद को मध्यकाल में ये राजस्थान की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गई थी।

ग्रियर्सन तथा चैटर्जी के समुदाय के विभागों की तुलना रोचक है। साधारणतया चैटर्जी महोदय का वर्गीकरण अधिक स्वाभाविक मालूम होता है।

ख. संक्षिप्त वर्णन

भाषा सर्वे[1] के आधार पर प्रत्येक आधुनिक भाषा का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

१. सिन्धी—सिंध देश में सिंधु नदी के दोनों किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इस भाषा के बोलने वाले प्रायः मुसलमान हैं, इसी लिये इसमें फारसी शब्दों का प्रयोग बड़ी स्वतंत्रता से होता है। सिंधी भाषा फ़ारसी लिपि के एक विकृत रूप में लिखी जाती है, यद्यपि निज के हिसाब किताब में देवनागरी लिपि का एक बिगड़ा हुआ रूप भी व्यवहृत होता है। इसकी अपनी लिपि लंडा है। कभी कभी यह गुरुमुखी में भी लिखी जाती है। सिंधी भाषा की पाँच मुख्य बोलियाँ हैं जिनमें से मध्य भाग की 'विचोली' बोली साहित्य की भाषा का स्थान लिये हुए है। सिंध प्रदेश में ही पूर्व काल में व्राचड देश था, जहाँ की प्राकृत और अपभ्रंश इस देश के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। सिंध के दक्षिण में कच्छ द्वीप में कच्छी बोली जाती है। यह सिंधी और गुजराती का मिश्रित रूप है। सिंधी भाषा में साहित्य बहुत कम है।

२. लहंदा—यह पश्चिम पंजाब की भाषा है। इसकी और पंजाबी की सीमाएँ ऐसी मिली हुई हैं कि दोनों का भेद करना दुःसाध्य है। लहंदा पर दर्द या पिशाच भाषाओं का प्रभाव बहुत अधिक है। इसी प्रदेश में प्राचीन केकय देश पड़ता है जहाँ पैशाची प्राकृत तथा व्राचड अपभ्रंश बोली

१. लिं. स., भूमिका, अ० १३-१५।

जाती थी। लहंदा के अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्ची, तथा हिंदकी आदि हैं, किंतु ये सब नाम अनुपयुक्त हैं। पंजाबी में 'लहंदे दी बोली' का अर्थ 'पश्चिम की बोली' है। 'लहंदा' शब्द का अर्थ सूर्यास्त की दिशा अर्थात् पश्चिम है। लहंदा मे न तो विशेष साहित्य है और न वह कोई साहित्यिक भाषा ही है। एक प्रकार से यह कई मिलती जुलती बोलियों का समूह मात्र है। लहंदा का व्याकरण और शब्द समूह दोनों पंजाबी से बहुत कुछ भिन्न हैं। यद्यपि इसकी अपनी भिन्न लिपि 'लंडा' है, किन्तु आज कल यह प्रायः फारसी लिपि मे ही लिखी जाती है।

३. पंजाबी—पंजाबी भाषा का भूमि भाग हिंदी के ठीक पश्चिमोत्तर में है। यह मध्य पंजाब में बोली जाती है। पंजाब के पश्चिम भाग मे लहंदा और पूर्व भाग मे हिंदी का क्षेत्र है। पंजाबी पर दर्द अथवा पिशाच भाषाओं का भी कुछ प्रभाव शेष है। पंजाबी भाषा लहंदा से ऐसी मिली हुई है कि दोनों का अलग करना कठिन है, किंतु पश्चिमी हिंदी से इसका भेद स्पष्ट है। पंजाबी की अपनी लिपि लंडा कहलाती है। यह राजपूताने की महाजनी और काश्मीर की शारदा लिपि से मिलती जुलती है। यह लिपि बहुत अपूर्ण है और इसके पढ़ने में बहुत कठिनता होती है। सिक्खों के गुरु अंगद ने (१५३८-५२ ईसवी) देवनागरी की सहायता से इस लिपि में सुधार किया था। लंडा का यह नया रूप 'गुरुमुखी' कहलाया। आज कल पंजाबी भाषा की पुस्तकें इसी लिपि में छपती हैं। मुसल्मानों के अधिक संख्या में होने के कारण पंजाब मे उर्दू भाषा का प्रचार बहुत है और यही वास्तव में पंजाब के शिक्षित समुदाय की माध्यम है। उर्दू भाषा फारसी लिपि मे लिखी जाती है। पंजाबी भाषा का शुद्ध रूप अमृतसर के निकट बोला जाता है। पंजाबी मे साहित्य अधिक नहीं है। सिक्खों के ग्रंथ साहब की भाषा प्रायः पुरानी हिंदी है, यद्यपि वह गुरुमुखी अक्षरों में लिखा गया है। पंजाबी भाषा मे बोलियो का भेद अधिक नहीं है। उल्लेख योग्य केवल एक बोली 'डोग्री' है। यह जम्मू राज्य में बोली जाती है। 'टक्री' या 'टाकरी' नाम की इसकी लिपि भी भिन्न है।

४. गुजराती—गुजराती भाषा गुजरात, बडोदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों मे बोली जाती है। गुजराती में बोलियों का स्पष्ट भेद अधिक नही है। पारसियों द्वारा अपनाई जाने के कारण गुजराती पश्चिम भारत मे व्यवसाय की भाषा हो गई है। भीली और खान देशी बोलियों का गुजराती से बहुत संपर्क है। गुजराती का साहित्य बहुत विस्तीर्ण तो नही है, किन्तु तो भी उत्तम अवस्था मे है। गुजराती के आदि कवि नरसिह मेहता का (जन्म १४१३ ईसवी) गुजरात मे अब भी बहुत आदर है। प्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचद्र भी गुजराती ही थे। यह बारहवीं शताब्दी ईसवी मे हुए थे। इन्होने अपने व्याकरण मे गुजरात की नागर अपभ्रंश का वर्णन किया है। वैदिक काल से अब तक की भाषा के क्रम पूर्वक उदाहरण केवल गुजरात में ही मिलते हैं। अन्य स्थानों की आर्य्य भाषाओं में यह क्रम किसी न किसी काल मे टूट गया है। गुजराती पहले देवनागरी लिपि मे लिखी जाती थी, किंतु अब गुजरात मे कैथी से मिलते जुलते देवनागरी के बिगडे हुए रूप का प्रचार हो गया है जो गुजराती लिपि कहलाती है।

५ राजस्थानी—पजाबी के ठीक दक्षिण में राजस्थानी अथवा राजस्थान की भाषा है। एक प्रकार से यह मध्यदेश की भाषा का ही दक्षिण पश्चिमी विकसित रूप है। इस विकास की अतिम सीढी गुजराती है। राजस्थानी मे मुख्य चार बोलियाँ हैं—

(१) मेवाती-अहीरवाटी—यह अलवर और देहली के दक्षिण मे गुडगाँव के आस पास बोली जाती है।

(२) मालवी—इसका केंद्र मालवा प्रदेश का वर्तमान इदौर राज्य है।

(३) जयपुरी-हाडौती—यह जयपुर, कोटा और बूँदी मे बोली जाती है।

(४) मारवाडी-मेवाडी—यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमीर तथा उदयपुर राज्यों मे बोली जाती है।

राजस्थानी भाषा बोलने वाले भूमिभाग मे हिंदी भाषा ही साहित्यिक भाषा है। यह स्थान अभी तक राजस्थान की बोलियों में से किसी को नही मिल सका है। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य मारवाडी में पाया जाता है। पुरानी मारवाडी और गुजराती में बहुत कम भेद है। निज के व्यवहार में राजस्थानी महाजनी लिपि में लिखी जाती है। मारवाडियों के साथ महाजनी लिपि समस्त उत्तर भारत मे फैल गई है। छपाई में देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होता है।

६. पश्चिमी हिंदी—यह मनुस्मृति के 'मध्यदेश' की वर्तमान भाषा कही जा सकती है। मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जाने वाली पश्चिमी हिंदी के ही एक रूप खडी बोली से वर्तमान साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। इसकी एक दूसरी बोली व्रजभाषा, पूर्वी हिंदी की बोली अवधी के साथ कुछ काल पूर्व साहित्य के क्षेत्र मे वर्तमान हिंदी भाषा का स्थान लिए हुए थी। इन दो बोलियो के अतिरिक्त पश्चिमी हिंदी में और भी कई बोलियें सम्मिलित हैं, किन्तु साहित्य की दृष्टि से ये विशेष ध्यान देने योग्य नहीं है। उत्तर-मध्य-भारत का वर्तमान साहित्य हिंदी भाषा मे ही लिखा जा रहा है। पढे लिखे मुसलमानो में उर्दू का प्रचार है।

७. पूर्वी हिंदी—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, पूर्वी हिंदी का क्षेत्र पश्चिमी हिंदी के पूर्व मे पडता है। यह कुछ बातों में पश्चिमी हिंदी से मिलती है और कुछ मे बाहरी समुदाय की बिहारी भाषा से। व्याकरण के अधिकांश रूपों में इसका सबंध पश्चिमी हिंदी से कम है। विशेष लक्षण इसमें पूर्वी समुदाय की भाषाओ के ही मिलते हैं। पूर्वी हिंदी भाषा में तीन मुख्य बोलियाँ हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढी। अवधी बोली का दूसरा नाम कोसली भी है। कोसल अवध का प्राचीन नाम था। तुलसीदास जी के समय से श्री रामचन्द्र जी के यशागान मे प्राय अवधी का ही प्रयोग होता रहा है। जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर जी ने अपने धर्म का प्रचार करने में यहाँ की ही प्राचीन बोली अर्द्ध-मागधी का प्रयोग किया था। बहुत सा जैन साहित्य अर्द्ध मागधी प्राकृत में है। अवधी और बघेली भाषा में साहित्य बहुत है। पूर्वी

हिंदी प्रायः देवनागरी लिपि मे लिखी जाती है और छपाई मे तो सदा इसी का प्रयोग होता है। लिखने मे कभी कभी कैथी लिपि भी काम मे आती है। अपने प्राचीन रूप अर्द्ध मागधी प्राकृत के समान पूर्वी हिंदी अब भी बीच की भाषा है। इसके पश्चिम मे शौरसेनी प्राकृत का नया रूप पश्चिमी हिंदी है और पूर्व मे मागधी प्राकृत को स्थानापन्न बिहारी भाषा है।

८. **बिहारी**—यद्यपि राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से बिहार का संबंध संयुक्त प्रान्त से ही रहा है, किन्तु उत्पत्ति की दृष्टि से यहाँ की भाषा बँगला की बहिन है। बँगला, उड़िया और आसामी के साथ इसकी उत्पत्ति भी मागध अपभ्रंश से हुई है। हिन्दी भाषा बिहारी की चचेरी बहिन कही जा सकती है। मागध अपभ्रंश के बोले जाने वाले भूमि भाग मे ही आजकल बिहारी बोली जाती है। बिहारी भाषा मे तीन मुख्य बोलियाँ हैं—

(१) मैथिली, जो गंगा के उत्तर मे दर्भंगा के आस पास बोली जाती है।

(२) मगही, जिसका केंद्र पटना और गया समझना चाहिये।

(३) भोजपुरी, जो मुख्यतया संयुक्त प्रान्त की गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियों मे तथा बिहार प्रान्त के शाहबाद, चम्पारन और सारन जिलों मे बोली जाती है।

इनमे मैथिली और मगही एक दूसरे के अधिक निकट हैं किन्तु भोजपुरी इन दोनो से भिन्न है। चैटर्जी महोदय भोजपुरी को मैथिली-मगही से इतना भिन्न मानते हैं कि ग्रियर्सन साहब को तरह वे इन तीनों को एक साथ रख कर बिहारी भाषा नाम देने को सहसा उद्यत नहीं हैं।[1] बिहारी तीन लिपियों मे लिखी जाती है। छपाई मे देवनागरी अक्षर व्यवहार मे आते हैं तथा लिखने में साधारणतया कैथी लिपि का प्रयोग होता है। मैथिली ब्राह्मणों की एक

---

[1] चै., बे. लै., § ५२।

अपनी लिपि अलग है जो मैथिली कहलाती है और बंगला अक्षरों से बहुत मिलती हुई है। बिहारी बोले जाने वाले प्रदेश मे हिंदी ही साहित्यिक भाषा है। बिहार प्रान्त में शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी ही है।

९. उड़िया—प्राचीन उत्कल देश अथवा वर्तमान उड़िया उपप्रान्त में यह भाषा बोली जाती है। इसको उत्कली अथवा ओड्री भी कहते हैं। उड़िया शब्द का शुद्ध रूप ओड़िया है। सब से प्रथम कुछ उड़िया शब्द तेरहवीं शताब्दी के एक शिलालेख में आए हैं। प्रायः एक शताब्दी के बाद का एक अन्य शिलालेख मिलता है जिसमे कुछ वाक्य उड़िया भाषा मे लिखे पाए गए हैं। इनसे विदित होता है कि उस समय तक उड़िया भाषा बहुत कुछ विकसित हो चुकी थी। उड़िया लिपि बहुत कठिन है। इसका व्याकरण बंगाली से बहुत मिलता जुलता है, इसलिये बंगाली के कुछ पंडित इसे बंगाली भाषा की एक बोली समझते थे, किन्तु यह भ्रम था। बंगाली के साथ ही उड़िया भी मागधी अपभ्रंश से निकली है। बंगाली और उड़िया आपस मे बहिनें हैं; इनका संबंध माँ बेटी का नहीं है। उड़िया लोग बहुत काल तक विजित रहे हैं। आठ शताब्दी तक उड़ीसा मे तैलंगों का राज्य रहा। अभी कुछ ही काल पूर्व प्रायः पचास वर्ष तक नागपुर के भोंसले राजाओं ने उड़ीसा पर राज्य किया है। इन कारणों से उड़िया भाषा में तेलगु और मराठी शब्द बहुतायत से पाये जाते हैं। मुसलमानो और अँग्रेजों के कारण फ़ारसी और अंग्रेज़ी शब्द तो हैं ही। उड़िया साहित्य विशेष रूप से श्री कृष्ण के संबंध मे है।

१०. बंगाली—बंगाली गंगा के मुहाने और उसके उत्तर और पश्चिम के मैदानों मे बोली जाती है। गाँव के बंगालियो और नगर वालों की बोली में बहुत अंतर है। साहित्य की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दो का प्रचार शायद बंगला में सबसे अधिक है। उत्तरी, पूर्वी तथा पश्चिमी बंगला में भेद है। पूर्वी बंगला का केंद्र ढाका है। हुगली के निकट बोली जाने वाली पश्चिमी बंगला का ही एक रूप वर्तमान साहित्यिक भाषा हो गया है। बंगला उच्चारण

की विशेषता 'अ' का 'ओ' तथा 'स' का 'श' कर देना प्रसिद्ध ही है। बंगाली का साहित्य अत्यंत उत्तम अवस्था में है। बंगला लिपि देवनागरी का ही एक रूपान्तर है।

११. आसामी—आसामी बाह्य विभाग की अंतिम भाषा है। जैसा इसके नाम से प्रकट होता है यह आसाम प्रदेश मे बोली जाती है। वहाँ के लोग इसे असमिया कहते हैं। उड़िया की तरह आसामी भी बंगला की बहिन है बेटी नहीं। यद्यपि आसामी व्याकरण बंगला व्याकरण से बहुत भिन्न नहीं है, किन्तु इन दोनो के साहित्य की प्रगति पर ध्यान देने से इनका भेद स्पष्ट हो जाता है। आसामी भाषा के प्राचीन साहित्य की यह विशेषता है कि उसमे ऐतिहासिक ग्रंथो की कमी नहीं है। अन्य भारतीय आर्य्य भाषाओं मे यह अभाव बहुत खटकता है। आसामी प्रायः बंगला लिपि मे लिखी जाती है। इसमे कुछ सुधार अवश्य कर लिया गया है।

१२. मराठी—दक्षिण में महाराष्ट्री प्राकृत की पुत्री मराठी भाषा है। यह बंबई प्रान्त में पूना के चारो ओर, तथा बरार प्रान्त और मध्य प्रान्त के दक्षिण के नागपुर आदि चार जिलों मे बोली जाती है। इसके दक्षिण में द्राविड़ भाषाएँ हैं। इसकी तीन मुख्य बोलियाँ हैं जिनमे से पूना के निकट बोली जाने वाली देशी-मराठी साहित्यिक भाषा है। मराठी प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी और छापी जाती है। नित्य के व्यवहार मे 'मोड़ी' लिपि का व्यवहार होता है। इसका आविष्कार महाराज शिवाजी के (१६२७-८० ईसवी) सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अवा जी ने किया था। मराठी का साहित्य बहुत विस्तीर्ण, लोकप्रिय तथा प्राचीन है।

१३. पूर्वी पहाड़ी—यह हिमालय के दक्षिण पार्श्व में नेपाल मे बोली जाती है। इसको नेपाली, पर्बतिया, गोरखाली और खस-कुरा भी कहते हैं। पूर्वी पहाड़ी भाषा का विशुद्ध रूप काठमंडू की घाटी मे बोला जाता है। इसमें कुछ नवीन साहित्य भी है। नेपाल राज्य की अधिकांश प्रजा की

भाषाएँ तिब्बती-चीनी वर्ग की हैं जिनमे नेवार जाति के लोगों की भाषा 'नेवारी' मुख्य है। नेपाल के राज-दरबार में हिंदी भाषा का बहुत आदर है। नेपाली का अध्ययन जर्मन और रूसी विद्वानों ने विशेष किया है। नेपाली देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है।

१४. **माध्यमिक पहाड़ी**—इसके दो मुख्य भेद हैं (१) कुमाउँनी जो अल्मोड़ा-नैनीताल के प्रदेश की बोली है, और (२) गढ़वाली जो गढ़वाल राज्य तथा मसूरी के निकट पहाड़ी प्रदेश मे बोली जाती है। इन दोनों में साहित्य विशेष नही है। यहाँ के लोगो ने साहित्यिक व्यवहार के लिये हिंदी भाषा को ही अपना लिया है। ये दोनो पहाड़ी बोलियें भी देवनागरी लिपि मे ही लिखी जाती हैं।

१५. **पश्चिमी पहाड़ी**—इस भाषा की भिन्न भिन्न बोलियें सरहिंद के उत्तर मे शिमला के निकटवर्ती प्रदेश मे बोली जाती हैं। इन बोलियों का कोई सर्वमान्य मुख्य रूप नहीं है, न इनमे साहित्य ही पाया जाता है। इस प्रदेश में तीस से अधिक बोलियो का पता चला है जिनमें संयुक्त प्रान्त के जौनसार-बावर प्रदेश की बाली जौनसारी, शिमला पहाड़ की बोली क्योंथली, कुलू प्रदेश की कुलुई और चम्बा राज्य की चम्बाली मुख्य हैं। चम्बाली बोली की लिपि भिन्न है। शेष टाकरी या टक्करी लिपि मे लिखी जाती हैं।

वर्तमान पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी से बहुत मिलती हैं। विशेषतया माध्यमिक पहाड़ी का संबंध जयपुरी से और पश्चिमी पहाड़ी का संबंध मारवाड़ी से अधिक मालूम होता है। पश्चिमी तथा मध्य पहाड़ी प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष था। पूर्व काल मे सपादलक्ष में गूजर आकर बस गए थे। बाद को ये लोग पूर्व-राजस्थान की ओर चले गए थे। मुसलमान काल में बहुत से राजपूत फिर सपादलक्ष में आ बसे थे। जिस समय सपादलक्ष की खस जाति ने नेपाल को जीता था, तब इन खस विजेताओं के साथ यहाँ के राजपूत और गूजर भी शामिल थे। इस संपर्क के कारण ही राजस्थानी और पहाड़ी भाषाओं मे कुछ समानता पाई जाती है।

ई—हिन्दी भाषा तथा बोलियाँ

क. हिन्दी के आधुनिक साहित्यिक रूप

१. हिन्दी—संस्कृत की स ध्वनि फ़ारसी में ह के रूप मे पायी जाती है अत. संस्कृत के 'सिन्धु' और 'सिन्धी' शब्दों के फारसी रूप 'हिन्द' और 'हिन्दी' हो जाते हैं। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' शब्द फारसी भाषा का ही है। संस्कृत अथवा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के किसी भी प्राचीन ग्रंथ मे इसका व्यवहार नही किया गया है। फ़ारसी में 'हिन्दी' का शब्दार्थ 'हिन्द से संबंध रखने वाला' है, किन्तु इसका प्रयोग 'हिन्द के रहने वाले' अथवा 'हिन्द की भाषा' के अर्थ मे होता रहा है। 'हिन्दी' शब्द के अतिरिक्त फारसी से ही 'हिन्दू' शब्द भी आया है। फारसी में हिन्दू शब्द का व्यवहार 'इस्लाम धर्म के न मानने वाले हिन्द-वासी' के अर्थ में प्रायः मिलता है। इसी अर्थ के साथ यह शब्द अपने देश में प्रचलित हो गया है।

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य्य, द्राविड अथवा अन्य कुल की भाषा के लिये हो सकता है किन्तु आज कल वास्तव मे इसका व्यवहार उत्तर भारत के मध्य भाग के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ मे मुख्यतया, तथा इसी भूमि भाग की बोलियो और उनसे संबंध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपो के अर्थ मे साधारणतया होता है। इस भूमि भाग की सीमाये पश्चिम मे जैसलमीर, उत्तर-पश्चिम मे अम्बाला, उत्तर मे शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूरब में भागलपुर दक्षिण-पूरब में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम मे खंडवा तक पहुँचती हैं। इस भूमि भाग मे हिन्दुओं के आधुनिक साहित्य, पत्र-पत्रिकाओ, शिष्ट बोल चाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एक मात्र हिन्दी ही है। साधारणतया 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अर्थ मे किया जाता है किन्तु

साथ ही इस भूमिभाग की ग्रामीण बोलियों—जैसे मारवाडी, ब्रज, छत्तीस-गढी, मैथिली आदि को तथा प्राचीन ब्रज, अवधी आदि साहित्यिक भाषाओं को भी हिन्दी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है। हिन्दी भाषा का यह प्रचलित अर्थ है। इस समस्त भूमिभाग की जनसंख्या लगभग ११ करोड़ है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिये हुए भूमिभाग मे तीन चार भाषायें मानी जाती हैं। राजस्थान की बोलियों के समुदाय को 'राजस्थानी' के नाम से पृथक् भाषा माना गया है। बिहार मे मिथिला और पटना-गया की बोलियों तथा सयुक्त प्रान्त मे बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बोलियों के समूह को एक भिन्न 'बिहारी' भाषा माना जाता है। उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों की बोलियें भी 'पहाडी भाषाओं' के नाम से पृथक् मानी जाती हैं। इस तरह से भाषा शास्त्र के सूक्ष्म भेदों की दृष्टि से 'हिन्दी भाषा' की सीमायें निम्नलिखित रह जाती हैं—उत्तर मे तराई, पश्चिम में पंजाब के अम्बाला और हिसार के जिले तथा पूरब मे फैजाबाद, प्रतापगढ और इलाहाबाद के जिले। दक्षिण की सीमा में कोई परिवर्तन नही होता और रायपुर तथा खंडवा पर ही यह जाकर ठहरती है। इस भूमिभाग मे हिन्दी के दो उप-रूप माने जाते हैं जो पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी के नाम से पुकारे जाते हैं। हिन्दी बोलने वालों की संख्या लगभग ६½ करोड है। भाषा-शास्त्र से सबंध रखने वाले ग्रंथों में 'हिन्दी भाषा' शब्द का प्रयोग इसी भूमि भाग की बोलियो तथा उनकी आधारभूत साहित्यिक भाषाओं के अर्थ में होता है। इस पुस्तक मे भी वर्तमान शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार इसी अर्थ मे हिन्दी शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्तर केवल इतना ही है कि शास्त्रीय दृष्टि से बिहारी भाषा के अन्तर्गत समझी जाने वाली बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी बोली का वर्णन भी प्राय: हिन्दी की बोलियों के साथ ही कर दिया गया है।

हिन्दी शब्द के शब्दार्थ, प्रचलित अर्थ, तथा शास्त्रीय अर्थ के भेद को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये। साहित्यिक पुस्तकों मे इस शब्द का प्रयोग चाहे किसी अर्थ मे किया जायें किन्तु भाषा से संबंध रखने वाले ग्रथो मे इस शब्द

का प्रयोग आधुनिक वैज्ञानिक खोज के अनुसार दिये गये अर्थ मे ही करना उचित होगा।

२. उर्दू—आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के उस दूसरे साहित्यिक रूप का नाम उर्दू है जिसका व्यवहार उत्तर भारत के समस्त पढ़े लिखे मुसलमानो तथा उनसे अधिक सपर्क में आने वाले कुछ हिन्दुओं जैसे पजाबी, देसी काश्मीरी तथा पुराने कायस्थों आदि मे पाया जाता है। भापा की दृष्टि से इन दोनो साहित्यिक भाषाओ में विशेष अन्तर नही है वास्तव मे दोनो का मूलाधार एक ही है किन्तु साहित्यिक वातावरण, शब्द समूह, तथा लिपि मे दोनो मे आकाश पाताल का भेद है। हिन्दी इन सब बातो के लिये भारत की प्राचीन सस्कृति तथा उसके वर्तमान रूप की ओर देखती है, उर्दू भारत के वातावरण मे उत्पन्न होने और पनपने पर भी फारस और अरब की सभ्यता और साहित्य से जीवन-श्वास ग्रहण करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक साहित्यिक हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का जन्म पहले हुआ था। भारतवर्ष मे आने पर बहुत दिनों तक मुसल्मानो का केन्द्र देहली रहा अत फारसी, तुर्की और अरबी बोलने वाले मुसल्मानों ने जनता से बातचीत और व्यवहार करने के लिये धीरे धीरे देहली के अडोस पडोस की बोली सीखी। इस बोली मे अपने विदेशी शब्द समूह का स्वतन्त्रता पूर्वक मिला लेना इनके लिये स्वाभाविक था। इस प्रकार की बोली का व्यवहार सब से प्रथम "उर्दू-ए-मुअल्ला" अर्थात् देहली के महलों के बाहर 'शाही फौजी बाजारों' मे होता था अत इसी से देहली के पड़ोस की बोली के इस विदेशी शब्दो से मिश्रित रूप का नाम 'उर्दू' पडा। 'उर्दू' शब्द का अर्थ बाजार है। वास्तव मे आरम्भ मे उर्दू बाजारू भापा थी। शाही दरबार से सपर्क मे आने वाले हिन्दुओं का इसे अपनाना स्वाभाविक था क्योकि फ़ारसी-अरबी शब्दों से मिश्रित किन्तु अपने देश की एक बोली मे इन भिन्न भापा भापा विदेशियो से बातचीत करने मे इन्हे सुविधा रहती होगी। जैसे

ईसाई धर्म ग्रहण कर लेने पर भारतीय भाषायें बोलने वाले भारतीय अंग्रेजी से अधिक प्रभावित होने लगते हैं उसी तरह मुसल्मान धर्म ग्रहण कर लेने वाले हिन्दुओं मे भी फारसी के बाद उर्दू का विशेष आदर होना स्वाभाविक था। धीरे धीरे यह भारतीय मुसल्मान जनता की अपनी भाषा हो गई। शासकों द्वारा अपनाये जाने के कारण यह उत्तर भारत के समस्त शिष्ट समुदाय की भाषा मानी जाने लगी। जिस तरह आज कल पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी के मुँह से 'मुझे चान्स (Chance) नही मिला' निकलता है, उसी तरह उस समय 'मुझे मौका नही मिला' निकलता होगा। जनता इसी को 'मुझे औसर नही मिला' कहती होगी और अब भी कहती है। बोल-चाल की उर्दू का जन्म तथा प्रचार इसी प्रकार हुआ।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि उर्दू का मूलाधार देहली के निकट की खड़ी बोली है। यही बोली आधुनिक साहित्यिक हिन्दी की भी मूलाधार है। अतः जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिन्दी सगी बहने हैं। विकसित होने पर इन दोनों मे जो अन्तर हुआ उसे रूपक मे यो कह सकते है कि एक तो हिन्दुआनी बनी रही और दूसरी ने मुसल्मान धर्म ग्रहण कर लिया। एक अंग्रेज विद्वान ग्रैहम बेली महोदय ने उर्दू की उत्पत्ति के संबध मे एक नया विचार रक्खा है। उनकी समझ में उर्दू की उत्पत्ति देहली में खडी बोली के आधार पर नही हुई बल्कि इससे पहले ही पंजाबी के आधार पर यह लाहौर के आस पास बन चुकी थी और देहली मे आने पर मुसल्मान शासक इसे अपने साथ ही लाये थे। खड़ी बोली के प्रभाव से इसमे बाद को कुछ परिवर्तन अवश्य हुए किन्तु इसका मूलाधार पंजाबी को मानना चाहिये खड़ी बोली को नहीं। इस सम्बन्ध में बेली महोदय का सब से बड़ा तर्क यह है कि देहली को शासन केन्द्र बनाने के पूर्व १००० से १२०० ईसवी तक लगभग दो सौ वर्ष मुसल्मान पंजाब मे रहे। उस समय वहाँ की जनता से संपर्क में आने के लिये उन्हों ने कोई न कोई भाषा अवश्य सीखी होगी और यह भाषा तत्कालीन पंजाबी ही हो सकती है। यह स्वाभाविक है कि भारत मे आगे बढ़ने पर वे इसी भाषा का प्रयोग करते रहे

हों। बिना पूर्ण खोज के उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय सर्व सम्मत मत यही है कि उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिन्दी दोनों की मूलाधार देहली मेरठ की खड़ी बोली ही है।

उर्दू का साहित्य मे प्रयोग दक्षिण हैदराबाद के मुसल्मानी दरबार से आरम्भ हुआ। उस समय तक देहली आगरा के दरबार मे साहित्यिक भाषा का स्थान फारसी को मिला हुआ था। साधारण जन समुदाय की भाषा होने के कारण अपने घर पर उर्दू हेय समझी जाती थी। हैदराबाद रियासत की जनता की भाषायें भिन्न द्राविड़ वंश की थीं अतः उनके बीच मे यह मुसल्मानी आर्य भाषा, शासकों की भाषा होने के कारण, विशेष गौरव की दृष्टि से देखी जाने लगी इसीलिये उसका साहित्य मे प्रयोग करना बुरा नहीं समझा गया। औरंगाबादी वली उर्दू साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। वली के कदमों पर ही मुग़ल-काल के उत्तरार्द्ध में देहली और उसके बाद लखनऊ के मुसल्मानी दरबारों मे भी उर्दू भाषा में कविता करने वाले कवियों का एक समुदाय बन गया जिसने इस बाज़ारू बोली को साहित्यिक-भाषाओं के सिंहासन पर बैठा दिया। फारसी शब्दों के अधिक मिश्रण के कारण कविता मे प्रयुक्त उर्दू को 'रेख़्ता' (शब्दार्थ 'मिश्रित') कहते हैं। स्त्रियों की भाषा 'रेख़्ती' कहलाती है। दक्षिणी मुसल्मानों की भाषा 'दक्खिनी' उर्दू कहलाती है। इसमें फारसी शब्द कम इस्तेमाल होते हैं और उत्तर भारत की उर्दू की अपेक्षा यह कम परिमार्जित है। ये सब उर्दू के रूप रूपान्तर हैं। हिन्दी भाषा के गद्य के समान, उर्दू भाषा का गद्य-साहित्य मे व्यवहार अंग्रेज़ी शासन काल मे ही आरम्भ हुआ। मुद्रणकला के साथ इसका प्रचार भी अधिक बढ़ा। उर्दू भाषा अरबी-फारसी अक्षरों मे लिखी जाती है। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त मे कचहरी, तहसील और गाँव मे अब भी उर्दू में ही सरकारी कागज़ लिखे जाते हैं अतः नौकरीपेशा हिन्दुओं को भी इसकी जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है। आगरा-देहली की तरफ के हिन्दुओं मे इसका अधिक प्रचार होना स्वाभाविक है। पंजाबी भाषा में

साहित्य न होने के कारण पजाबी लोगो ने तो इसे साहित्यिक भाषा की तरह अपना रक्खा है। हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश मे हिन्दुओ के बीच मे उर्दू का प्रभाव प्रति दिन कम हो रहा है।

✓ ३. **हिन्दुस्तानी**—'हिन्दुस्तानी' नाम यूरोपीय लोगों का दिया हुआ है। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी या उर्दू भाषा का बोलचाल का रूप हिन्दुस्तानी कहलाता है। केवल बोलचाल मे प्रयुक्त होने के कारण इसमे फारसी अथवा सस्कृत शब्दो की भरमार नहीं रहती यद्यपि इसका झुकाव उर्दू की तरफ अधिक रहता है। कदाचित् यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हिन्दुस्तानी उत्तर भारत के पढे लिखे लोगो की बोलचाल की उर्दू है। उत्पत्ति की दृष्टि से आधुनिक साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू के समान ही इसका आधार भी खडी बोली है। एक तरह से यह हिन्दी-उर्दू की अपेक्षा खडी बोली के अधिक निकट है क्योकि यह फारसी संस्कृत के अस्वाभाविक प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त है। दक्षिण के ठेठ द्राविड़ प्रदेशों को छोड़ कर शेष समस्त भारत में हिन्दी-उर्दू का यह व्यवहारिक रूप हर जगह समझ लिया जाता है। कलकत्ता, हैदराबाद, बबई, कराची, जोधपुर, पेशावर, नागपुर, काश्मीर, लाहौर, देहली, लखनऊ, बनारस, पटना आदि सब जगह हिन्दुस्तानी बोली से काम निकल सकता है, अतिम चार पॉच स्थान तो इसके घर ही हैं।

साधारण श्रेणी के लोगों के लिये लिखे गये साहित्य मे हिन्दुस्तानी का प्रयोग पाया जाता है। किस्से, गजलों और भजनो आदि की बाजारू किताबें जो जन समुदाय को प्रिय हो जाती हैं फारसी और देवनागरी दोनों लिपियों मे छापी जाती हैं। इस ठेठ भाषा मे कुछ साहित्यिक पुरुषो ने भी लिखने का प्रयास किया है। इशा की 'रानी केतकी की कहानी' तथा पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'बोलचाल' हिन्दुस्तानी को साहित्यिक बनाने के प्रयोग हैं जिसमें ये सज्जन सफल नही हो सके।

इस पुस्तक में खड़ी बोली शब्द का प्रयोग देहली-मेरठ के आस पास बोली जाने वाली गाँव की भाषा के अर्थ मे किया गया है। भाषा सर्वे मे

ग्रियर्सन महोदय ने इस बोली को 'वर्नाक्युलर हिन्दुस्तानी' नाम दिया है। मेरी समझ में खडी बोली नाम अधिक अच्छा है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी इन तीनो रूपो का मूलाधार यह खडी बोली ही है। कभी कभी ब्रजभाषा तथा अवधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओं के मुकाबले मे आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को भी खडीबोली नाम से पुकारा जाता है[1]। ब्रजभाषा और इस 'साहित्यिक खडी बोली हिन्दी' का झगडा बहुत पुराना हो चुका है। साहित्यिक अर्थ मे प्रयुक्त खडी बोली शब्द तथा भाषा शास्त्र की दृष्टि से प्रयुक्त खडी बोली शब्द के भेद को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये। ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव मे खड़ी खड़ी लगती है कदाचित इसी कारण इसका नाम खड़ी-बोली पड़ा। हिन्दी उर्दू साहित्यिक खडी-बोली मात्र हैं। 'हिन्दुस्तानी' शिष्ट लोगों के बोलचाल की कुछ परिमार्जित खडी-बोली है।

ऊपर के विस्तृत विवेचन से हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा खडी बोली शब्दों के मूल अर्थ, प्रचलित अर्थ, तथा शास्त्रीय अर्थ का भेद स्पष्ट हो गया

---

[1] इस अर्थ म खड़ी बोली का सब से प्रथम प्रयोग लल्लूजी लाल ने प्रेमसागर की भूमिका में किया है। लल्लू जी के ये वाक्य खडी बोली शब्द के व्यवहार पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं अत ज्यो के त्यो नीचे उद्धृत किये जाते हैं। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के आदि रूप का भी यह उद्धरण अच्छा नमूना है। लल्लू जी लाल लिखत हैं —"एक समे व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दशमस्कध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया। सो पाठशाला के लिये श्री महाराजाधिराज, सकल गुणनिधान, पुण्यवान, महाजान मारकुइस वलिजलि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में श्रीयुत गुनगाहक, गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा स सवत् १८६० में श्री लल्लू जी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका सार ल यामनी भाषा छोड दिल्ली आगरे की खडी बोली मे कह नाम प्रेमसागर धरा।"

होगा। हिन्दी भाषा से संबंध रखने वाले ग्रंथो में इन शब्दों का शास्त्रीय अर्थ में ही प्रयोग होता है।

ख, हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ

ऊपर बतलाया जा चुका है कि प्राचीन 'मध्यदेश' की आठ मुख्य बोलियो के समुदाय को भाषा शास्त्र की दृष्टि से हिन्दी नाम से पुकारा जाता है। इनमे से १ खड़ी बोली, २ बांगरू, ३ ब्रज, ४ कनौजी तथा ५ बुंदेली इन पाँच को भाषा सर्वे में 'पश्चिमी हिन्दी' नाम दिया गया है तथा १ अवधी, २ बघेली तथा ३ छत्तीसगढ़ी इन शेष तीनो को 'पूर्वी हिन्दी' नाम से पुकारा गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी का संबंध शौरसेनी प्राकृत तथा पूर्वी हिन्दी का सबंध अर्द्ध मागधी प्राकृत से जोड़ा जाता है। 'भाषा सर्वे' के आधार पर इन आठ बोलियों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है। बिहार की ठेठ बोलियों से बहुत कुछ भिन्न होने तथा हिन्दी से विशेष घनिष्ट संबध होने के कारण बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी बोली का वर्णन भी हिन्दी की इन आठ बोलियो के साथ ही दे दिया गया है।

१, खड़ी बोली—खड़ी-बोली पश्चिम रोहिलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला जिले की बोली है। हिन्दी आदि से इसका संबंध बतलाया जा चुका है। मुसलमानी प्रभाव के निटकतम होने के कारण ग्रामीण खड़ी बोली मे भी फारसी-अरबी के शब्दों का व्यवहार अन्य बोलियो की अपेक्षा अधिक है। किन्तु ये प्राय. अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव रूपों में प्रयुक्त होते हैं। इन्हीं को तत्सम रूप मे प्रयुक्त करने से खड़ी बोली में उर्दू की झलक आने लगती है। खड़ी बोली निम्नलिखित स्थानो मे गाँवो मे बोली जाती है:—रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ्फरनगर सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला, तथा कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भाग। खड़ी बोली बोलने वालों की संख्या ५३ लाख के लगभग है। इस संबंध में निम्नलिखित यूरोपीय देशों की जनसंख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे:—ग्रीस ५४ लाख, बलगेरिया ४९ लाख तथा तीन भाषायें बोलनेवाला स्विटज़रलैंड ३९ लाख।

२. **बांगरू**—बांगरू बोली जाटू या हरियानी नाम से भी प्रसिद्ध है। यह देहली, कर्नाल, रोहतक और हिसार जिलों और पडोस के पटियाला, नाभा और झींद रियासतों के गाँवों मे बोली जाती है। एक प्रकार से यह पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खडी बोली है। बांगरू बोलने वालो की संख्या लगभग २२ लाख है। बांगरू बोली की पश्चिमी सीमा पर सरस्वती नदी बहती है। हिंदी भाषा भाषी प्रदेश के प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र पानीपत तथा कुरुक्षेत्र इसी बोली की सीमा के अंतर्गत पड़ते हैं अतः इसे हिंदी की सरहद्दी बोली मानना अनुचित न होगा।

३. **ब्रजभाषा**—प्राचीन हिंदी साहित्य की दृष्टि से व्रज की बोली की गिनती साहित्यिक भाषाओं मे होने लगी है इसलिये आदरार्थ यह ब्रजभाषा कह कर पुकारी जाने लगी। विशुद्ध रूप मे यह बोली अब भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर मे बोली जाती है। गुडगाँव, भरतपुर, करौली तथा ग्वालियर के पश्चिमोत्तर भाग मे इस मे राजस्थानी और बुंदेली की कुछ कुछ झलक आने लगती है। बुलन्दशहर, बदायूँ और नैनीताल तराई में खड़ी बोली का कुछ प्रभाव शुरू हो जाता है तथा एटा, मैनपुरी और बरेली जिलो मे कुछ कनौजीपन आने लगता है। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि पीलीभीत तथा इटावा की बोली भी कनौजी की अपेक्षा ब्रजभाषा के अधिक निकट है। ब्रजभाषा बोलने वालों की संख्या लगभग ७९ लाख है। तुलना के लिये नीचे लिखे जनसंख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे—टर्की ८० लाख, बेलजियम ७७ लाख, हंगरी ७८ लाख, हालैंड ६८ लाख, आस्ट्रिया ६१ लाख तथा पुर्तगाल ६० लाख।

जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केन्द्र हुआ तब से ब्रजभाषा में कृष्ण साहित्य लिखा जाने लगा। धीरे धीरे यह बोली समस्त हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई। १९ वीं सदी मे साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली ब्रजभाषा की स्थानापन्न हुई।

४. **कनौजी**—कनौजी बोली का क्षेत्र ब्रजभाषा और अवधी के बीच में है। कनौजी को पुराने कनौज राज्य की बोली समझना चाहिये। यह

व्रजभाषा से बहुत मिलती जुलती है। कनौजी का केन्द्र फरुखाबाद है किन्तु उत्तर में यह हरदोई, शाहजहाँपुर तथा पीलीभीत तक और दक्षिण में इटावा तथा कानपुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। कनौजी बोलने वालों की सख्या ४५ लाख है। व्रजभाषा के पडोस में होने के कारण साहित्य के क्षेत्र में कनौजी कभी भी आगे नही आ सकी। इस भूमिभाग में प्रसिद्ध कविगण तो कई हुए किन्तु इन सब ने व्रजभाषा में ही अपनी रचनायें कीं।

५. बुदेली—बुदेली बुदेल खड की बोली है। शुद्ध रूप मे यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओडछा, सागर, नृसिहपुर, सेओनी तथा हुशगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाडा के कुछ भागों मे पाये जाते हैं। बुदेली बोलने वाला की सख्या ६९ लाख के लगभग है। मध्य काल मे बुदेल खड साहित्य का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है किन्तु यहाँ होने वाले कवियों ने भी व्रजभाषा मे ही कविता की है यद्यपि इनकी भाषा पर अपनी बुदेली बोली का प्रभाव अधिक पाया जाता है।

६. अवधी—हरदोई जिले को छोड कर अवधी शेष अवध की बोली है। यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैज़ाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ, बाराबकी में तो बोली ही जाती है। इन ज़िलों के अतिरिक्त दक्षिण मे गगापार इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर और मिर्ज़ापुर तथा जौनपुर के कुछ हिस्से में भी बोली जाती है। बिहार के मुसल्मान भी अवधी बोलते हैं। यह खिचडी वाला भाग मुज़फ्फरपुर तक है। अवधी बोलने वाला की सख्या लगभग १ करोड ४२ लाख है। व्रजभाषा के साथ अवधी मे भी कुछ साहित्य लिखा गया था यद्यपि बाद को व्रजभाषा को प्रतिद्वन्द्विता मे यह ठहर न सकी। पद्मावत और रामचरित मानस अवधी के दो सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रत्न हैं।

७. बघेली—अवधी के दक्षिण में बघेली का क्षेत्र है। इसका केन्द्र रीवाँ राज्य है किन्तु यह मध्य प्रान्त के दमोह, जबलपुर, माडला तथा बालाघाट के जिलों तक फैली हुई है। बघेली बोलने वालों की संख्या लगभग

४६ लाख है। जिस तरह बुदेल खंड के कवियों ने ब्रजभाषा को अपना रक्खा था उसी तरह रीवाँ के दरबार में बघेली कविगण साहित्यिक भाषा के रूप मे अवधी का आदर करते थे।

८. छत्तीसगढ़ी—छत्तीसगढ़ी को *लुरिया या खल्ताही भी कहते हैं।* यह मध्यप्रान्त मे रायपुर और बिलासपुर के जिलो तथा काँकेर, नन्दगाँव, खैरगढ़, रामगढ़, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर आदि राज्यों मे भिन्न भिन्न रूपों मे बोली जाती है। छत्तीसगढी बोलने वालो की संख्या लगभग ३३ लाख है जो डेनमार्क की जनसंख्या के बिल्कुल बराबर है। मिश्रित रूपो को मिला कर बोलने वालों की संख्या ३८ लाख के लगभग हो जाती है जो स्विटजरलैंड की जनसंख्या से टक्कर लेने लगती है। छत्तीसगढ़ी में पुराना साहित्य बिल्कुल ही नही है। कुछ नई बाजारू किताबे अवश्य छपी हैं।

९. भोजपुरी—*बिहार के शाहबाद जिले में* भोजपुर एक छोटा सा कस्बा और पर्गना है। इस बोली का नाम इसी स्थान से पड़ा है यद्यपि यह दूर दूर तक बोली जाती है। भोजपुरी बोली बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया; गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़; शाहाबाद, चम्पारन, सारन तथा छोटानागपुर तक फैली पडी है। बोलने वालों को संख्या पूरे दो करोड के लगभग है। भोजपुरी में साहित्य कुछ भी नहीं है। सस्कृत का केन्द्र होने के अतिरिक्त काशी हिन्दी साहित्य का भी प्राचीन केन्द्र रहा है किन्तु भोजपुरी बोली से घिरे रहने पर भी इसका प्रयोग साहित्य मे कभी नही किया गया। काशी में रहते हुये भी कविगण प्राचीन काल में ब्रज तथा अवधी मे और आधुनिक काल मे आधुनिक साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी मे लिखते रहे हैं। भाषा संबंधी कुछ साम्यों को छोड़ कर शेष सब बातो मे भोजपुरी प्रदेश बिहार की अपेक्षा हिन्दी प्रदेश के अधिक निकट रहा है।

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि संयुक्त प्रान्त मे चार मुख्य बोलियाँ बोली जाती हैं अर्थात् मेरठ-बिजनौर की खड़ी बोली, मथुरा-आगरा की ब्रजभाषा, लखनऊ-फैजाबाद की अवधी तथा बनारस-गोरखपुर की

भोजपुरी। कनौजी व्रजभाषा और अवधी के बीच की एक बोली है। देहली कमिश्नरी को बागरू बोली हिन्दी की सरहदी बोली है। संयुक्त प्रान्त की झाँसी कमिश्नरी, मध्य भारत तथा हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में बुंदेली, बघेली तथा छत्तीसगढी का क्षेत्र है जिनके केन्द्र क्रम से झाँसी, रीवाँ तथा रायपुर हैं।

उ. हिन्दी शब्द समूह तथा अन्य भाषाओं का प्रभाव[1]

शब्द समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है। किसी भी भाषा के संबंध मे यह नही कहा जा सकता कि वह अपने आदि विशुद्ध रूप मे आज तक चली जाती है। भाषा के माध्यम की सहायता से दो व्यक्ति अथवा समुदाय अपने विचार एक दूसरे पर प्रकट करते हैं अतः भाषा का मिश्रित होना उसका स्वभाव ही समझना चाहिये। भाषा के संबंध में 'विशुद्ध' शब्द का प्रयोग करने से केवल इतना ही तात्पर्य हो सकता है कि किसी विशेष काल अथवा देश मे उसका वह विशेष रूप प्रचलित था या है। उन्ही अवस्थाओ मे वह भाषा विशुद्ध कहला सकती है। दूसरे देश अथवा उसी देश में दूसरे काल में उसी भाषा का रूप बदल जायगा और तब इस परिवर्तित रूप को ही 'विशुद्ध' की उपाधि मिल सकेगी। यदि भरतपुर के गाँव में आजकल 'का खन उतरे हे ह्यां' कहना विशुद्ध भाषा का प्रयोग करना है तो मेरठ जिले मे इसी पर लोगों को हँसी आ सकती है। मेरठ मे 'कब उत्रे थे ह्यां' ऐसा कहना ही शुद्ध भाषा का प्रयोग करना हो सकता है। भरतपुर के उसी गाँव मे पाँच सौ वर्ष बाद यही बात किसी दूसरे 'विशुद्ध' रूप मे कही जावेगी और पाँच सौ वर्ष पहले कदाचित् भिन्न विशुद्ध रूप मे कही जाती रही होगी। अतः अन्य समस्त भाषाओं के समान ही हिंदी शब्द समूह में भी अनेक जीवित तथा मृत भाषाओं का संग्रह मौजूद है।

---

[1] बे, बे. लै, § १११-१२३। लि. स, भूमिका, पृ० १२७ इ०।

साधारणतया हिन्दी शब्द समूह तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

क. भारतीय आर्य्य भाषाओं का शब्द समूह।

ख. भारतीय अनार्य भाषाओं से आये हुये शब्द।

ग विदेशी भाषाओं के शब्द।

क. भारतीय आर्य्य भाषाओं का शब्द समूह

१. **तद्भव**—हिन्दी शब्द समूह में सबसे अधिक संख्या उन शब्दों की है जो प्राचीन आर्य्य भाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं में होते हुये चले आ रहे हैं। वैयाकरणों की परिभाषा में ऐसे शब्दों को 'तद्भव' कहते हैं, क्योंकि ये संस्कृत से उत्पन्न माने जाते थे। इनमे से अधिकांश का संबंध संस्कृत शब्दों से अवश्य जोड़ा जा सकता है किन्तु जिन शब्दों का संबंध संस्कृत से नहीं जुड़ता उनमे ऐसे शब्द भी हो सकते हों जिनका उद्गम प्रा भा आ भाषा के ऐसे शब्दों से हुआ हो जिनका व्यवहार प्रा भा आ भाषा के इस साहित्यिक रूप संस्कृत मे न होता हो। अतः तद्भव शब्द का संस्कृत शब्द से संबंध निकल आना अनिवार्य नहीं है। इस श्रेणी के शब्द प्रायः म भा आ. भाषाओं में होकर हिन्दी तक पहुँचे हैं अतः इनमें से अधिकांश के रूपों में बहुत परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। जनता की बोली मे तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। साहित्यिक हिन्दी मे इनकी संख्या कम होती जाती है क्योंकि ये गँवारू समझे जाते हैं। वास्तव मे ये असली हिन्दी शब्द हैं और इनके प्रति विशेष ममता होनी चाहिये। *कृष्ण* की अपेक्षा *कान्हा* या *कन्हैया* हिन्दी का अधिक सच्चा शब्द है।

२. **तत्सम**—साहित्यिक हिन्दी में तत्सम अर्थात् प्रा. भा आ. भाषा *के साहित्यिक रूप संस्कृत के विशुद्ध शब्दों की संख्या सदा से अधिक रही है।* आधुनिक साहित्यिक भाषा में तो यह और भी अधिक बढ़ती जा रही है। इसका कारण कुछ तो भाषा की नवीन आवश्यकतायें हैं किन्तु अधिकतर विद्वत्ता प्रकट करने की आकांक्षा इसके मूल मे रहती है। अधिकांश तत्सम शब्द

आधुनिक काल मे हिन्दी मे आये हैं। कुछ तत्सम रूपवाले शब्द ऐसे भी हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से तद्भव शब्दों के बराबर ही प्राचीन हैं किन्तु ध्वनियों की दृष्टि से सरल होने के कारण इनमें परिवर्तन करने की कभी आवश्यकता नही पड़ी। जो संस्कृत शब्द आधुनिक काल मे विकृत हुये हैं वे 'अर्द्ध तत्सम' कहलाते हैं जैसे कान्ह तद्भव रूप है किन्तु किशन अर्द्धतत्सम रूप है क्योकि संस्कृत *कृष्ण* को लेकर यह आधुनिक समय में ही बिगाड़ कर बनाया गया है।

बंगला, मराठी, पंजाबी आदि आ. भा. आ भाषाओं से आये हुये शब्द हिन्दी मे बहुत कम है क्योंकि हिन्दी भाषा भाषी लोगों ने संपर्क में आने पर भी इन भाषाओं को बोलने का कभी उद्योग नही किया। इन अन्य भाषाओं के शब्द समूह पर हिन्दी की छाप अधिक गहरी है।

ख. भारतीय अनार्य भाषाओं से आये हुये शब्द

हिन्दी के तत्सम और तद्भव शब्द समूह मे बहुत से शब्द ऐसे हैं जो प्राचीन काल मे अनार्य भाषाओं से तत्कालीन आर्य्य भाषाओं मे ले लिये गये थे। हिन्दी के लिये ये वास्तव मे आर्य्य भाषा के ही शब्दों के समान हैं। प्राकृत वैयाकरण जिन प्राकृत शब्दो को संस्कृत शब्द समूह मे नहीं पाते थे उन्हे *'देशी' अर्थात् अनार्य भाषाओं से आये हुये शब्द मान* लेते थे। इन वैयाकरणो ने बहुत से अधिक बिगड़े हुए तद्भव शब्दों को भी देशी समझ रक्खा था। तामिल, तेलगू, मुंडा आदि द्राविड़ या कोल आदि अन्य अनार्य भाषाओं से आधुनिक काल मे आये हुये शब्द हिन्दी में बहुत कम हैं।

द्राविड़ भाषा से आये हुये शब्दों का प्रयोग हिंदी मे प्रायः बुरे अर्थों में होता है। द्राविड़ *पिल्ले* शब्द का अर्थ पुत्र होता है वही शब्द हिन्दी में *पिल्ला* होकर *कुत्ते के बच्चे के अर्थ में* प्रयुक्त होता है। मूर्द्धन्य वर्णों से युक्त शब्द यदि सीधे द्राविड़ भाषाओ से नहीं आये हैं तो कम से कम उन पर द्राविड़ भाषाओं का प्रभाव तो बहुत ही पड़ा है। मूर्द्धन्य वर्ण द्राविड़ भाषाओं की

विशेषता है। कोल भाषाओं का हिन्दी पर प्रभाव उतना स्पष्ट नही है। हिन्दी मे बीस बीस करके गिनने की प्रणाली कदाचित् कोल भाषाओं से आई है। कोड़ी शब्द स्वयं कोल भाषाओं से आया मालूम पड़ता है। इस तरह के कुछ शब्द और भी हैं।[१]

ग. विदेशी भाषाओं के शब्द

सैकड़ों वर्षों से विदेशी शासन मे रहने के कारण हिन्दी पर कुछ विदेशी भाषाओं का प्रभाव भारतीय भाषाओं की अपेक्षा भी अधिक पड़ा है। यह प्रभाव दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) मुसलमानी प्रभाव, (२) यूरोपीय प्रभाव। किन्तु दोनों प्रकार के प्रभावों में सिद्धांत के रूप से बहुत कुछ समानता है। मुसल्मान तथा अंग्रेजों दोनों के शासक होने के कारण एक ही ढंग का शब्द समूह इनकी भाषाओं से हिन्दी मे आया है। विदेशी शब्दो को हम दो मुख्य श्रेणियों मे रख सकते हैं—

(क) विदेशी संस्थाओं जैसे कचहरी, फौज, स्कूल, धर्म आदि से संबंध रखने वाले शब्द।

(ख) विदेशी प्रभाव के कारण आई हुई नई वस्तुओं के नाम, जैसे नये पहनावे, खाने, यन्त्र तथा खेल आदि की वस्तुओं के नाम।

१. फ़ारसी, अरबी, तुर्की तथा पश्तो शब्द—१००० ई० के लगभग फारसी बोलनेवाले तुर्कों ने पंजाब पर कब्जा कर लिया था अतः इनके प्रभाव से तत्कालीन हिंदी प्रभावित होने लगी थी। रासो तक मे फारसी शब्दो की संख्या कम नही है। १२०० ई० के बाद लगभग ६०० वर्ष तक हिन्दी भाषा भाषी जनता पर तुर्क, अफ़गान, तथा मुगलो का शासन रहा अतः इस समय सैकड़ो विदेशी शब्द गाँव की बोली तक मे घुस आये। तुलसी और सूर जैसे वैष्णव महाकवियों की विशुद्ध

---

[१] बंगाली में प्रयुक्त टवर्ग से युक्त देशी शब्दो के लिये दे., चै., वे लै, § २६८-२७२।

हिन्दी भी विदेशी शब्दों के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी। हिन्दी मे प्रचलित विदेशी शब्दों मे सब से अधिक संख्या फारसी शब्दों की है क्योंकि समस्त मुसल्मान शासको ने, चाहे वे किसी भी नसल के क्यों न हों, फारसी को ही दरबारी तथा साहित्यिक भाषा की तरह अपना रक्खा था। अरबी तथा तुर्की[1] आदि के जो शब्द हिन्दी मे मिलते हैं वे फारसी से होकर ही हिन्दी मे आये हैं।

२. यूरोपीय भाषाओं के शब्द—लगभग १५०० ई० से यूरोप के लोगों का भारत मे आना जाना प्रारम्भ हो गया था किन्तु करीब तीन सौ वर्ष तक हिन्दी भाषा भाषी इनके संपर्क में अधिक नहीं आये क्योंकि यूरोपीय लोग समुद्र के रास्ते से भारत में आये थे अतः इनका कार्यक्षेत्र आरम्भ में समुद्र तटवर्ती प्रदेशों मे ही विशेष रहा। इसी कारण प्राचीन हिन्दी साहित्य मे यूरोपीय भाषाओं के शब्द नहीं के बराबर

---

[1] हिन्दुस्तान के आरम्भ के ग़ज़नी, ग़ोर और ग़ुलाम आदि वंशों के मुसलमानी बादशाहो तथा भारतीय मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर की मातृ भाषा मध्य एशिया की तुर्की भाषा थी। टर्की की तुर्की इसी तुर्की की एक शाखा मात्र है। इस्लाम धर्म तथा ईरानी सभ्यता के प्रभाव के कारण इन तुर्की बोलने वाले बादशाहो के समय में भी उत्तर भारत में इस्लामी साहित्य की भाषा फ़ारसी और इस्लामी धर्म की भाषा अरबी रही, तो भी भारतीय फ़ारसी पर तथा उसके द्वारा आधुनिक आर्य भाषाओं पर तुर्की शब्द समूह का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा हिन्दी मे प्रचलित तुर्की शब्दो की एक सूची नीचे दी जा रही है :—

आक़ा (मालिक), उजबक (मूर्ख), उर्दू, कलगी, कैंची, क़ाबू, कुली, कोर्मा, ख़ातुन (स्त्री) खां, ख़ानुम (स्त्री), गलीचा, चकमक (पत्थर), चाक़ू, चिक, तमग़ा, तग़ार, तुरक, तोप, दरोगा, बरछी, बावर्ची, बहादुर, बीबी, बेगम, बकचा, मुचलका, लाश, सौगात, सुराक़,—ची (जैसे मशालची, ख़ज़ाँची इ०)

पठान और रोहिला (रोह=पहाड़) शब्द पश्तो के हैं।

हैं। १८०० ई० के लगभग हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश मुगलों के हाथ से निकल कर अँग्रेजी शासन में चला गया। गत सौ सवा सौ वर्षों में हिन्दी शब्द समूह पर अँग्रेजी भाषा का पर्याप्त प्रभाव पडा है[१]।

---

[१] हिन्दी के विदेशी शब्द समूह में फारसी के बाद अंग्रेजी शब्दों की संख्या सब से अधिक है। अब भी नये अंग्रेजी शब्द आ रहे हैं अत इनकी पूर्ण सूची बन सकना अभी सम्भव नहीं है। तो भी अंग्रेजी विदेशी शब्दों की एक विस्तृत सूची नीचे दी जा रही है। इन शब्दों में से कुछ तो गाँवों तक में पहुँच गये हैं। इस सूची में बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जो, अंग्रेज़ी संस्थाओं या अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों से संपर्क में आने के कारण केवल शहरों के रहने वाले बेपढ़े लोगों के मुँह में ही सुन पड़ते हैं। कुछ शब्द कई रूपों में व्यवहृत होते हैं किन्तु उनका अधिक प्रचलित रूप ही दिया गया है।

संपर्क में आने पर भी आवश्यक विदेशी शब्दों को अछूत-सा मान कर न अपनाना अस्वाभाविक है। यत्न करने पर भी यह कभी संभव नहीं

घासलेटी।

चाक, चाकलेट, चिमनी, चिक, चिट, चुरट, (तामिल—शुरट) चेर, चेरमैन, चैन।

जटलमैन, जंट, जंपर, जमनास्टिक, जज, जर्मनी, जनैल, जनवरी, जनैल-मर्चेंट, जाकट, जार्ज, जुलाई, जून, जेल, जेलर।

टन, टब, ट्रक, ट्राली, ट्राइस्किल, ट्राम्बे, टिकट, टिकस, टिमाटर, टिम्परेचर, टिफिन, टीम, टीन, टुइल, ट्यूब, टेम, टेनिस, टेबिल, टेसन, टेलीफून, ट्रेन, टैर, टैप, टैमटेबिल, टोल, टौनहाल।

ठेठर।

डबल, डबलमार्च, डम्बल, डाक्टर, ड्रामा, डायरी, डिकशनरी, डिप्टी, डिस्टिक-बोर्ड, डिगरी, डिरैवर, डिमारिज, डिकस, डिपलोमा, डिउटी, ड्रिल, डीपो, डेरी, डैमनकाट, डौन।

तारकोल।

थर्ड, थर्मामेटर।

दर्जन, दलेल (ड्रिल), दराज, दिसम्बर।

नर्स, नकटाई, नवबर, नबर, नाविल, निकर, निब, निक्लस, नोट, नोटिस, नोटबुक।

पसिजर, पल्टन, परेड, पलस्तर, पतलून, पंचर, पंप, पाकट, पारक, पालिस, पार्टी, पापा, पाट, पार्सल, पास, प्राइमरी, पिलाट, पिलीडर, पिसन, पिंसिल, पियानो, पिलेट, पिलेट फारम, पिट्रोल, पिन, पिपरमंट, पिलेग, पुल्टिस, पुरफेसर, पुलिस, पुर्तगाल, पुटीन, पेटीकोट, प्रेस, पेंस, प्रेसीडेन्ट, पैसा, पैप, पैंट, पैटमैन, पोलो, पोसकाट, पौंड, पौडर।

फर्मा, फर्स्ट, फलालैन, फरवरी, फरलाँग, फारम, फिरास, फिनैल, फिटन,

हो सका है। अनावश्यक विदेशी शब्दों का प्रयोग करना दूसरी अति है। मध्यम मार्ग यही है कि अपनी भाषा के ध्वनि समूह के आधार पर विदेशी शब्दों के रूपों मे परिवर्तन करके उन्हे आवश्यकतानुसार सदा मिलाते रहना

फिराक, फीस, फुटबाल, फुलबूट, फुट, फेल, फ्रेम, फैर, फैसन, फैसनेबिल, फोटो, फोटोगिराफी, फोनोग्राफ।

बंक, बम, बटेलियन, बराडी, बटन, बक्स, बग्घी, बबूकाट, बनयाइन, बाडिस, बारिक, बालिस्टर, बासकट, बिल्टी, बिलाटिंग, बिगुल, बिरजिस, बिरटिस, बिरग, बिल्हबिलैक, बिच, बी० ए०, बुकप्लेर, बुलडाग, बुरुस, बूट, बड, बैरग, बैस्कोप, बैस्किल, बैट, बैरा, बोट, बोरड, बोर्डिंग।

मशीन, मजिस्ट्रेट, मनीबेग, अनीआर्डर, मई, मन, मफलर, मलेरिया, मसीनगन, मनेजर, मटन, माचिस, मास्टर, मार्च, मानीटर, मारकीन, मिस, मिनी-सुपिल्टी, मिनट, मिस्मरेजम, मिल, मिशनरी, मिक्सचर, मीटिंग, मेजर, मेम्बर, मेट, मेम, मोटर।

रगरूट, रबड, रसीद, रपट, रन, रजीमिंट, राशन, रिजिस्ट्री, रिजिस्टर, रिजिस्ट्रार, रिजल्ट, रिटाइर, रिवालवर, रिकर्ड, रिपिट, रीडर, रूल, रेजीडेन्सी, रेस, रेल, रैकेट, रैफिल, रोड।

एकलाट, लप, लफटंट, लमलेट, लवर, लवडर, लच, लाटरी, लाट, लाइब्रेरी, लालटैन, लान, लेद, लेटरबक्स, लेक्चर, लेबिल, लैंडो, लैन, लैनकिलियर, लैसस, लैस, लैमजूस, लैमुनेड, लोट (नोट), लोकल, (गाडी), लोअर प्रैमरी।

वारनिश, वास्कट, वाइल, वारट, वायलिन, वालटियर, वाइसराय, विक्टो-रिया, वी० पी०, वेटिंग रूम, वोट, वैसलीन।

सम्मन, सर्जन, सरज, सटर जेल, सन्तरी, सरकस, सब—(जज), सरविस, सार्टीफिकट, साइस, सिगरट, सिलिंग, सिल्क, सिमिट, सितवर, सिकत्तर, सिगल, सिलीपर, सिलेट, सिट, (बटन), सिविल सर्जन, सुइटर, सुपरडट, सूट, सूटकेस, सेशन, सेफटी पिन, सेकिंड, सैम्पुल, सोप, सोडावाटर।

चाहिये। इस प्रकार शुद्धि करने के उपरान्त लिये गये विदेशी शब्द जीवित भाषाओं के शब्द भंडार को बढ़ाने मे सहायक ही होते हैं।

कुछ पुर्तगाली[1], डच तथा फ्रांसीसी[2] शब्द भी हिन्दी ने ऐसे अपना लिये हैं कि वे सहसा विदेशी नहीं मालूम होते।

जर्मन आदि अन्य यूरोपियन भाषाओं के शब्द हिन्दी में कदाचित् बिलकुल नहीं हैं। कम से कम अभी तक पहचाने नहीं जासके हैं। 'अलपका' शब्द यदि अंग्रेज़ी से नहीं आया है तो स्पैनिश हो सकता है।

हरीकेन (लालटैन), हाईकोर्ट, हाई इस्कूल, हारमुनियम, हाकी, हाल, हाल्ट, हाफ साइड, हिट, हिस्टीरिया, ह्विस्की, हिमू, हुड, हुक, हुर्रे, हेड मास्टर, हैट, होलडर, होस्टल, होटल, होमोपैथी।

[1] हिन्दी मे कुछ पुर्तगाली शब्द भी आगये हैं किन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। पुर्तगाली शब्दों का इतनी संख्या में भी हिन्दी में पाया जाना आश्चर्य जनक है। हिन्दी में प्रचलित पुर्तगाली शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है:—

अनन्नास, अल्मारी, अचार, आलपीन, आया, इस्पात, इस्त्री, क्रमीज़, कप्तान, कनिस्तर, कमरा, काज, काफ़ी, काजू, काकातुआ, क्रिस्तान, किरच, गमला, गारद, गिर्जा, गोभी, गोदाम, चाबी, तम्बाकू, तौलिया, तौला, नीलाम, परात, परेक, पाउ (-रोटी), पादरी, पिस्तौल, पीपा, फ़र्मा, फ़ीता, फ्रांसीसी, बर्गा, बपतिस्मा, बाल्टी, बिसकुट, बुताम, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, मेज, यशू, लबादा, सन्तरा, साया, सागू।

बंगाली भाषा में आने पर पुर्तगाली शब्दों के ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी विस्तृत विवेचन के लिये दे., चै, बे. लै, अ० ७।

[2] पुर्तगाल के लोगों की अपेक्षा फ्रांसीसियों से हिन्दुस्तानियों का कुछ अधिक सम्पर्क रहा था किन्तु फ्रांसीसी शब्द हिन्दी में दो चार से अधिक नहीं हैं। यही अवस्था डच भाषा के शब्दों की है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

फ्रांसीसी:—कार्तूस, कूपन, अंग्रेज।

डच:—तुरुप, बम (गाड़ी का)।

३. हिन्दी भाषा का विकास

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि १००० ईसवी के बाद मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के अन्तिम रूप अपभ्रंश भाषाओं ने धीरे धीरे बदल कर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया और गंगा की घाटी मे प्रयाग या काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंशों ने हिन्दी भाषा के समस्त रूपो को जन्म दिया। गत एक सहस्र वर्ष मे हिन्दी भाषा किस तरह विकसित होती गई तथा उसके अध्ययन के लिये क्या सामग्री उपलब्ध है, इसी का यहाँ संक्षेप से वर्णन करना है।

हिन्दी भाषा के विकास की अवस्थाये साधारणतया तीन मुख्य कालों में विभक्त की जा सकती हैं:—(क) प्रचीन काल (११००-१५०० ई०), जब अपभ्रंश तथा प्राकृतों का स्वाभाविक प्रभाव हिन्दी भाषा पर मौजूद था तथा साथ ही हिन्दी की बोलियो के बाद वाले निश्चित स्पष्ट रूप नही मिलते। (ख) मध्यकाल (१५००-१८०० ई०), जब हिन्दी से अपभ्रंशो का प्रभाव बिलकुल हट गया था और हिन्दी की बोलियाँ, विशेषतया व्रज और अवधी, अपने पैरों पर स्वतंत्रता पूर्वक खड़ी होगई थी। (ग) आधुनिक काल (१८०० ई०—), जब से हिन्दी की बोलियों के मध्यकाल के रूपो में परिवर्तन आरम्भ होगया है तथा साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से खड़ीबोली ने हिन्दी की अन्य बोलियो को दबा दिया है। इन तीनों कालों को क्रम से लेकर तत्कालीन परिस्थिति, भाषा सामग्री तथा भाषा के रूप पर संक्षेप मे विचार किया जायगा।

क. प्राचीन काल[१] (११०० १५०० ई०)

हिंदी भाषा का इतिहास जिस समय प्रारम्भ होता है उस समय हिन्दी

---

[१] ११०० ईसवी से पहले की हिन्दी भाषा की सामग्री अभी उपलब्ध नहीं है। मिश्रबन्धु विनोद मे दिये हुये ११०० ईसवी के पहले के कवियों के नाम

भाषा भाषी प्रदेश तीन हिन्दुस्तानी राज्यों मे विभक्त था और इन्ही तीन केन्द्रों से हम हिन्दी भाषा संबंधी सामग्री पाने की आशा कर सकते हैं। पश्चिम हिन्दुस्तान में चौहान वंश की राजधानी दिल्ली थी। पृथ्वीराज के समय मे अजमेर का राज्य भी इस में सम्मिलित हो गया था। दिल्ली राज्य की सीमाये पश्चिम मे पंजाब के मुसल्मानी राज्य से मिली हुई थीं। दक्षिण पश्चिम में राजस्थान के राजपूत राज्यों से इस की घनिष्ठता थी किन्तु पूरब की सीमा पर सदा घरेलू युद्ध होते रहते थे। नरपति नाल्ह तथा चन्द कवि का संबंध क्रम से अजमेर और दिल्ली से था। पूर्वी हिन्दुस्तान में राठौर वंश की राजधानी कन्नौज थी और इस राज्य की सीमाये पूरब मे अयोध्या तथा काशी तक चली गई थी। कन्नौज के अन्तिम सम्राट जयचन्द का दरबार साहित्य चर्चा का मुख्य केन्द्र था किन्तु यहाँ 'भाषा' की अपेक्षा 'संस्कृत' तथा 'प्राकृत' का कदाचित् विशेष आदर था। संस्कृत के अन्तिम महाकाव्य नैषध के लेखक श्री हर्ष जयचन्द के दरबार में ही राजकवि थे। कन्नौज के दरबार मे भाषा साहित्य की चर्चा भी रही होगी किन्तु प्राचीन कन्नौज नगर के पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने के कारण इस केन्द्र की सामग्री अब बिलकुल भी उपलब्ध नही है। दक्षिण हिन्दुस्तान मे महोबा का प्रसिद्ध राज्य था। महोबा के राजकवि जग नायक या जगनिक का नाम तो आज तक प्रसिद्ध है किन्तु इस महाकवि की मूलकृति का अब पता नहीं चलता।

११९१ ई० तक हिन्दुस्तान के ये तीनो अन्तिम हिन्दू राज्य मौजूद थे, किन्तु इसके बाद दस बारह वर्ष के अन्दर ही ये तीनो राज्य नष्ट हो गये। ११९१ मे मुहम्मद गौरी ने पानीपत के निकट पृथ्वीराज को हरा कर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। अगले वर्ष इटावा के निकट जयचन्द की हार हुई

वास्तव में नाम मात्र हैं। जब तक भाषा के कुछ नमूने न मिलें तब तक इन नामों का उल्लेख करना व्यर्थ है। १००० ई० के पहले तो हिंदी भाषा का अस्तित्व भी सदिग्ध है।

और कन्नौज से लेकर काशी तक का प्रदेश विदेशियों के हाथों में चला गया। शीघ्र ही महोबा पर भी मुसल्मानो ने क़ब्ज़ा कर लिया। इस तरह समस्त हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश पर विदेशी शासकों का आधिपत्य हो गया। विकसित होती हुई नवीन भाषा के लिये यह बड़ा भारी धक्का था जिसके प्रभाव से हिन्दी भाषा अब तक भी मुक्त नही हो सकी है। हिन्दी भाषा के संपूर्ण प्राचीन काल मे हिन्दुस्तान पर तथा उसके बाहर शेष उत्तर भारत पर भी तुर्की मुसल्मानों का साम्राज्य क़ायम रहा (१२०६-१५२६ ई०) इन सम्राटों की मातृभाषा तुर्की थी तथा दरबार की भाषा फारसी थी। इन विदेशी शासकों की रुचि हिन्दुस्तानी जनता की भाषा तथा संस्कृति के अध्ययन करने की ओर बिलकुल भी न थी अतः हिन्दुस्तान में तीन सौ वर्ष से अधिक इस साम्राज्य के क़ायम रहने पर भी दिल्ली के राजनीतिक केन्द्र से हिन्दी भाषा की उन्नति में बिलकुल भी सहायता नहीं मिल सकी। इस काल मे दिल्ली में केवल अमीर खुसरो का अकेला नाम ऐसा मिलता है जिसने मनोरंजन के लिये भाषा से कुछ प्रेम दिखलाया था। इस काल के अन्तिम दिनों में पूर्वी हिन्दुस्तान मे धार्मिक आन्दोलनों के कारण भाषा में कुछ काम हुआ किन्तु इसका संबंध तत्कालीन राज्य से बिलकुल भी न था। राज्य की ओर से सहायता की अपेक्षा कदाचित बाधा ही विशेष मिली। इस प्रकार के आन्दोलनों में गोरखनाथ, रामानंद तथा उनके प्रमुख शिष्य कबीर के संप्रदाय उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी भाषा के इस प्राचीन काल की सामग्री नीचे लिखे भागों में विभक्त की जा सकती है:—

१. शिला लेख, ताम्रपत्र, तथा प्राचीन पत्र आदि,

२. अपभ्रंश काव्य,

३. चारण काव्य जिसका आरंभ हिन्दुस्तान में हुआ था किन्तु राजनीतिक उथलपथल के कारण बाद को ये राजस्थान मे लिखे गये, धार्मिक ग्रंथ तथा अन्य काव्य ग्रंथ।

हिन्दुस्तान में विदेशी शासन होने के कारण इस काल में हिन्दी भाषा

में लिखे शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों आदि के अधिक संख्या में पाये जाने की संभावना बहुत कम है। इस संबंध में विशेष खोज भी नहीं की गई है नहीं तो कुछ सामग्री अवश्य ही उपलब्ध होती [१]। हिन्दी के सब से प्राचीन नमूने पृथ्वीराज तथा समरसिंह के दरबारों से संबंध रखने वाले पत्रों के रूप में समझे जाते थे जिनको नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया था किन्तु इनके प्रामाणिक होने में अब बहुत संदेह किया जाता है।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २ अंक ४ में 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक लेख में जो नमूने दिये हैं वे प्रायः गंगा की घाटी के बाहर के प्रदेशों में बने ग्रंथों के हैं अतः इनमें हिन्दी के प्राचीन रूपों का कम पाया जाना स्वाभाविक है। अधिकांश उदाहरणों में प्राचीन राजस्थानी के नमूने मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इन उदाहरणों की भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक है कि इन ग्रंथों को इस काल के अपभ्रंश साहित्य[२] के अन्तर्गत रखना उचित मालूम होता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने

---

[१] मध्य प्रान्त के हिन्दी शिलालेखों के संबंध में देखिये हीरालाल का 'हिन्दी के शिलालेख और ताम्रलेख' शीर्षक लेख (ना. प्र. प., भा० ६, सं० ४)।

[२] इस प्रकार के प्रामाणिक ग्रंथों में हेमचन्द्र रचित कुमारपाल चरित तथा सिद्ध हैम व्याकरण सब से प्राचीन हैं। हेमचन्द्र की मृत्यु ११७२ ई० में हुई थी अत: इन ग्रंथों का रचना काल इसके पूर्व ठहरेगा। सोमप्रभाचार्य का कुमारपाल प्रतिबोध ग्रंथ ११८४ ईसवी में लिखा गया था। इसमें कुछ सोमप्रभाचार्य के स्व-रचित उदाहरण तथा तथा कुछ प्राचीन उदाहरण मिलते हैं। जैन आचार्य मेरुतुंग ने प्रबंध चिंतामणि नाम का संस्कृत ग्रंथ १३०४ ईसवी में बनाया था। इसमें कुछ प्राचीन पद्य उद्धृत मिलते हैं जो अपभ्रंश और हिन्दी की बीच की अवस्था के द्योतक हैं। शार्ङ्गधर पद्धति शार्ङ्गधर कविद्वारा संगृहीत सुभाषित ग्रंथ है जिसमें शाबर मंत्र और चित्र काव्य में कुछ भाषा के शब्द आये हैं। शार्ङ्गधर रण-थम्भोर के महाराज हम्मीर देव के (मृत्यु १३०० ई०) मुख्य सभासद राघव देव का पोता था अत यह चौदहवीं सदी ईसवी के मध्य में हुआ होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसा किया भी है। तो भी इन नमूनों से अपनी भाषा की पुरानी परिस्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

इस काल की भाषा के नमूनों का तीसरा समूह चारण, धार्मिक, तथा लौकिक काव्य ग्रंथों में मिलता है।[1] भाषा शास्त्र की दृष्टि से इन ग्रंथों की

---

[1] इस प्रकार के मुख्य मुख्य लेखकों तथा उनके प्रकाशित ग्रंथों की सूची निम्नलिखित है:—

१. नरपति नाल्ह : बीसल देव रासो (११५५ ई०)—जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर यह ग्रंथ छापा गया है वे १६१२ और १९०२ ईसवी की लिखी हैं। मूल ग्रंथ के अजमेर में लिखे जाने के कारण इस की भाषा का राजस्थानी होना स्वाभाविक है। कहीं कहीं कुछ खड़ी बोली के रूप भी पाये जाते हैं।

२. चन्द : पृथ्वीराज रासो—चन्द का कविता काल ११६८ से ११९२ ईसवी तक माना जाता है। वर्तमान पृथ्वीराज रासो में कितना अंश चन्द का रचा है इस विषय में विद्वानों को बहुत संदेह हो चला है। वर्तमान रासो में अपभ्रंश, खड़ी बोली तथा राजस्थानी का मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

३. खुसरो : फुटकर काव्य—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, अंक ३ में 'खुसरो की हिंदी कविता' शीर्षक से बाबू ब्रजरत्नदास ने खुसरो की जीवनी तथा हिन्दी काव्य संग्रह दिया है। खुसरो का समय १२५५-१३२५ ईसवी है। इसके सब प्रसिद्ध ग्रंथ फ़ारसी में हैं। इनकी हिंदी कविता के नमूनों का आधार एक मात्र जनश्रुति है। आधुनिक काल में लेख बद्ध किये जाने के कारण खुसरो की हिन्दी आधुनिक खड़ी बोली होगई है। ख़ालिक बारी नाम के अरबी-फ़ारसी-हिंदी कोष में कुछ अंश हिन्दी में हैं किन्तु यह ग्रंथ भी अपूर्ण है।

४. गोरखपंथ के संस्थापक गोरखनाथ का समय १३५० ई० के लगभग माना जाता है। इनके कई ग्रंथ खोज में मिले हैं किन्तु अभी तक प्रकाशित कदाचित् एक भी ग्रंथ नहीं हुआ है। इनका लिखा एक ब्रजभाषा गद्य का ग्रंथ भी माना जाता है इसीलिये ये ब्रजभाषा गद्य के प्रथम लेखक माने जाते हैं किन्तु जब तक यह ग्रंथ

भाषा के नमूने अत्यन्त संदिग्ध हैं। इनमे से किन्हीं भी ग्रंथों की इस काल की लिखी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतिये उपलब्ध नहीं हैं। बहुत दिनों मौखिक रूप मे रहने के बाद लिखे जाने पर भाषा मे परिवर्तन का हो जाना स्वाभाविक है अत हिन्दी भाषा के इतिहास की दृष्टि से इन ग्रंथों के नमूने बहुत मान्य नहीं हो सकते। इस काल की भाषा के अध्ययन के लिये या तो पुराने लेखों से सहायता लेना उपयुक्त होगा या ऐसी हस्तलिखित प्रतियों से जो १५०० ईसवी से पहले की लिखी हों।

ख. मध्यकाल (१५००-१८०० ई०)

१५०० ई० के बाद हिंदुस्तान की परिस्थिति में एक बार फिर भारी परिवर्तन हुये। १५२६ ई० के लगभग देश का शासन तुर्की सम्राटों के हाथ से

तथा अन्य ग्रथ सप्रमाण प्रकाशित न हो तब तक निश्चित रूप से इनकी भाषा के सबध में कुछ भी कहना सभव नहीं है।

५ विद्यापति (जन्म १३६२ ई०) का भाषा पदसमूह अभी कुछ ही दिन पूर्व सग्रह किया गया है। मिथिला में सगृहीत पदो की भाषा मैथिली है तथा बगाल मे सगृहीत पदसमूह की भाषा बगला है। इन के किसी भी वर्तमान सग्रह की भाषा पन्द्रहवीं शताब्दी के आरभ की नहीं मानी जा सकती। जो हो मैथिलकवि विद्यापति म हिन्दी का मिलना वैसे भी अधिक सभव नहीं था। विद्यापति के कीर्तिलता नाम क ग्रथ की भाषा अपभ्रंश है। इनके अन्य ग्रन्थ प्राय सस्कृत में हैं।

६ कबीरदास (१४२३ ई०) तथा उनके गुरु भाई सतों की भाषा के सबध में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। साधारणतया सतों की वाणी मौखिक रूप मे परपरा से चली आई है अत उनकी भाषा में नवीनता का प्रवेश होता रहना स्वाभाविक है। सभा की ओर से कबीर के ग्रथों का जो सग्रह छपा है उसकी प्रतिलिपि यद्यपि १५०४ ई० की लिखी हस्तलिखित प्रति के आधार पर तैयार की गई है किन्तु उसमें पंजाबीपन इतना अधिक है कि उसके काशी म रहने वाले कबीरदास की मूल वाणी होने में बहुत सदह मालूम होता है।

निकल कर मुगल शासकों के हाथ में चला गया। बीच में कुछ दिनों तक सूरवंश के राजाओं ने भी राज्य किया। इस परिवर्तन काल मे राजपूत राजाओं ने गंगा की घाटी पर कब्जा करना चाहा किन्तु वे इसमे सफल न हो सके। मुगल तथा सूरवंश के सम्राटो की सहानुभूति जनता की सभ्यता को समझने की ओर तुर्कों की अपेक्षा कुछ अधिक थी। देश में शान्ति रहने तथा राज्य की ओर से कम उपेक्षा होने के कारण इस काल मे साहित्य चर्चा भी विशेष हुई। वास्तव मे यह काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

प्राचीन हिंदी के अवधी और ब्रजभाषा के दो मुख्य साहित्यिक रूपों का विकास सोलहवी सदी मे ही प्रारंभ हुआ। इन दोनों में ब्रजभाषा तो समस्त हिंदी भाषा भाषी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई किंतु अवधी मे लिखे गये रामचरित मानस का हिंदी जनता मे सब से अधिक प्रचार होने पर भी साहित्य-क्षेत्र में अवधी भाषा का प्रचार नही हो सका। अवधी मे लिखे गये ग्रंथों मे दो मुख्य हैं—जायसी कृत पद्मावत (१५४० ई०) जो शेरशाह सूर के शासन काल मे लिखा गया था और तुलसीदासकृत रामचरित मानस (१५७५ ई०) जो अकबर के शासन काल में लिखा गया था। इन दोनों ग्रंथों की बहुत सी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियें मिली हैं। यद्यपि इन ग्रंथों का शास्त्रीय रीति से संपादन अभी तक नहीं हो पाया है किंतु तो भी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण बहुत अंश में मान्य हैं। सोलहवी सदी के बाद अवधी में कोई भी प्रसिद्ध ग्रंथ नहीं लिखा गया।

वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से सोलहवी सदी के पूर्वार्द्ध में ब्रजभाषा मे साहित्य रचना प्रारंभ हुई। हिंदी साहित्य की इस शाखा का केन्द्र पश्चिम हिंदुस्तान मे था अतः ब्रजभाषा साहित्य को धर्म के साथ साथ विदेशी तथा देशी राज्यों की संरक्षता भी मिल सकी। सूरदास के ग्रंथ कदाचित् १५५० ई० तक रचे जा चुके थे किंतु सूरसागर की १७४१ ई० से पहले की लिखी कोई हस्तलिखित प्रति अभी देखने मे नहीं आई है। अतः भाषा की दृष्टि से वर्तमान सूरसागर मे कहाँ तक सोलहवी सदी की ब्रजभाषा है यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। तुलसीदास ने भी विनय पत्रिका तथा गीतावली आदि

कुछ काव्यों मे ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। अष्टछाप समुदाय के दूसरे महाकवि नंददास के ग्रंथ भी साहित्यिक ब्रजभाषा मे हैं किंतु इनका भी शुद्ध प्रामाणिक सस्करण अभी अप्राप्य है। सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में प्राय समस्त हिंदी साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया है। ब्रजभाषा का रूप दिन दिन साहित्यिक, परिष्कृत तथा सस्कृत होता चला गया है। बिहारी और सूरदास की ब्रजभाषा में बहुत भेद है। बुँदेलखड तथा राजस्थान के देशी राज्यों से सपर्क मे आने के कारण इस काल के बहुत से कवियों की भाषा में जहाँ तहाँ बुन्देली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है। उदाहरण के लिये केशवदास (१६०० ई०) की ब्रजभाषा मे बुँदेली प्रयोग बहुत मिलते हैं। यह खेद के साथ कहना पडता है कि बिहारी की सतसई को छोडकर किसी भी अन्य ब्रजभाषा कवि के किसी भी ग्रंथ का सपादन पूर्ण परिश्रम के साथ अभी तक नहीं हो पाया है। अत भाषा की दृष्टि से प्राय समस्त ब्रजभाषा ग्रथ समूह सदिग्धावस्था में है। भाषा का अध्ययन बिना मान्य सस्करणों के नहीं हो सकता।

मध्यकाल तथा प्राचीन काल के ग्रथों में जहाँ तहाँ खडी बोली के रूप भी बिखरे पड़े हैं। रासो, कबीर, भूषण आदि में बराबर खडी बोली के प्रयोग वर्तमान हैं। इस से यह तो स्पष्ट ही है कि खडी बोली का अस्तित्व प्रारभ से ही था यद्यपि इस बोली का प्रयोग हिंदू कवि और लेखक साहित्य मे विशेष नहीं करते थे। यह मुसल्मानी बोली समझी जाती थी क्योंकि दिल्ली आगरे की तरफ मुसल्मान जनता मे तथा कुछ कुछ मुसल्मान लेखकों द्वारा लिखे गये साहित्य मे इस का प्रयोग प्रचलित था। मुसलमानों द्वारा इस का साहित्य में प्रयोग अठारहवीं सदी के प्रारभ से विशेष हुआ। इस से पहले मुसल्मान कवि भी यदि भाषा मे कविता करते थे तो अवधी या ब्रजभाषा का व्यवहार करते थे। जायसी, रहीम आदि इस के स्पष्ट उदाहरण हैं। खड़ी बोली उर्दू के प्रथम कवि हैदराबाद दक्खिन के वली माने जाते हैं। इन का कविता काल अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध मे पडता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी मे बहुत से मुसल्मान कवियो ने काव्य रचना कर के खडी बोली उर्दू को परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। [illegible] कवियों मे मीर, सौदा, इशा, गालिब, ज़ौक़ और दाग़ उल्लेखनीय हैं।

ग. आधुनिक काल (१८०० ई०—)

अठारहवी सदी के अन्त से ही परिवर्तन के लक्षण प्रारंभ हो गये थे। मुगल साम्राज्य के निर्बल हो जाने के कारण अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध में तीन बाहर की शक्तियों में हिंदी भाषा भाषी प्रदेश पर अधिकार करने की प्रतिद्वन्द्विता हुई—ये थे मराठा, अफ़गान और अंग्रेज। १७६१ ई० में हिंदुस्तान की पश्चिमी सरहद पर पानीपत के तीसरे युद्ध मे अफगानों के हाथ से मराठा शक्ति को ऐसा भारी धक्का पहुँचा कि वे फिर शक्ति संचय नहीं कर सके। किंतु अफगानो ने भी इस विजय से लाभ नहीं उठाया। तीन वर्ष बाद १७६४ ई० मे हिंदुस्तान की पूर्वी सीमा पर बक्सर के निकट अंग्रेजों तथा अवध और दिल्ली के मुसल्मान शासको के बीच युद्ध हुआ जिसमे अंग्रेजों के लिये गंगा की घाटी का पश्चिमी भाग खुल गया। १८०२ ई० के लगभग आगरा उप-प्रान्त अंग्रेज़ों के हाथ मे चला गया तथा १८५६ ई० मे अवध पर भी अंग्रेज़ो का पूरा कब्ज़ा हो गया।

इन राजनीतिक परिवर्तनो के कारण १९ वी सदी के आरम्भ से ही हिंदुस्तान की भाषा हिंदी पर भारी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। अठारहवी सदी मे ही व्रजभाषा की शक्ति क्षीण हो चुकी थी साथ ही मुसल्मानो के बीच मे खड़ी बोली उर्दू ज़ोर पकड़ चुकी थी। उन्नीसवी सदी के प्रारंभ मे अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं के लिये खड़ी बोली गद्य के संबंध में कुछ प्रयोग करवाये जिनके फलस्वरूप फोर्ट विलियम कालिज मे लल्लूलाल ने प्रेम-सागर तथा सदलमिश्र ने नासिकेतोपाख्यान की रचना की। प्रारंभ के इन खड़ी बोली के ग्रंथों पर व्रजभाषा का प्रभाव रहना स्वाभाविक है। प्रेम-सागर से तो ब्रजभाषा के प्रयोग बहुत अधिक पाये जाते हैं। खड़ी बोली हिन्दी का गद्य-साहित्य मे प्रचार उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ और इसका श्रेय साहित्य के क्षेत्र में हरिश्चन्द्र तथा धर्म के क्षेत्र मे स्वामी दयानन्द को है। प्रेस कला के साथ साथ खड़ी बोली हिन्दी का प्रचार बहुत तेज़ी से बढ़ा। उन्नीसवी सदी तक पद्य मे प्रायः व्रजभाषा का प्रयोग होता रहा किन्तु बीसवी सदी मे आते आते खड़ी बोली हिन्दी ही समस्त हिन्दी भाषा भाषी

जनता की गद्य और पद्य दोनों ही की एक मात्र साहित्यिक भाषा हो गई है। ब्रजभाषा मे कविता करने की शैली अभीतक पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुई है किन्तु इसके दिन इने गिने हैं। यहाँ यह स्मरण दिलाना अनुपयुक्त न होगा कि बीसवीं सदी की साहित्यिक ब्रजभाषा का आधार मध्यकाल के उत्तरार्द्ध की साहित्यिक ब्रजभाषा है न कि आजकल की वास्तविक ब्रज-बोली। खडी बोली पद्य के प्रारम्भ के कवियों की भाषा मे भी लल्लूलाल आदि प्रथम गद्य लेखकों के समान ब्रजभाषा को झलक पर्याप्त है। श्रीधर पाठक की खड़ी बोली कविता की मिठास का कारण बहुत कुछ ब्रजभाषा के रूपों का व्यवहार है। यह परिवर्तन काल शीघ्र ही दूर हो गया और अब तो खड़ी बोली कविता से भी ब्रजभाषा की छाप करीब करीब बिलकुल निकल गई है। गत डेढ़ दो सौ वर्षों से साहित्यिक खडी बोली—आधुनिक हिंदी और उर्दू—मेरठ बिजनौर की जनता की खड़ी बोली से स्वतन्त्र होकर अपने अपने ढंग से विकास को प्राप्त कर रही है। स्वाभाविक बोली के प्रभाव से पृथक् हो जाने के कारण इन के व्याकरण का ढाँचा तथा शब्द समूह निराला होता जाता है। तो भी अभी तक आधुनिक हिन्दी उर्दू के व्याकरण का ढाँचा मेरठ बिजनौर को खड़ी बोली से बहुत अधिक भिन्न नही हो पाया है। भेद की अपेक्षा साम्य की मात्रा विशेष है।

साहित्य के क्षेत्र में खडी बोली हिन्दी के व्यापक प्रभाव के रहते हुये भी हिन्दी की अन्य प्रादेशिक बोलियाँ अपने अपने प्रदेशों में आज भी पूर्ण रूप से जीवितावस्था मे हैं। हिन्दुस्तान के गाँवों की समस्त जनता अब भी खडी बोली के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों के आधुनिक रूपों का ही व्यवहार कर रही है। गांव के अपढ़ लोग बोल चाल की आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को समझ बराबर लेते हैं किन्तु ठीक ठीक बोल नही सकते। गाँव की बोलियों में भी धीरे धीरे परिवर्तन हो रहा है। जायसी की अवधी तथा आजकल की अवधी मे काफी भेद हो गया है। इसी तरह सूरदास की ब्रजभाषा से आजकल की ब्रज बोली कुछ भिन्न हो गई है। इन परिवर्तनों को प्रारंभ हुये सौ सवा सौ वर्ष अवश्य बीत चुके

हैं इसीलिये १८०० ई० के लगभग से हिन्दी भाषा के इतिहास मे तीसरे काल का प्रारंभ माना जा सकता है। यद्यपि इस समय भेदों की मात्रा अधिक नहीं है किन्तु संभावना यही है कि ये भेद बढ़ते ही जावेंगे और सौ दो सौ वर्ष के अन्दर ही ऐसी परिस्थिति आ सकती है जब तुलसी, सूर आदि की भाषा को स्वाभाविक ढंग से समझ लेना अवध और ब्रज के लोगों के लिये कठिन हो जावेगा। इस प्रगति का प्रारंभ हो ही गया है।

ए. देवनागरी लिपि और अंक

यद्यपि हिन्दी भाषाभाषी प्रदेश मे उर्दू, रोमन, कैथी, मुड़िया, मैथिली, आदि अनेक लिपियों का थोड़ा बहुत व्यवहार है किन्तु देवनागरी लिपि का स्थान इन में सर्वोपरि है। लिखने के अतिरिक्त छपाई में तो प्राय: एक मात्र इसी का व्यवहार होता है। यदि देवनागरी लिपि की प्रतिद्वन्द्विता किसी से है तो उर्दू लिपि से है। भारतवर्ष के समस्त पढ़े लिखे मुसल्मानों तथा पंजाब और आगरा-देहली की तरफ के हिन्दुओं मे उर्दू लिपि का व्यवहार पाया जाता है किन्तु देवनागरी लिपि की लोक प्रियता उर्दू लिपि को भी नही प्राप्त है। देवनागरी लिपि का प्रचार समस्त हिन्दी भाषाभाषी प्रदेश में तथा उसके बाहर महाराष्ट्र मे है। ऐतिहासिक दृष्टि से देवनागरी का अन्तिम संबंध भारत की प्राचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से है। ब्राह्मी और देवनागरी का संबंध समझने के लिये भारतीय लिपियों के इतिहास के संबंध में विशेषज्ञों[1] ने जो खोज की है उसका सार नीचे दिया जाता है।

प्राचीन वैदिक तथा बौद्ध साहित्य के बाह्यरूप तथा उसमें पाये जाने वाले उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि भारत मे लेखन-कला का प्रचार छठी शताब्दी पूर्व ईसा से भी बहुत पहिले मौजूद था। ऐसी अवस्था में कुछ यूरोपीय विद्वानो

[1] ओझा, भा. प्रा. लि., प्रथम संस्करण १८९४, दूसरा संस्करण १९१८; बूहलर, आन दि ओरिजिन आव दि इंडियन ब्राह्म अलफ़ाबेट, प्रथम संस्करण १८९५, द्वितीय संस्करण १८९८।

का यह मत बहुत सारयुक्त नहीं मालूम होता कि भारतीय लोगों ने चौथी, आठवीं या दसवीं शताब्दी पूर्व ईसा में किन्हीं विदेशियों से लिखने की कला सीखी। जो हो भारतवर्ष में लिखने के प्रचार की प्राचीनता तथा उसका उद्गम हमारे प्रस्तुत विषय से विशेष संबंध नहीं रखता अतः इसका विस्तृत विवेचन यहाँ अनावश्यक है।

प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी (पाली वंशी) और खरोष्ठी नाम की दो लिपियें प्रचलित थीं इनमें से ब्राह्मी एक प्रकार से राष्ट्रीय लिपि थी क्योंकि इसका प्रचार पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़ कर शेष समस्त भारत में था। हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय लिपियों की तरह यह भी बांईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी। पश्चिमोत्तर प्रदेश में खरोष्ठी[1] लिपि का प्रचार था और यह आधुनिक विदेशी उर्दू लिपि की तरह दाहिनी ओर से बांईं ओर को लिखी जाती थी। यह निश्चित है कि खरोष्ठी लिपि आर्य लिपि नहीं है बल्कि इसका संबंध विदेशी सेमिटिक अरमइक लिपि से है। खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के संबंध मे ओझा[2] लिखते हैं कि "जैसे मुसल्मानों के राज्य समय मे ईरान की फारसी लिपि का हिन्दुस्तान में प्रवेश हुआ और उसमें कुछ अक्षर और मिलाने से हिन्दी भाषा के मामूली पढ़े लिखे लोगों के लिये काम चलाऊ उर्दू लिपि बनी वैसे ही जब ईरानियों का अधिकार पंजाब के कुछ अंश पर हुआ तब उनकी राजकीय लिपि अरमइक का वहाँ प्रवेश हुआ, परन्तु उसमे केवल २२ अक्षर (जो आर्य भाषाओं के केवल १८ उच्चारणों को व्यक्त कर सकते थे) होने तथा स्वरों में ह्रस्व दीर्घ का भेद और स्वरों की मात्राओं के न होने के कारण यहाँ के विद्वानों में से खरोष्ठ या किसी और ने नये अक्षरों तथा ह्रस्व स्वरों की मात्राओं की योजना कर मामूली पढ़े हुये लोगों के लिये, जिनको शुद्धाशुद्ध की विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी, काम चलाऊ लिपि बना दी।" इस लिपि का प्रचार भारत के पश्चिमोत्तरी

---

[1] खरोष्ठी का शब्दार्थ 'गधे के होठ वाली' है।

[2] ओझा, भा. प्रा लि., पृ० ९७।

प्रदेश, के आसपास तीसरी शताब्दी पूर्व-ईसा से तीसरी शताब्दी ईसवी तक रहा।

तीसरी शताब्दी ईसवी के बाद इस प्रदेश में भी ब्राह्मी के विकसित रूप व्यवहृत होने लगे। उर्दू लिपि का विकास खरोष्ठी से नहीं हुआ है। उर्दू और खरोष्ठी का मूल तो एक ही है किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उर्दू लिपि मुसल्मानों के भारत में आने पर उनकी फ़ारसी-अरबी लिपि के आधार पर कुछ अक्षरों को जोड कर बनाई गई थी। इसका वर्णन 'हिन्दी में विदेशी ध्वनियाँ' शीर्षक अध्याय में किया गया है।

मध्य तथा आधुनिक कालो की समस्त भारतीय लिपियो का उद्गम प्राचीन राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से हुआ है इस सबंध मे कोई भी मत भेद नहीं है स्वयं ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के संबंध मे दो मुख्य मत हैं। बूहलर तथा वेबर आदि विद्वानों का एक समूह ब्राह्मी का संबध पश्चिम एशिया की किसी न किसी विदेशी लिपि से जोडता है। इन विद्वानों में इस विषय के विशेषज्ञ बूहलर ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि ब्राह्मी लिपि के २२ अक्षर उत्तरी सेमिटिक लिपियो से लिये गये हैं और बाकी अक्षर उन्ही के आधार पर बनाये गये हैं। कनिघम तथा ओझा आदि विद्वानो का दूसरा समूह ब्राह्मी की उत्पत्ति विदेशी लिपियो से नही मानता। ब्राह्मी की उत्पत्ति के सबंध मे ओझा[1] का कहना है कि "यह भारतवर्ष के आर्यो का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग सुदरता से चाहे इसका कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पडा चाहे साक्षर समाज ब्राह्मणो की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो पर इसमे संदेह नहीं कि इसका फिनीशिअन से कुछ भी संबंध नहीं।" ब्राह्मी लिपि का उद्गम चाहे जो हो किन्तु इतना निश्चित है कि मौर्य काल में इसका प्रचार समस्त भारत में था। ब्राह्मी लिपि में लिखे गये सबसे प्राचीन

---

[1] ओझा, भा प्रा लि, पृ० २८।

लेख पांचवीं शताब्दी पूर्व-ईसा काल तक के पाये गये हैं। अशोक के प्रसिद्ध शिलालेखों तथा अन्य प्राचीन लेखो की लिपि ब्राह्मी ही है।

ब्राह्मी लिपि का प्रचार भारत में लगभग ३५० ईसवी तक रहा। इस समय तक उत्तर और दक्षिण की ब्राह्मी लिपि में पर्याप्त अन्तर हो गया था। तामिल, तेलगू, ग्रंथ आदि दक्षिण भारत की समस्त आधुनिक तथा मध्य-कालीन लिपियो का संबंध ब्राह्मी की दक्षिण शैली से है। चौथी शताब्दी के लगभग प्रचलित उत्तर की शैली का कल्पित नाम गुप्तलिपि रक्खा गया है। गुप्तसाम्राज्य के प्रभाव के कारण इसका प्रचार चौथी और पांचवीं शताब्दी में समस्त उत्तर भारत मे था। इसके उदाहरण गुप्त कालीन शिलालेखों तथा ताम्र पत्रादि में मिलते हैं। "गुप्तों के समय में कई अक्षरों की आकृतियाँ नागरी से कुछ कुछ मिलती हुई होने लगी। सिरो के चिह्न जो पहिले बहुत छोटे थे बढ़ कर कुछ लंबे बनने लगे और स्वरों की मात्राओं के प्राचीन चिह्न लुप्त होकर नये रूपो में परिणत हो गये।"[१]

गुप्त लिपि के विकसित रूप का कल्पित नाम 'कुटिल लिपि' रक्खा गया है। इसका प्रचार छठी से नवी शताब्दी ईसवी तक उत्तर भारत में रहा। 'कुटिलाक्षर' नाम का प्रयोग प्राचीन है। अक्षरो तथा स्वरों की कुटिल आकृतियों के कारण ही यह लिपि कुटिल कहलाई जाने लगी। इस काल के शिलालेख तथा दानपत्र आदि इसी लिपि में लिखे पाये जाते हैं। कुटिल लिपि से ही नागरी तथा काश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा विकसित हुई। शारदा से वर्तमान काश्मीरी, टाकरी तथा गुरुमुखी लिपियें निकली हैं। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग प्राचीन बंगला लिपि निकली जिसके आधुनिक परिवर्तित रूप बंगला, मैथिल, उड़िया तथा नेपाली लिपियों के रूप में प्रचलित हैं। प्राचीन नागरी से ही गुजराती, कैथी तथा महाजनी आदि उत्तर भारत की अन्य लिपियाँ भी संबद्ध हैं।

---

[१] ओझा, भा. प्रा. लि., पृ० ६०।

नागरी [1] लिपि का प्रयोग उत्तर भारत में दसवीं शताब्दी के प्रारंभ से मिलता है किन्तु दक्षिण भारत में कुछ लेख आठवीं शताब्दी तक के पाये जाते हैं। दक्षिण की नागरी लिपि 'नंदि नागरी' नाम से प्रसिद्ध है और अब तक दक्षिण में संस्कृत पुस्तकों के लिखने में उसका प्रचार है। राजस्थान, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यभारत, तथा मध्यप्रान्त में इस काल के लिखे प्रायः समस्त शिलालेख, ताम्रपत्र आदि में नागरी लिपि ही पाई जाती है। "ई० स० की १० वीं शताब्दी की उत्तरी भारतवर्ष की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की नांई, अ, आ, घ, प, म, य, ष और स के सिर दो अंशों में विभक्त मिलते हैं, परंतु ११ वीं शताब्दी से ये दोनों अंश मिलकर सिर की एक लकीर बन जाती है और प्रत्येक अक्षर का सिर उतना लंबा रहता है जितनी कि अक्षर की चौड़ाई होती है। ११ वीं शताब्दी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से मिलती जुलती ही है और १२ वीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई। . . . ई० स० की १२ वीं शताब्दी से लगाकर अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आती है।"[2] इस तरह आधुनिक देव नागरी लिपि दसवीं शताब्दी ईसवी की प्राचीन नागरी लिपि का ही विकसित रूप है।

---

[1] 'नागरी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान इसका संबंध 'नागर' ब्राह्मणों से लगाते हैं अर्थात् नागर ब्राह्मणों में प्रचलित लिपि नागरी कहलाई, कुछ 'नगर' शब्द से संबंध जोड़ कर इसका अर्थ नागरी अर्थात् नगरों में प्रचलित लिपि लगाते हैं। एक मत यह भी है कि तांत्रिक यंत्रों में कुछ चिह्न बनते थे जो 'देवनगर' कहलाते थे, इन अक्षरों से मिलते जुलते होने के कारण यही नाम इस लिपि के साथ संबंध हो गया। तांत्रिक समय में 'नागर लिपि' नाम प्रचलित था, (ओझा, प्राचीन लिपिमाला, पृ० १८)। इस लिपि के लिये देव-नागरी या नागरी नाम पड़ने का कारण वास्तव में अनिश्चित है।

[2] ओझा, भा. प्रा. लि., पृ० ६९-७०।

जिस प्रकार वर्तमान देवनागरी लिपि ब्राह्मी-लिपि का परिवर्तित रूप है उसी प्रकार वर्तमान नागरी अंक भी प्राचीन ब्राह्मी अंकों के परिवर्तन से बने हैं। "लिपियों की तरह प्राचीन और अर्वाचीन अंकों में भी अंतर है यह अन्तर केवल उनकी आकृति में ही नही किंतु अंकों के लिखने की रीति में भी है। वर्तमान समय में जैसे १ से ९ तक अंक और शून्य इन १० चिह्नों से अंक विद्या का संपूर्ण व्यवहार चलता है वैसे प्राचीन काल में नहीं था। उस समय शून्य का व्यवहार ही न था और दहाइयों, सैकड़े, हजार आदि के लिये भी अलग चिह्न थे।"[1] अंकों के संबंध में इन दो शैलियों को 'प्राचीन शैली' और 'नवीन शैली' कहते हैं।

भारतवर्ष मे अंकों की यह प्राचीन शैली कब से प्रचलित हुई इसका ठीक पता नही चलता। अशोक के लेखों मे पहले पहल कुछ अंकों के चिह्न मिलते हैं। प्राचीन शैली के अंकों की उत्पत्ति के संबंध मे भिन्न भिन्न विद्वानों ने अनेक कल्पनाये की हैं। इस संबंध में ओझा ने बूहलर का नीचे लिखा मत उद्धृत किया है जो ध्यान देने योग्य है। "प्रिन्सेप का यह पुराना कथन कि अंक उनके सूचक शब्दों के प्रथम अक्षर हैं, छोड देना चाहिये। परंतु अब तक इस प्रश्न का संतोषदायक समाधान नहीं हुआ। पंडित भगवान लाल ने आर्यभट्ट और मंत्र शास्त्र की अक्षरों द्वारा अंक सूचित करने की रीति को भी जांचा परतु उसमे सफलता न हुई (अर्थात् अक्षरों के क्रम की कोई कुंजी न मिली) और न मैं इस रहस्य की कोई कुंजी प्राप्त करने का दावा करता हूँ। मैं केवल यही बतलाऊँगा कि इन अंकों में अनुनासिक, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का होना प्रकट करता है कि उन (अंकों) को ब्राह्मणों ने निर्माण किया था न कि वाणिआओं (महाजनों) ने और न बौद्धों ने जो प्राकृत को काम में लाते थे।"[2] कुछ विद्वानों के इस मत को कि भारतीय मूल अंक विदेशी अंकों से प्रभावित हैं ओझा आदि विद्वानों का समूह नही मानता

[1] ओझा, भा. प्रा. लि., पृ० १०३।
[2] ओझा, भा. प्रा. लि., पृ० ११०।

ओझा के अनुसार "प्राचीन शैली के भारतीय अंक भारतीय आर्यों के स्वतंत्र निर्माण किये हुये हैं।" [१]

नवीन शैली के अंकक्रम का प्रचार पांचवीं शताब्दी के लगभग से पूर्व साधारण मे था यद्यपि शिलालेख आदि में प्राचीन शैली का ही प्रायः उपयोग किया जाता था। नवीन शैली की उत्पत्ति के संबंध में ओझा का मत है कि "शून्य की योजना कर नव अंकों से गणित शास्त्र को सरल करने वाले नवीन शैली के अंकों का प्रचार पहिले पहल किस विद्वान ने किया इसका कुछ भी पता नही चलता। केवल यही पाया जाता है कि नवीन शैली के अंकों की सृष्टि भारतवर्ष में हुई, फिर यहाँ से अरबों ने यह क्रम सीखा और अरबों से उसका प्रवेश यूरोप में हुआ।" [२]

भाषा और लिपि दो भिन्न वस्तुयें होते हुये भी व्यवहार मे ये अभिन्न रहती हैं। इसी कारण संक्षेप में हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि और हिंदी अंकों के विकास का दिग्दर्शन यहाँ करा देना उचित समझा गया। लिपि तथा अंक के चिह्नों के इतिहास के सम्बन्ध मे विस्तृत सामग्री ओझा लिखित प्राचीन लिपिमाला मे संकलित है।

---

[१] ओझा, भा प्रा लि, पृ० ११४।

[२] ,, ,, ,, ,, पृ० ११७।

इतिहास

अध्याय १

हिन्दी ध्वनिसमूह

अ. वैदिक तथा संस्कृत ध्वनिसमूह

१. हिंदी ध्वनिसमूह पर विचार करने के पूर्व हिंदी की पूर्ववर्ती आर्य्य-भाषाओं के ध्वनिसमूह की अवस्था पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। हिंदी ध्वनिसमूह के मूलाधार वास्तव में ये प्राचीन ध्वनिसमूह ही हैं।

भारतीय आर्य्य-भाषाओं के ध्वनिसमूह का प्राचीनतम रूप वैदिक ध्वनियों के रूप में मिलता है। वैदिक भाषा में ५२ मूल ध्वनियाँ हैं[१]। इन में १३ स्वर तथा ३९ व्यंजन हैं। देवनागरी लिपि में ये ध्वनियाँ नीचे लिखे ढंग से प्रकट की जा सकती हैं:—

(१) ग्यारह मूलस्वर[२] : अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ओ

(२) दो संयुक्त स्वर : अइ (ऐ) अउ (औ)

---

[१] मैकडानेल, वेदिक ग्रैमर, § ४।

[२] आधुनिक शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार स्वर वे ध्वनियाँ कहलाती हैं जिनके उच्चारण में मुखद्वार कम ज्यादः तो किया जाता है किन्तु न तो कभी बिलकुल बन्द किया जाता है और न इतना अधिक बन्द कि निःश्वास रगड़ खा कर निकले। ऐसा न होने से ध्वनि व्यंजन कहलाती है।

(३) सत्ताईस स्पर्श[१] व्यंजन, जो स्थान भेद के अनुसार प्रायः पाँच वर्गों में रक्खे जाते हैं :

कंठ्य : क् ख् ग् घ् ङ्

तालव्य : च् छ् ज् झ् ञ्

मूर्द्धन्य : ट् ठ् ड् ळ् ढ् ळ्ह् ण्

दन्त्य : त् थ् द् ध् न्

ओष्ठ्य : प् फ् ब् भ् म्

(४) चार अन्तस्थ[२] : इ̆ (य्) र् ल् उ̆ (व्)

---

[१]स्पर्श उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में मुख के अन्दर या बाहर के दो उच्चारण-अवयव एक दूसरे को इतनी ज़ोर से स्पर्श कर के सहसा खुलते हैं कि नि श्वास थोडी देर के लिए बिलकुल रुक कर फिर वेग के साथ सहसा बाहर निकलती है। पंचवर्ग इसके उदाहरण हैं। स्पर्श ध्वनियों को स्फोटक भी कहते हैं।

स्पर्श ध्वनियों में दो भेद हैं—अल्पप्राण और महाप्राण। अल्पप्राण ध्वनियों में ह कार की ध्वनि का मिश्रण नहीं होता। महाप्राण ध्वनियों में ह-कार की ध्वनि मिश्रित होती है। वैदिक ध्वनिसमूह में ळ, ळ्ह को छोड कर पचवर्गों के दूसरे चौथे वर्ण तथा ऊष्म ध्वनियें महाप्राण हैं। शेष समस्त ध्वनियें अल्पप्राण हैं। ळ्, ळ्ह में प्रथम अल्पप्राण तथा द्वितीय महाप्राण ध्वनि है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अघोष व्यजनों के साथ अघोष ह् आता है तथा घोष व्यजनों के साथ घोष ह् आता है।

[२]अन्तस्थ वे ध्वनियाँ कहलाती हैं जिनके उच्चारण में मुख-विवर सकरा तो कर दिया जाता है किंतु न तो इतना अधिक कि स्पर्श अथवा सघर्षी ध्वनियें निकलें और न इतना कम कि ध्वनियें स्वर का रूप धारण कर लें। शब्दार्थ की दृष्टि से स्वर और व्यंजन के 'बीच की' ध्वनियें अन्तस्थ कहलाती हैं। य् र् ल् व् इन चार अंतस्थों में से आधुनिक परिभाषा के अनुसार य् व् अर्द्धस्वर, र् उत्क्षिप्त, तथा ल् पार्श्विक कहलाते हैं।

(५) तीन अघोष[1] सघर्षी[2] : श ष स
(६) एक घोष ऊष्म[3] : ह्
(७) एक शुद्ध अनुनासिक या अनुस्वार :
(८) तीन अघोष ऊष्म :
(विसर्जनीय या विसर्ग) :
(जिह्वामूलीय) ×
(उपध्मानीय) ×

२. वैदिक ध्वनियों का जो उच्चारण आजकल प्रचलित है ठीक वैसा ही उच्चारण वैदिककाल मे भी रहा हो यह आवश्यक नहीं है। संभावना तो यह है कि उच्चारण मे बहुत कुछ परिवर्तन हुआ होगा। प्राचीन शिक्षा ग्रंथ, प्रातिशाख्य तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों और ध्वनिशास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर मूलवैदिक ध्वनियों की उच्चारण संबंधी विशेषताओं का निर्धारण किया गया है। संक्षेप मे ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

ऋक्प्रातिशाख्य मे ऋ का उच्चारण वर्त्स्य माना गया है साथ ही इसे मूर्द्धन्यस्वर भी कहा गया है। बाद को ऋ का उच्चारण कदाचित् जीभ को दो बार वर्त्स मे छुआ कर होने लगा था। कुछ कुछ ऐसा ही उच्चारण अब भी कहीं कहीं प्रचलित है। वास्तव में ऋ के मूल उच्चारण के संबंध मे बहुत मतभेद है। ऋ का दीर्घरूप ॠ है।

---

[1]अघोष ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतन्त्रियों की सहायता नहीं ली जाती। घोष वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वरतन्त्रियों की सहायता ली जाती है। स्पर्श व्यञ्जनों के पहले दूसरे वर्ण, अघोष सघर्षी तथा अघोष ऊष्म ध्वनियें अघोष हैं तथा शेष समस्त ध्वनियें घोष हैं।

[2]सघर्षी उन ध्वनियों को कहते हैं जिनमें मुखविवर इतना अधिक सकरा कर दिया जाता है कि निःश्वास रगड़ खा कर निकलती है। सघर्षी ध्वनियें ही पहले ऊष्म कहलाती थीं।

[3]ऊष्म यहाँ उन ध्वनियों की संज्ञा है जिनमें मुखविवर के खुले रहने पर भी निःश्वास इतनी ज़ोर से फेंकी जाय कि जिससे वायु का सघर्षण हो।

ऌ का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है वैदिक धातुओं में केवल क्लृप् मे यह स्वर पाया जाता है। चैटर्जी के मतानुसार[1] ऌ का उच्चारण अंग्रेजी के लिट्‌ल् (*little*) शब्द के दूसरे ल् से मिलता जुलता रहा होगा।

भारतीय आर्य भाषा काल के पूर्व ए ओ संधिस्वर (अ+इ; अ+उ) थे। वैदिक तथा संस्कृत काल मे ही इन का उच्चारण दीर्घमूल-स्वरों के समान हो गया था यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से ये संधिस्वर ही माने जाते थे।

वैदिक काल मे आते आते ही आइ आउ का पूर्व स्वर ह्रस्व हो गया था। इन संयुक्त स्वरो का यह रूप, अइ अउ, संस्कृत मे अब तक मौजूद है। देवनागरी लिपि मे ये साधारणतया ऐ औ लिखे जाते हैं।

ळ ळ्ह ध्वनियें कदाचित् उस बोली में वर्तमान् थी जिस के आधार पर ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा बनी थी। दो स्वरो के बीच में आनेवाले ड् ढ् से इनकी उत्पत्ति मानी जा सकती है।

वैदिक काल मे चवर्गीय ध्वनियें आजकल की तरह स्पर्श-संघर्षी न होकर केवल मात्र स्पर्श थी।

टवर्गीय ध्वनियो का स्थान आज कल की अपेक्षा कुछ ऊपर था।

प्रातिशाख्यो के अनुसार तवर्ग का स्थान दंत न होकर वर्त्स था।

इँ उँ शुद्ध अर्द्धस्वर थे।

अनुस्वार वास्तव मे स्वर के बाद आने वाली शुद्ध नासिक्य ध्वनि थी किंतु कुछ प्रातिशाख्यों से पता चलता है कि अनुस्वार तभी अनुनासिक स्वर मे परिवर्तित होने लगा था। अनुस्वार केवल य् र् ल् व् श् ष् स् ह् के पहले आता था। स्पर्श व्यंजनों के पहले यह वर्गीय अनुनासिक व्यंजन में परिवर्तित हो जाता था।

---

[1] चै., बे लै., §१३०।

क् के पहले आने वाले विसर्ग का रूपांतर जिह्वामूलीय (ᳵ) कहलाता था। ततः कि में विसर्ग की ध्वनि कुछ कुछ ख् के समान सुनाई पड़ती है। इसे जिह्वामूलीय कहते थे। इसी प्रकार प् के पहले आने वाले विसर्ग का रूपांतर उपध्मानीय (ᳶ) कहलाता था। पुनः पुनः में प्रथम विसर्ग में कुछ कुछ ऐसी आवाज निकाली जा सकती है जैसी धीरे से चिराग़ बुझाते समय होठों से निकलती है। इसे उपध्मानीय कहते हैं।

शेष वैदिक ध्वनियों के उच्चारण इनके आधुनिक हिंदी उच्चारणों से विशेष भिन्न नहीं थे।

३. आधुनिक ध्वनिशास्त्र के दृष्टिकोण से ५२ वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण[1] निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है :—

स्वर[2]

	अग्र		पश्च
संवृत्	इ ई		उ ऊ
अर्द्धसंवृत्	ए		ओ
विवृत्			अ आ
संयुक्तस्वर		अइ अउ	
विशेष स्वर		ऋ ॠ ऌ	
शुद्ध अनुस्वार		ं	

[1] वै., बे. लै., § १२८।

[2] स्वरों के वर्गीकरण के सिद्धान्त के लिये देखिये § १०।

व्यंजन

	द्वयोष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श अल्पप्राण	प् ब्	त् द्	ट् ड्	च् ज्	क् ग्	
" महाप्राण	फ् भ्	थ् ध्	ठ् ढ्	छ् झ्	ख् घ्	
अनुनासिक	म्	न्	ण्	ञ्	ङ्	
पार्श्विक[1] अल्प०		ल्	ळ्			
" महा०			ळ्ह्			
उत्क्षिप्त[2]		र्				
संघर्षी	×(उप०)	स्	ष्	श्	×(जिह्वा०)	: ह्
अर्द्धस्वर	उँ (व्)			इँ (य्)		

४. ळ्, ळ्ह्, जिह्वामूलीय, तथा उपध्मानीय को छोड़ कर शेष समस्त वैदिक ध्वनियो का प्रयोग संस्कृत मे होता रहा। कुछ ध्वनियों के उच्चारण में परिवर्तन हो गये थे। ऋ, ॠ, ऌ, का मूलस्वरों के सदृश उच्चारण संदिग्ध हो गया था। ए ओ का उच्चारण संस्कृत में मूलस्वरों के सदृश था। आइ आउ निश्चित रूप से अइ अउ हो गये थे। पाणिनि के समय मे ही उँ दन्त्योष्ठ्य व् तथा द्वयोष्ठ्य व़् में परिवर्तित हो चुका था तथा इँ ने बाद

[1] पार्श्विक उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में मुखविवर को सामने से तो जीभ बन्द कर दे किन्तु दोनों पार्श्वों से निःश्वास निकलती रहे।

[2] उत्क्षिप्त उन ध्वनियों को कहते हैं जिनमें जीभ तालु के किसी भाग को वेग से मार कर हट आवे।

को य् तथा य् का रूप धारण कर लिया था। अनुस्वार पिछले स्वर से मिल कर अनुनासिक स्वर की तरह उच्चरित होने लगा था।

आ. पाली तथा प्राकृत ध्वनिसमूह

५. पाली में दस स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ए ओ ओ—पाये जाते हैं। ऋ ॠ ऌ ऐ औ का प्रयोग पाली भाषा में नही होता। ऋ ध्वनि अ इ उ आदि किसी अन्य स्वर मे परिवर्तित हो जाती है। ॠ ऌ का प्रयोग संस्कृत में ही नहीं के बराबर हो गया था। ऐ औ के स्थान मे ए ओ क्रम से हो जाते हैं। पाली मे दो नये स्वर ए ओ—ह्रस्व ए ओ—पहले पहल मिलते हैं।

व्यंजनो में पाली मे श् ष् नहो पाये जाते। श् ष् के स्थान पर भी स् का ही व्यवहार मिलता है।

पाली मे विसर्ग का प्रयोग भी नहीं पाया जाता। पद के अन्त में आने वाले विसर्ग का या तो लोप हो जाता है या वह पूर्ववर्ती अ से मिल कर ओ में परिवर्तित हो जाता है।

शेष ध्वनियाँ पालो मे संस्कृत के ही समान हैं।

६. प्राकृत भाषाओं और पाली के ध्वनिसमूह मे विशेष भेद नहीं है। मागधी को छोड़ कर अन्य प्राकृतो मे य् और श् का व्यवहार प्रचलित नही है। मागधी मे स् के स्थान पर भी श् ही मिलता है। ष् और विसर्ग का प्रयोग प्राकृतों मे नहीं लौट सका।

इ. हिन्दी ध्वनिसमूह

७. आधुनिक साहित्यिक हिन्दी मे अधिकांश ध्वनियें तो परंपरागत भारतीय आर्यभाषा के ध्वनिसमूह से आई हैं, कुछ ध्वनियें आधुनिक काल मे विकसित हुई हैं, तथा कुछ ध्वनियें फारसी अरबी और अंग्रेजी के संपर्क से भी आ गई हैं। इस दृष्टि से साहित्यिक हिन्दी मे प्रचलित मूल ध्वनियें नीचे दी जाती हैं:—

(१) प्राचीन ध्वनियें :

अ आ इ ई उ ऊ ए ओ

क् ख् ग् घ् ङ्

च् छ् ज् झ्

ट् ठ् ड् ढ् ण्

त् थ् द् ध् न्

प् फ् ब् भ् म्

य् र् ल् व्

श् स् ह्

(२) नई विकसित ध्वनियें :

अए (ऐ) अओ (औ); ड़् ढ़्; ृ; न्ह् म्ह्

(३) फारसी-अरबी के तत्सम शब्दों मे प्रयुक्त ध्वनियें :

क़् ख़् ग़् ज़् फ़्

(४) अंग्रेज़ी तत्सम शब्दों मे प्रयुक्त ध्वनियें :

ऑ

८. ऋ ष् ञ् संस्कृत तत्सम शब्दो में लिखे तो जाते हैं किन्तु हिन्दी-भाषाभाषी इनके मूल रूप का उच्चारण नही करते। सं० ऋ तत्सम शब्दो में भी उच्चारण मे रि हो गई है जैसे ऋण, कृपा, प्रकृति आदि शब्दों का वास्तविक उच्चारण हिन्दी मे *रिण, क्रिपा* तथा *प्रकिति* है। ष् का उच्चारण हिन्दी में श् के समान होता है। उच्चारण की दृष्टि से पोषक, कष्ट, कृषक आदि *पोशक, कश्ट, क्रशक* हो गये हैं। ञ् संस्कृत शब्दो मे भी स्वतन्त्र रूप से नही आता है। शब्द के मध्य मे आने वाले ञ् का उच्चारण साहित्यिक हिन्दी मे न् के समान होता है जैसे चञ्चल, मञ्जन, काञ्चन वास्तव में

चन्चल मन्जन कान्चन बोले जाते हैं। इसी लिये इन तीन ध्वनियों का उल्लेख ऊपर की सूची में नहीं किया गया है। हलन्त ण् का उच्चारण भी हिन्दी मे न् के समान होता है जैसे *पण्डित*, *ठण्डा*, *ताण्डव* उच्चारण मे *पन्डित*, *ठन्डा*, *तान्डव* हो जाते हैं। किन्तु तत्सम शब्दो मे प्रयुक्त पूर्ण ण् का उच्चारण हिन्दी में होता है जैसे *गणना*, *गणेश*, *कण*।

हिन्दी की बोलियों मे कुछ विशेष ध्वनियें पाई जाती हैं जिनका व्यवहार आधुनिक साहित्यिक हिन्दी मे नहीं होता। ये ध्वनिये निम्नलिखित हैं:—

अ़ ए ओ ऍ ऑ ऍ ऑ; इ़ उ़ ए़; ञ्; ऱ्ह्, ल्ह्

८. आधुनिक साहित्यिक हिन्दी तथा बोलियों में व्यवहृत समस्त ध्वनियाँ आधुनिक शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार नीचे दी जा रही हैं। केवल बोलियो में व्यवहृत ध्वनिये कोष्ठक में दी गई हैं:—

(१) मूलस्वर: अ आ ऑ [ऑ] [ऑ] [ओ] ओ उ [उ़]
ऊ ई इ [इ़] ए [ए] [ए़] [ऍ] [ऍ]
[अ़]

मूलस्वरो के अनुनासिक तथा संयुक्त रूप भी पाये जाते हैं। इनका विवेचन आगे विस्तार से किया गया है।

(२) स्पर्श : क़् क् ख् ग् घ्
ट् ठ् ड् ढ्
त् थ् द् ध्
प् फ् ब् भ्

(३) स्पर्शसंघर्षी: च् छ् ज् झ्

(४) अनुनासिक: ङ् [ञ्] ण् न् न्ह् म् म्ह्

(५) पार्श्विक : ल् [ल्ह्]

(६) लुठित[1] : र् [र्ह्]

(७) उत्क्षिप्त : ड़् ढ़्

(८) संघर्षी : : ह् स् ग़् श् स् ज़् फ़् व्

(९) अर्द्धस्वर : य् व्

ऊपर दिये हुए क्रम के अनुसार प्रत्येक हिंदी ध्वनि[2] का विस्तृत वर्णन उदाहरण सहित आगे दिया गया है।

---

[1] लुठित उन ध्वनियों को कहते हैं जिन के उच्चारण में जीभ बेलन की तरह लपेट खा कर तालु को छुये। चैटर्जी (बे. लै., § १४०) तथा ग्रादरी (हि फो , पृ० ६४) आधुनिक र् को उत्क्षिप्त मानते हैं किंतु सकसेना ने (ए अ , § १) इसे लुठित माना है।

[2] यहाँ पर भाषा-ध्वनि (speech-sound) तथा ध्वनि-श्रेणी (phoneme) का भेद समझ लेना आवश्यक है। प्रत्येक भाषा-ध्वनि का उच्चारण एक ही पुरुष भिन्न भिन्न स्थलों पर कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ करता है, साथ ही भिन्न भिन्न पुरुष प्रत्येक ध्वनि का उच्चारण कुछ पृथक् ढंग से करते हैं। उदाहरण के लिये अ का उच्चारण भिन्न भिन्न स्थलों तथा भिन्न भिन्न पुरुषों द्वारा बहुत प्रकार का हो सकता है। यह अवश्य है कि अ के ऐसे भिन्न भिन्न रूपों में बहुत ही कम अंतर होता है। साधारणतया कान इस अंतर को नहीं पकड़ता। शास्त्रीय दृष्टि से अ के ये सब भिन्न रूप पृथक् पृथक् भाषा ध्वनियें हैं और सूक्ष्म दृष्टि से एक दूसरे से उसी रूप में भिन्न हैं जिस रूप में अ और ए भिन्न हैं। किंतु व्यावहारिक दृष्टि से अ की इन सब मिलती जुलती ध्वनियों को एक ही श्रेणी में रख लिया जाता है अतः अ के ये सब मिलते जुलते रूप अ ध्वनि श्रेणी के अंतर्गत माने जाते हैं और व्यवहार में इन सब के लिये एक ही लिपि चिह्न प्रयुक्त होता है।

हिंदी ध्वनियों का जो वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है वह वास्तव में ध्वनि-श्रेणियों का है। प्रत्येक ध्वनि श्रेणी के अंतर्गत भाषा ध्वनियों के सूक्ष्म भेदों के अनुसार अनेक रूप पाये जाते हैं। इन का वर्णन ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से हिंदी ध्वनि समूह के विस्तृत विवेचन के अंतर्गत ही आ सकता है। हिन्दी ध्वनियों का इस तरह का विवेचन प्रस्तुत पुस्तक के मुख्य विषय से संबंध नहीं रखता।

क. मूलस्वर

१०. जीभ के अगले या पिछले हिस्से के ऊपर उठने की दृष्टि से स्वरों के दो मुख्य-भेद माने जाते हैं जिन्हे अगले या अग्र स्वर और पिछले या पश्च स्वर कहते हैं। कुछ स्वर ऐसे भी हैं जिनके उच्चारण में जीभ का मध्य भाग ऊपर उठता है। ऐसे स्वर बिचले या मध्य स्वर कहलाते हैं। प्रत्येक स्वर के उच्चारण मे जीभ का अगला, बिचला या पिछला भाग भिन्न भिन्न मात्रा में ऊपर उठता है। इस कारण मुख द्वार के अधिक या कम खुलने की दृष्टि से स्वरों के चार भेद किये जाते हैं, (१) विवृत् या खुले हुए, (२) अर्द्धविवृत या अधखुले, (३) अर्द्ध संवृत् या अधसकरे और (४) संवृत् या सकरे। इन दोनो प्रकार के भेदो को दृष्टि मे रखते हुये आठ प्रधान स्वर माने गये हैं जो भिन्न भिन्न भाषाओं के स्वरों के अध्ययन के लिये बाटों का काम देते हैं। इन आठ प्रधान स्वरों के स्थान नीचे दिये हुये चित्र में दिखलाये गये हैं—
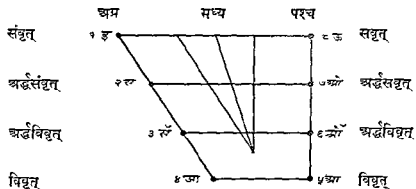
११. इन आठ प्रधान स्वरों के स्थानों को ध्यान में रखते हुये हिन्दी के मूल स्वरों के स्थानों को नीचे के चित्र[1] की सहायता से समझा जा सकता है। केवल बोलियों मे पाये जाने वाले स्वर कोष्ठक मे दिये गये हैं —

---

[1] क़ादरी, हि फो, पृ० ४८, सक, ए अ, § १; सुनीति कुमार चैटर्जी, ए स्केच आव बेंगाली फोनेटिक्स (१९२१)।
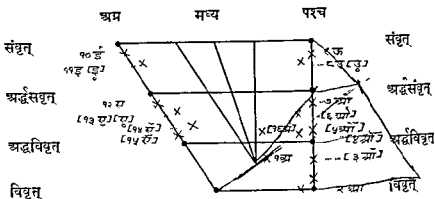
१२. अ यह अर्द्धविवृत् मध्यस्वर है अर्थात् इसके उच्चारण में जीभ का मध्य भाग कुछ ऊपर उठता है और होठ कुछ खुल जाते हैं। अ का व्यवहार बहुत शब्दों मे पाया जाता है। *अब*, *कमल*, *सरल*, शब्दों में अ क म स र मे अ का उच्चारण होता है।

शब्दांश के मध्य या अन्त मे आने से अ की दो मुख्य भाषाध्वनियें पाई जाती हैं। शब्दांश के अन्त मे आने वाला अ कुछ दीर्घ होता है तथा कुछ अधिक खुला तथा पीछे की ओर हटा होता है। ये दो प्रकार के अ खुला अ तथा बन्द अ कहला सकते हैं। ऊपर के उदाहरणों मे अ, म, र के अ बन्द अ हैं तथा क और स के अ खुले अ हैं।

हिंदी मे शब्द या शब्दांश के अन्त मे आने वाले अ का उच्चारण नहीं होता है किन्तु इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं[1]। ऊपर के उदाहरणों में ब ल ल मे उच्चारण की दृष्टि से अ नही है। वास्तव में इन शब्दों मे ये तीनों व्यंजन हलन्त हैं अतः उच्चारण की दृष्टि से इन शब्दों का शुद्ध लिखित रूप *अब्* *कमल्* *सरल्* होगा।

१३. आ-: उच्चारण में एक या अर्द्धमात्रा काल अधिक होने के अतिरिक्त आ और अ मे स्थान भेद भी है। आ विवृत् पश्चस्वर है और प्रधान

---

[1] गु, हि व्या., § ३८।

स्वर आ से बहुत मिलता जुलता है। इसके उच्चारण में जीभ के नीचे रहने पर भी उसका पिछला भाग कुछ अन्दर की तरफ ऊपर उठ जाता है। होंठ बिलकुल गोल नहीं किये जाते, अ की अपेक्षा कुछ खुल अधिक अवश्य जाते हैं। यह स्वर ह्रस्व रूप मे व्यवहृत नहीं होता।

उदा० *आदमी, काला, बादाम।*

१४. ऑ : अंग्रेजी के कुछ तत्सम शब्दों के लिखने में ऑ चिह्न का व्यवहार हिन्दी में होने लगा है। अंग्रेजी ऑ का स्थान आ से काफी ऊँचा है। प्रधान स्वर ऑ से ऑ का स्थान कुछ ही नीचा रह जाता है। अंग्रेजी में ऑ के अतिरिक्त उसका ह्रस्व रूप ॲ भी व्यवहृत होता है। हिन्दी मे दोनों के लिये दीर्घ रूप का ही व्यवहार लिखने और बोलने मे साधारणतया किया जाता है।

उदा० *कॉङ्ग्रेस, कॉन्फ्रेन्स, लॉर्ड।*

१५. ऒ : यह अर्द्धविवृत् ह्रस्व पश्चस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अर्द्धविवृत् पश्च प्रधान स्वर के स्थान की अपेक्षा कुछ ऊपर की तरफ तथा अन्दर की ओर दबा हुआ रहता है और होंठ खुले गोल रहते हैं। इसका व्यवहार व्रजभाषा मे पाया जाता है।

उदा० *अवलोकि हौं सोच विमोचन को* (कवितावली, बाल०, १); *बरु मारिए मोहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढाइहौं जू।* (कवितावली, अयोध्या०, ६)।

१६. ऑ : यह अर्द्धविवृत् दीर्घ पश्चस्वर है और इसके उच्चारण मे होंठ कुछ अधिक खुले गोल रहते हैं। प्रधान स्वर ऑ से इसका स्थान कुछ ऊँचा है। इसका व्यवहार भी व्रजभाषा मे मिलता है। देवनागरी लिपि में इस ध्वनि के लिये पृथक् चिह्न न होने के कारण ऑ के स्थान पर ओ या औ लिख दिया जाता है किन्तु वास्तव में यह ध्वनि इन दोनों से भिन्न है। व्रज-वासियों के मुख से यह ध्वनि

स्पष्ट रूप में सुनाई पड़ती है। ब्रजभाषा के *वाकों, ऐसों, गयों, सायों* आदि शब्दों में वास्तव में ऑ ध्वनि है।

तेज़ी से बोलने में हिंदी संयुक्त स्वर औ (अओ) का उच्चारण मूल स्वर ऑ के समान हो जाता है। उदाहरण के लिये *औरत, मौन, सौ* आदि शब्दों के शीघ्र बोलने मे औ ध्वनि ऑ के सदृश सुनाई पड़ने लगती है।

१७. ओ़ : यह अर्द्धसंवृत् ह्रस्व पश्च स्वर है। इस के उच्चारण में होठ काफी अधिक गोल किये जाते हैं। प्रधान स्वर ओ की अपेक्षा इस का उच्चारण स्थान अधिक नीचा तथा मध्य की ओर झुका है। इस का व्यवहार हिंदी की कुछ बोलियों में होता है। प्राचीन ब्रजभाषा काव्य मे इस ध्वनि का व्यवहार स्वतंत्रता पूर्वक पाया जाता है।

उदा० *पुनि लेत सोई जेहि लागि* अरै (कवितावली, बाल, ४); *ओहि केर बिटिया* (अवधी बोली)।

१८. ओ : यह अर्द्धविवृत् दीर्घ पश्च स्वर है। इस के उच्चारण मे होठ स्पष्ट रूप से गोल हो जाते हैं। प्रधान स्वर ओ से इस का उच्चारण स्थान कुछ ही नीचा है। हिंदी मे यह मूल स्वर है, संयुक्त स्वर नही। संस्कृत की मूल ध्वनि के प्रभाव के कारण इसे संयुक्त स्वर मानने का भ्रम हिंदी मे अब तक चला जा रहा है।

उदा० *ओस, बोतल, चाटो*।

१९. उ़ : यह संवृत् ह्रस्व पश्च स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग काफी ऊपर उठता है किंतु ऊ के स्थान की अपेक्षा नीचे तथा मध्य की ओर झुका रहता है। साथ ही होठ बंद गोल किये जाते हैं।

उदा० *उस, मधुर, ऋतु*।

२०. उ़ : हिंदी की कुछ बोलियों में फुसफुसाहट वाला उ भी पाया जाता है।

फुसफुसाहट वाले स्वर[1] तथा पूर्ण स्वर का स्थान एक ही होता है किंतु दोनों में अंतर है। पूर्ण स्वर के उच्चारण मे दोनों स्वरतंत्रियाँ पूर्ण रूप से तनी हुई बंद हो जाती हैं जिस से फेफड़ों से निकलती हुई हवा रगड़ खा कर निकलती है और घोष ध्वनियों का कारण होती है। फुसफुसाहट वाले स्वरों के उच्चारण मे स्वरतंत्रियों के दो तिहाई होठ बिलकुल बंद रहते हैं किंतु तने नही रहते तथा एक तिहाई होठ खुले रहते हैं जिन से थोड़ी मात्रा में हवा धीरे धीरे निकल सकती है। यह स्मरण रखना चाहिये कि साधारण सांस लेने मे स्वरतंत्रियों का मुँह बिलकुल खुला रहता है तथा खाँसने के पहले या हम्ज़ा के उच्चारण मे यह द्वार बिलकुल बंद हो कर सहसा खुलता है। कानाफूसी मे जो बात-चीत होती है वह फुसफुसाहट वाली ध्वनियों की सहायता से ही होती है।

ब्रज तथा अवधी[2] मे शब्दो के अंत मे फुसफुसाहट वाला अर्थात् अघोष उ़ आता है।

उदा० ब्र० जातउ़, ब्र० आवतउ़; अव० ऊँटउ़, अव० मोरउ़[2]।

२१. ऊ: यह संवृत् दीर्घ पश्च स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग इतने ऊपर उठ जाता है कि कोमल तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। ऊ का उच्चारण स्थान प्रधान स्वर ऊ से कुछ ही नीचा है। उ की अपेक्षा ऊ के उच्चारण मे होठ अधिक जोर के साथ बंद गोल हो जाते हैं।

उदा० ऊपर, मसूर, बालू।

२२. ई: यह संवृत् दीर्घ अग्र स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का अगला भाग इतना ऊपर उठ जाता है कि कठोरतालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। प्रधान स्वर ई की अपेक्षा हिंदी ई का उच्चारण स्थान कुछ नीचा है। ई के उच्चारण में होठ फैले खुले रहते हैं।

---

[1] वा., फ़ो. इं. § ५५।

[2] सक., पृ. अ., § ५७।

उदा० *ईख, अमीर, आती।*

२३. इ : यह संवृत् ह्रस्व अग्र स्वर है। इस का उच्चारण स्थान ई की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा अंदर की ओर है। इस के उच्चारण में फैले हुये होठ ढोले रहते हैं।

उदा० *इस, मिलाप, आदि।*

२४. इ : घोष इ का यह फुसफुसाहट वाला रूप है उच्चारण स्थान की दृष्टि से इन दोनों में कोई भेद नहीं है किंतु इ के उच्चारण मे स्वरतंत्रियाँ घोप ध्वनि नही उत्पन्न करतीं बल्कि फुसफुसाहट वाली ध्वनि उत्पन्न करती हैं। यह स्वर ब्रज तथा अवधी[1] आदि बोलियों में कुछ शब्दों के अंत मे पाया जाता है।

उदा० *आवतइ, अव० गोलइ।*

२५. ए : यह अर्द्धसंवृत् दीर्घ अग्र स्वर है। इसका उच्चारण स्थान प्रधान स्वर ए से कुछ नीचा है। ए के उच्चारण मे होठ ई की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं।

उदा० *एक, अनेक, चले।*

२६. ए : यह अर्द्धसंवृत् ह्रस्व अग्र स्वर है। इसके उच्चारण मे जीभ का अग्रभाग ए की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा बीच की ओर झुका हुआ रहता है। इसका व्यवहार साहित्यिक हिन्दी में तो नही है किन्तु हिन्दी की बोलियों में इसका व्यवहार बराबर मिलता है।

उदा० *अवधेस के द्वारे सकारे गई* (कवितावली, बाल०, १), *अव० ओहि केर बेटवा।*

२७. ए : घोष ए का यह फुसफुसाहट वाला रूप है। इसका उच्चारण स्थान ए के समान ही है भेद केवल घोष ध्वनि और फुस-

---

[1] सक०, ए अ., § ५६।

फुसाहट वाली ध्वनि का है। यह ध्वनि अवधी[1] शब्दों मे मिलती है जैसे, कहेसएु। ब्रजभाषा मे कदाचित् यह ध्वनि नहीं है। साहित्यिक हिन्दी में भी इसका प्रयोग नही पाया जाता।

२८. ऍ : यह अर्द्धविवृत्त दीर्घ अग्र स्वर है। इसका उच्चारण स्थान प्रधान स्वर ऍ से कुछ ऊँचा है। यह स्वर ब्रज की बोली की विशेषताओं मे से एक है। ब्रज मे संयुक्त स्वर ऐ (अए) के स्थान पर यह मूल स्वर ही बोला जाता है।

उदा० ऍसो, कॅसो।

कादरी[2] हिन्दुस्तानी संयुक्त स्वर ऐ को संयुक्त स्वर नहीं मानते हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने ऐब, कैद, जै मे यही मूल स्वर माना है। चैटर्जी[3] ने बंगला ऐ को भी मूल स्वर ही माना है। वास्तव में हिन्दी ऐ साधारणतया संयुक्त स्वर है किन्तु जल्दी बोलने मे कभी कभी मूल ह्रस्वस्वर ऍ के समान इसका उच्चारण हो जाता है। बेली[4] ने पंजाबी भाषा मे ऐ को मूल ह्रस्व स्वर माना है जैसे, पं० पैर, पैले (हि० पहले), शैर (हि० शहर)।

२९. ऍ : यह अर्द्धविवृत्त ह्रस्व अग्र स्वर है। इसके उच्चारण मे जीभ का अग्रभाग ऍ की अपेक्षा कुछ नीचा तथा अन्दर की ओर झुका रहता है। इसका व्यवहार ब्रजभाषा काव्य मे बराबर मिलता है जैसे, *सुत गोद कैं भूपति लै निकसे* (कविता०, बाल०, १)। जैसा ऊपर बताया गया है, हिन्दी संयुक्त स्वर ऐ शीघ्रता से बोलने मे मूल ह्रस्वस्वर ऍ हो जाता है।

---

[1] सक., ए. अ., § ५८।

[2] क़ादरी, हि. फ़ो, § पृ० ५१।

[3] चै., बे. लै., § १४०।

[4] बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XIV.

३०. ॅं : यह अर्द्धविवृत् मध्य ह्रस्वार्द्ध स्वर है और हिन्दी अ से मिलता जुलता है। इसके उच्चारण में जीभ के मध्य का भाग अ की अपेक्षा कुछ अधिक ऊपर उठ जाता है। अंग्रेजी में इसे 'उदासीन स्वर' (neutral vowel) कहते हैं और ə से चिह्नित करते हैं। यह ध्वनि अवधी[1] बोली में पाई जाती है जैसे सोरँहीं रामक। पंजाबी भाषा में[2] यह ध्वनि बहुत शब्दों में सुनाई पड़ती है जैसे, पं० रँईस, वँचारा (हि० विचारा), नौकँर् (हि० नौकर्)।

ख. अनुनासिक स्वर

३१. साहित्यिक हिंदी के प्रत्येक स्वर का अनुनासिक रूप भी पाया जाता है। फुसफुसाहट वाले स्वरों और उदासीन स्वर (ॅं) को छोड़ कर हिंदी बोलियों में आने वाले अन्य विशेष स्वरों के भी प्रायः अनुनासिक रूप होते हैं। मूलस्वरों के समान समस्त अनुनासिक स्वरों का व्यवहार शब्दों में प्रत्येक स्थान पर नहीं मिलता है।

वास्तव में अनुनासिक स्वर को निरनुनासिक स्वर से बिलकुल भिन्न मानना चाहिए क्योंकि इस भेद के कारण शब्दभेद या अर्थभेद या दोनों ही भेद हो सकते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में स्थान वही रहता है किंतु साथ ही कोमल तालु और कौवा कुछ नीचे झुक आता है जिस से मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त हवा का कुछ भाग नासिका विवर में गूंज कर निकलता है। इसी से स्वर में अनुनासिकता आ जाती है।[3]

---

[1] सक., ए. अ., § ४८।

[2] बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XIV.

[3] देवनागरी लिपि में अनुनासिक स्वर को प्रकट करने के लिये स्वर के ऊपर कहीं बिन्दी और कहीं अर्द्धचन्द्र लगाया जाता है। इस पुस्तक में उदाहरणों में अनुनासिक स्वर के ऊपर बराबर बिन्दी का ही प्रयोग किया गया है।

हिंदी की बोलियों मे बुदेली में अनुनासिक स्वरो का प्रयोग अधिक होता है।

३२. नीचे अनुनासिक स्वर उदाहरण सहित दिए गए हैं :-

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त अनुनासिक स्वर

अ · *अगरखा, हसी, गवार।*

आ : *आसू, बास, साचा।*

ओं : *सोंठ, जानवरों, कोसों।*

उ : *घुघची, बुदेली।*

ऊ : *ऊघना, सूघता, गेहू।*

ई : *ईंगुर, सींचना, आई।*

इ : *बिंदिया, सिघाडा, धनिया।*

ए : *गेंद, बातें, में।*

केवल बोलियों में प्रयुक्त अनुनासिक स्वर

ऑं : ब्र० *लौं, सौं* (कविता०, उत्तर०, ३५)।

ऑं · ब्र० *भौंह, हौं* (कविता०, उत्तर०, ४१, ५९)

ऑं : अव० *गौंठिबा*[1] (हि० गांठ मे बाधूगा)।

ए . अव०[2] *एडुआ,* (हि० सर पर मटकी या घडे के नीचे रखने की रस्सी का गोल घेरा) *घेंटुआ* (हि० गला

ऍं : ब्र० *तैं, तैं* (कविता०, उत्तर०, ४४; १२९)।

एँ : ब्र० *तैं, मैं* (कविता०, उत्तर०, ९१; १२८)।

---

[1]सक, ए अ, § ५३।

[2]सक, ए अ, § ५३।

ग. संयुक्त स्वर

३३. हिंदी मे केवल दो संयुक्त स्वरों को लिखने के लिये देवनागरी लिपि मे पृथक् चिह्न हैं। ये ऐ (अए) और औ (अओ) हैं। इन्हीं चिह्नों का प्रयोग ब्रजभाषा मूलस्वर ऍ और ऑ के लिये तथा संस्कृत, हिंदी की कुछ बोलियों और कुछ साहित्यिक हिंदी के रूपों मे पाये जाने वाले अइ और अउ संयुक्त स्वरों के लिये भी किया जाता है। इस पुस्तक मे ऐ औ का प्रयोग क्रम से केवल अए अओ संयुक्त स्वरों के लिये किया गया है।

सिद्धांत की दृष्टि से संयुक्त स्वर[1] के उच्चारण मे मुख अवयव एक स्वर के उच्चारण स्थान से दूसरे स्वर के उच्चारण स्थान की ओर सीधे मार्ग से तेजी से बदलते हैं जिस से सास के एक ही झोंक मे, अवयवों मे परिवर्तन होती हुई अवस्था मे, ध्वनि का उच्चारण होता है। अतः संयुक्त स्वर को दो भिन्न स्वरों का संयुक्त रूप मानना ठीक नही है। संयुक्त स्वर एक अक्षर हो जाता है किंतु निकट आने वाले दो भिन्न स्वर वास्तव मे दो अक्षर हैं। यदि ठीक उच्चारण किया जाय तो ऐ (अए) और अ-ए मे प्रथम संयुक्त स्वर है और दूसरा दो स्वरों का समूह मात्र है।

सच्चे संयुक्त स्वर तथा निकट मे आने वाले दो या अधिक स्वतंत्र मूल स्वरों मे सिद्धांत की दृष्टि से भेद चाहे किया जा सके किंतु व्यवहारिक दृष्टि से दोनों मे भेद करना कठिन है। निकट आने वाले स्वर प्रचलित उच्चारण मे संयुक्त स्वर हो जाते हैं। इसीलिये यहाँ संयुक्त स्वर और स्वर समूह मे भेद नहीं किया गया है—दोनों ही के लिये संयुक्त स्वर शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रचलित लिपि चिह्न ऐ औ के अतिरिक्त अन्य संयुक्त स्वरों के लिये मूल स्वरों का व्यवहार किया गया है।

यदि दो ह्रस्व स्वरों के समूह को सच्चा संयुक्त स्वर माना जाय तो साहित्यिक हिंदी में ऐ (अए), औ (अओ) ही संयुक्त स्वर माने जा सकेंगे।

---

[1] वा, फो. ई, § १६९।

३४. वास्तव मे हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में प्रयुक्त दो स्वरों के संयुक्त रूपों की संख्या बहुत अधिक है। नीचे हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में व्यवहृत संयुक्त स्वर उदाहरण सहित दिये जा रहे हैं।

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त दो स्वरों का संयोग[1]

औ (अओ)	:	औरत, बौनी, सौ।
अई	:	कई, गई, नई।
ऐ (अए)	:	ऐसा, कैसा, बैर।
अए	.	गए, नए, घए (चूल्हे मे रोटी सेकने की जगह)
आओ	:	आओ, खाओ, लाओ।
आऊ	:	घराऊ, खाऊ, नाऊ।
आई	:	आई, काई, नाई।
आए	:	राए, गाए, जाए।
ओई	:	खोई, लोई, कोई।
ओए	:	बोए, खोए, रोए।
ओआ	:	सोआ, खोआ, चोआ।
उआ	:	बुआ, चुआ, जुआ।

---

[1] यहाँ पर यह स्मरण दिला देना अनुचित न होगा कि सयुक्त स्वरो के एक अश में इ, ई, ए या ए होने पर तालव्य अर्द्ध स्वर य् तथा उ, ऊ, ओ या ओ होने पर कंठ्योष्ठ्य अर्द्ध स्वर व् लिखने की प्रथा रही है जैसे, आयी, आये, लिया, वियोग; बुवा, आवो, खोवा, केवडा आदि। उच्चारण की दृष्टि से य् या व् का आना सदिग्ध है इसीलिये इस तरह के समस्त स्वर समूहों को संयुक्त स्वर माना गया है।

उई सुई, चुई, रुई।

उए चुए, कुए, जुए।

इआ लिआ, दिआ, दुनिआ।

इओ विओग, निओग।

इए दिए, लिए, पिए।

एआ खेआ, सेआ, टेआ।

एई खेई, लेई, सेई।

ऊपर के सयुक्त स्वरों के अतिरिक्त कुछ दो स्वरों के सयुक्त रूप विशेष रूप से हिन्दी बोलियों मे ही पाये जाते हैं। ये उदाहरण सहित[1] नीचे दिये जाते हैं।

अओ ब्र० गओ (हि० गया), ब्र० लओ (हि० लिया)।

अउ अव० तउ (हि० तब), अव० सउ (हि० सौ)।

अऊ ब्र० तऊ (हि० तो भी), ब्र० गऊ (हि० गाय)।

अइ ब्र० अइसी (हि० ऐसी), ब्र० जइसी (हि० जैसी)।

आउ ब्र० आउ (हि० आओ), ब्र० मुटाउ (हि० मुटाव)।

आओ ब्र० नाओ (हि० नाव)।

आइ ब्र० आइ (हि० आ), ब्र० जाइ (हि० जावे)।

ओउ अव० धोउना।

ओइ अव० होइहै (हि० होगा), ब्र० सोइ (हि० वह ही)।

ओअ अव० धोअनउ।

ओआ अव० ढोआ।

---

[1] अवधी के समस्त उदाहरण सक्र, ए अ, § ६० से लिये गये हैं।

ओउ अव० होउ (हि० होवे), ब्र० धोउन ।

ओओ ब्र० धोओ (हि० धोया) ।

ओइ अव० होइ (हि० होवे) ।

उअ ब्र० सुअन (हि० तोतों) । ब्र० चुअन (हि० चूने) ।

उइ अव० दुइ (हि० दो) ।

ऊई अव० रूई ।

इअ ब्र० सिअत (हि० सीता) ।

इउ अव० घिउ (हि० घी), ब्र० दिउली (हि० चने के दाने) ।

ईई अव० पिई (हि० पी) ।

एओ ब्र० नेओला, ब्र० केओडा, ब्र० बेओपार (हि० व्यापार) ।

एउ अव० देउ (हि० दो—देना) ।

एओ ब्र० देओ (हि० दो—देना), ब्र० सेओ ।

एइ अव० देइ (हि० दे) ब्र० लेइ (हि० ले) ।

एए अव० खेए चलउ ।

३५. हिन्दी तथा हिन्दी की बोलियों में कुछ तीन संयुक्त स्वर भी मिलते हैं । ये उदाहरण सहित नीचे दिये जा रहे हैं ।

साहित्यिक हिन्दी में प्रयुक्त तीन संयुक्त स्वर

अइआ तइआरी, भइआ, मइआ ।

अउआ कउआ, ब्र० बुलउआ (हि० बुलावा) ।

आइए आइए, गाइए, लाइए ।

इनके अतिरिक्त कुछ तीन-संयुक्त-स्वर विशेष रूप से बोलियों में पाये जाते हैं । ये उदाहरण सहित नीचे दिये जाते हैं ।

अउऐं : ब्र० *गउऐं ।*

अइओं : ब्र० अइओं (हि० आना) ब्र. जइओं (हि० जाना)।

आइउ · अव० आइउ (हि० तुम आई) ।

आएउ : अव० *खाएउ ।*

आइओं : ब्र० आइओं (हि० आना) ब्र० *जाइओं* (हि० जाना)।

ओइआ : अव० लोइआ (हि० लोई—कम्मल) ।

ओएउ : अव० धोएउ (हिं० धोया) ।

उइआ : ब्र० घुइआ ।

इअउ : अव० *जिअउ* (हि० जियो) ।

इआई : ब्र० *सिआई* (हि० सिलाई) ब्र० *पिआई ।*
(हि० पिलाई) ।

इआऊ : ब्र० *पिआऊ ।*

इएउ : अव० *पिएउ* (हि० पिया)।

एएउ : अव० *खेएउ* (हिं० खेया) ।

एइया : अव० *नेइआ ।*

घ. स्पर्श व्यंजन

३६. क़ : आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में इस ध्वनि का व्यवहार केवल फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में किया जाता है। वास्तव में यह विदेशी ध्वनि है। प्राचीन साहित्य में तथा हिन्दुस्तानी जनता में क़ के स्थान पर क हो जाता है। क़ का उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु के पिछले भाग से छुआ कर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, जिह्वामूलीय, स्पर्श व्यंजन है और इसका स्थान जीभ तथा तालु दोनों की दृष्टि से सबसे पीछे है।

उदा० *क़ाबिल, मुक़ाम, ताक़ ।*

३७. क् : क् का उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। प्रा० भा० आ० काल में कवर्ग का उच्चारण कोमलतालु के स्थान की दृष्टि से आजकल की अपेक्षा कदाचित कुछ अधिक पीछे से होता था अतः क् उस समय क़् के कुछ अधिक निकट रहा होगा। इसीलिए कवर्ग का स्थान 'कंठ्य' माना जाता था। आजकल का स्थान कुछ आगे हट आया है।

उदा० *कमला, चकिया, एक ।*

३८. ख् : ख् और क् के उच्चारण स्थान में कोई भेद नहीं है किन्तु यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। ब्रजभाषा अवधी आदि बोलियों में फ़ारसी अरबी संघर्षी ख़् के स्थान पर बराबर स्पर्श ख् हो जाता है।

उदा० *खटोला, दुखड़ा, सुख ।*

३९. ग् : ग् का उच्चारण भी जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर होता है किन्तु यह अल्पप्राण, घोष, स्पर्श व्यंजन है। हिन्दी की बोलियों में फ़ारसी-अरबी ग़् के स्थान पर ग् हो जाता है किन्तु साहित्यिक हिन्दी में यह भेद कायम रक्खा जाता है।

उदा० *गमला, जगह, आग ।*

४०. घ् : घ् का स्थान पिछले कवर्गीय व्यंजनों के समान ही है किन्तु यह महाप्राण, घोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *घर, बघारना, बाघ ।*

४१. ट् : समस्त टवर्गीय ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर उसके नीचे के हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर किया जाता है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार ट् आदि मूर्द्धन्य व्यंजन कहलाते हैं। ट् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। उच्चारण की कठिनाई के कारण ही बच्चे टवर्गीय व्यंजनों का उच्चारण बहुत देर में कर पाते हैं।

कुछ विद्वानों के मत में मूर्द्धन्य व्यंजन ध्वनियें भारत यूरोपीय काल की नहीं हैं बल्कि आर्यों के भारत में आने पर अनार्यों के संपर्क से इनका व्यवहार प्रा० भा० आ० में होने लगा था। जो हो मूर्द्धन्य ध्वनि वाले शब्दों की संख्या वेदों में अपेक्षित रूप से कम अवश्य है। हिन्दी मे ट् का व्यवहार काफ़ी होता है।

उदा० *टीला, काटना, सरपट।*

अङ्गरेजी की ट्, ड् ध्वनियें मूर्द्धन्य नहीं है बल्कि वर्त्स्य हैं अर्थात् ऊपर के मसूड़े पर बिना उलटे हुए जीभ की नोक छुआ कर इनका उच्चारण किया जाता है। हिन्दी में वर्त्स्य ट् ड् (ट्‍ ड्‍) न होने के कारण हिन्दी बोलने वाले इन ध्वनियो को या तो मूर्द्धन्य (ट् ड्) या दन्त्य (त् द्) कर देते हैं।

४२. ठ् : स्थान की दृष्टि से ट् और ठ् मे भेद नहीं है किन्तु ठ् महाप्राण अघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *ठठेरा, कठोर, काठ।*

४३. ड् : ड् का उच्चारण भी जीभ की नोक को उलट कर कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर होता है किन्तु यह अल्पप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *डमरू, गंडेरी, खड।*

४४. ढ् : ढ् महाप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है। इसका प्रयोग हिन्दी में शब्दों के आरम्भ में ही पाया जाता है।

उदा० *ढकना, ढपली, ढग।*

४५. त् : त् का उच्चारण जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर की पंक्ति को छूकर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *ताल, पत्तल, बात।*

४६. थ् : त् और थ् के उच्चारण स्थान में कोई भेद नहीं है किन्तु थ् महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० थोड़ा, सुथरा, साथ।

४७. द् : द् का उच्चारण भी जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर की पंक्ति को छूकर किया जाता है किन्तु द् अल्पप्राण, घोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० दानव, बदन, चाँद।

४८. ध् : ध् का उच्चारण भी अन्य तवर्गीय ध्वनियो के समान ही होता है किन्तु यह महाप्राण, घोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० धान, बधाई, साध।

४९. प् : प् का उच्चारण दोनो होठों को छुआ कर होता है। ओष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ से सहायता बिलकुल नहीं ली जाती। प् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। अन्त्य ओष्ठ्य ध्वनियों मे स्फोट नहीं होता।

उदा० पान, कॉपना, आप।

५०. फ् : प् और फ् का उच्चारण स्थान एक है किन्तु यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० फूल, बफ़ारा।

५१. ब् : ब् का उच्चारण भी दोनों होठों को छुआ कर होता है किन्तु यह अल्पप्राण, घोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० बुनना, साबुन, सब।

५२. भ् : भ् महाप्राण, घोष, ओष्ठ्य, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० भलाई, सभा।

ङ. स्पर्श संघर्षी[1] × 56

५३. च् : च् का उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों

---

[1] ध्वनि सबधी प्रयोग करने के बाद कुछ विद्वान् (दे, चै, बे फो, § १६ ; क़ादरी, हि फो, पृ० ८२ ; सक, ए अ., § १८) इस परिणाम पर पहुँचे

के निकट कठोरतालु से कुछ रगड के साथ छूकर किया जाता है। अत यह स्पर्श संघर्षी ध्वनि मानी जाती है। तालु के स्थान की दृष्टि से चवर्गीय व्यजनो का स्थान टवर्गीय व्यजनों की अपेक्षा आगे की ओर होने लगा है। प्राचीनकाल मे सभवत पीछे को ओर होता था। तभी तो चवर्ग को टवर्ग के पहले रखा जाता था। च् अल्प प्राण, अघोष, स्पर्श सघर्षी व्यजन है।

उदा० *चन्दन*, *कचौडी*, *सच*।

५४. छ् : च और छ् का स्थान एक ही है किन्तु छ् महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यजन है।

उदा० *छीलना*, *कछुआ*, *कच्छ*।

५५. ज् ज् का उच्चारण भी जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूडों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड के साथ छूकर किया जाता है। किन्तु ज अल्पप्राण, घोष, स्पर्श सघर्षी व्यजन है।

उदा० *जगह*, *गरजना*, *साज*।

५६. झ् झ का स्थान भी अन्य चवर्गीय ध्वनियो के समान ही है किन्तु यह महाप्राण, घाष, स्पर्श सघर्षी व्यजन है।

उदा० *झकोरा*, *उलझना*, *बाझ*।

है कि भारतीय आधुनिक चवर्गीय ध्वनियें शुद्ध स्पर्श न होकर स्पर्श सघर्षी व्यजन हैं। मेरी समझ में इस सबध में एक दो से अधिक हिन्दी बोलने वालो पर प्रयोग करके देखने की आवश्यक्ता है, तभी ठीक निर्णय हो सकेगा। अब तक की खोज के आधार पर यहाँ चवर्गीय ध्वनियो को स्पर्श सघर्षी मान लिया गया है। बली ने पजाबी च् ज् को स्पर्श सघर्षी न मान कर स्पर्श व्यजन माना है (बेली, पजाबी फोनेटिक रीडर, पृ० XI)। सभव है कि भारतीय चवर्गीय ध्वनियो को स्पर्श सघर्षी समझने में कुछ प्रभाव अग्रेजी च् ज् ध्वनियो का भी हो। अगरेजी च् ज् अवश्य स्पर्श संघर्षी हैं।

च. अनुनासिक

५७. ङ् : ङ का उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर होता है किन्तु उसके उच्चारण मे कोमल तालु कौवा सहित नीचे को झुक आता है। जिससे कुछ हवा हलक के नाक के छिद्रों मे होकर निकलते हुये नासिका विवर मे गूँज पैदा कर देती है। कोमल तालु के नीचे झुक आने के कारण समस्त अनुनासिक व्यंजनों के उच्चारण में जीभ निरनुनासिक व्यंजनों की अपेक्षा तालु के कुछ अधिक पिछले भाग को छूती है। निरनु-नासिक स्पर्श व्यंजनो के उच्चारण मे कौवा सहित कोमलतालु कुछ पीछे को हटा रहता है जिससे हलक के नासिका के छिद्र बन्द रहते हैं। ङ् घोष, अल्पप्राण, कंठ्य, अनुनासिक ध्वनि है।

स्वर सहित ङ् हिन्दी मे नही पाया जाता। शब्दों के आदि या अन्त मे भी इस का व्यवहार नहीं होता। शब्दों के बीच में कवर्ग के पहले ही ङ् सुनाई पड़ता है। देवनागरी लिपि मे ङ् तथा समस्त अन्य पंचम अनु॰ नासिक व्यंजनों के लिए अब प्रायः अनुस्वार लिखा जाता है।

उदा० अंक, कंघा, बंगू।

५८. ञ् ञ् घोष, अल्पप्राण, तालव्य, अनुनासिक ध्वनि है। ञ ध्वनि साहित्यिक हिन्दी के शब्दों में नहीं पायी जाती। साहित्यिक हिन्दी में चवर्गीय ध्वनियों के पहले आने वाले अनुनासिक व्यंजन का उच्चारण न के समान होता है। सं० चञ्चल, कञ्ज आदि का उच्चारण हिन्दी मे *चन्चल*, *कन्ज* की तरह होता है। अवधी[1] में यह ध्वनि बतलायी जाती है किन्तु जो उदाहरण दिये गये हैं (*तमचा*, पजा, *संझा*) उनमें इस ध्वनि का होना संदिग्ध है। ब्रज की बोली में *नाञ्* (हि० नहीं) *साञ्*, *साञ्* (विशेष प्रकार की आवाज) आदि

---

[1] सक., ए. अ., § २७।

शब्दों में ञ् की सी ध्वनि सुनाई पड़ती है। यह ञ् भी अनुनासिक य् अर्थात् यँ से बहुत मिलता जुलता है।

५९. ण् : ण् अल्पप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, अनुनासिक व्यंजन है। अनुनासिक होने के कारण इस का उच्चारण निरनुनासिक मूर्द्धन्य व्यंजनों की अपेक्षा कठोर तालु पर कुछ अधिक पीछे की ओर उलटी जीभ की नोक छुआ कर होता है। स्वर सहित यह ध्वनि हिंदी में केवल तत्सम संस्कृत शब्दों में मिलती है और उन में भी शब्दों के आदि में नहीं पाई जाती।

उदा० *गुण, परिणाम, चरण।*

हिंदी मे व्यवहृत संस्कृत शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व हलन्त ण् का उच्चारण न् के समान हो गया है। जैसे सं० *पण्डित, कण्टक* आदि शब्दों का उच्चारण हिंदी में *पन्डित, कन्टक* की तरह होता है। अर्द्धस्वरों के पहले हलंत ण् ध्वनि रहती है, जैसे *कण्व, पुण्य* आदि। हिंदी की बोलियों में ण् ध्वनि का व्यवहार बिलकुल भी नही होता है। ण् के स्थान पर बराबर न् हो जाता है जैसे *चरन, गनेस, गुन*। वास्तव में हिंदी ण् का उच्चारण ड़्ँ से बहुत मिलता जुलता होता है।

६०. न् : न् अल्पप्राण, घोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन है। इस के उच्चारण में जीभ की नोक दंत्य स्पर्श व्यंजनों के समान दाँतों की पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूड़ों को छूती है। अतः प्राचीन प्रथा के अनुसार न् को दंत्य मानना ठीक नहीं है। यह वास्तव में वर्त्स्य है।

उदा० *निमक, बन्दर, कान।*

६१. न्ह् : न्ह् महाप्राण, घोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन है। हिंदी में इसे मूल ध्वनि नही माना जाता रहा है किंतु आधुनिक विद्वान्[1] इसे संयुक्त

---

[1] क़ादरी, हिं. फो., पृ० ८९।
सक., पृ. अ., § २९।

व्यंजन न मान कर घ्, ध्, भ् आदि की तरह मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं।

उदा० *उन्होंने*, *कन्हैया*, *जिन्होंने* ।

६२. म् म् का उच्चारण भी ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों होठों को छुआ कर होता है किन्तु इसके उच्चारण मे अन्य अनुनासिक व्यंजनों के समान कुछ हवा हलक के नाक के छिद्रों मे होकर नासिका विवर में गूँज उत्पन्न करती है। म् अल्पप्राण, घोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है।

उदा० *माता*, *कमाना*, *आम* ।

६३. म्ह् म्ह् महाप्राण, घोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यजन है। न्ह् के समान इसे भी आधुनिक विद्वान्[1] सयुक्त व्यजन न मान कर मूल महाप्राण व्यजन मानते हैं।

उदा० *तुम्हारा*, *कुम्हार*, अव० *बम्हा* (हि० *ब्रह्मा*)

ङ. पार्श्विक ६५ ×

६४. ल् · ल् के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है किन्तु साथ ही जीभ के दाहिने बाये जगह छूट जाती है जिसके कारण हवा पार्श्वों से निकलती रहती है। इसीलिये ल् ध्वनि देर तक कही जा सकती है। ल् पार्श्विक, अल्पप्राण, घोष, वर्त्स्य ध्वनि है। ल् ध्वनि का उच्चारण र् के स्थान से ही होता है किन्तु इसका उच्चारण र् की अपेक्षा सरल है इसीलिये आरम्भ मे बच्चे र् की जगह ल् बोलते हैं।

उदा० *लाभ*, *खलना*, *बाल* ।

६५. ल्ह् यह ल् का महाप्राण रूप है। बोलियों मे इसका

---

[1] क़ादरी, हि फा, पृ० ८७।
सक, ए अ, § २८।

प्रयोग बराबर मिलता है। न्ह्, म्ह् की तरह इसे भी अन्य महाप्राण व्यजनों के समान माना गया है।[1]

उदा० ब्र० *सल्हा* (हि० सलाह), अव० *पल्हावब्*, ब्र० *काल्हि* (हि० कल)।

ज. लुठित

६६. र् र् के उच्चारण मे जीभ की नोक दो तीन बार वर्त्स या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से छूती है। र् लुठित, अल्पप्राण, वर्त्स्य, घोष ध्वनि है। बच्चों को इस तरह जीभ रखने में बहुत कठिनाई पड़ती है इसी लिये बच्चे बहुत दिनों तक र् का उच्चारण नहीं कर पाते।

उदा० *राम*, *चरण*, *पार*।

६७. र्ह् यह र् का महाप्राण रूप है। बोलियों में इसका प्रयोग बराबर होता है। यह ध्वनि शब्द के मध्य में ही मिलती है। ल्ह आदि के समान र्ह् भी मूल ध्वनि[2] मानी जाती है।

उदा० ब्र० *कर्हानो* (हि० कराहना), अव० *अर्ही* (हि० अरहर)।

झ. उत्क्षिप्त

६८. ड़् ड़् का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर नीचे के हिस्से से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है। ड़् न तो ड् की तरह स्पर्श ध्वनि है और न र् की तरह लुठित ध्वनि है। ड़् अल्पप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। हिन्दी में यह नवीन ध्वनियों में

---

[1] कादरी, हि फो, पृ० ९०।
सक, ए अ § ३६।
[2] कादरी, हि फो, पृ० ९२।
सक, ए अ, § ३३।

से एक है। ड़् शब्दों के मध्य या अन्त में प्राय दो स्वरों के बीच में ही आता है।

उदा० पेड़, बड़ा, गड़बड़।

६९. ढ़् ट और ढ का उच्चारण स्थान एक ही है किंतु ढ़् महाप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। ढ़् वास्तव मे ड़् का रूपान्तर है ढ् का नही। यह ध्वनि भी हिंदी मे नवीन है और शब्दों के मध्य या अंत में प्राय दो स्वरों के बीच मे पाई जाती है।

उदा० बढ़िया, बूढ़ा, बढ़।

ञ. संघर्षी ५६

७०. ह् विसर्ग या अघोष ह्–ह्–के उच्चारण में जीभ और तालु अथवा होंठों की सहायता बिलकुल नही ली जाती। हवा को अन्दर से जोर से फेंक कर मुख द्वार के खुले रहते हुए स्वर यत्र के मुख पर रगड़ उत्पन्न कर इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। विसर्ग या ह और अ के उच्चारण में मुख के समस्त अवयव समान रहते हैं, भेद केवल इतना होता है कि अ के उच्चारण मे हवा जोर से नही फेंकी जाती और विसर्ग के उच्चारण मे हवा जोर से फेंकी जाती है। साथ ही विसर्ग अ के समान घोष ध्वनि नहीं है। विसर्ग वास्तव मे अघोष ह्–ह्–मात्र है अत इसे स्वरयत्रमुखी, अघोष, संघर्षी ध्वनि कह सकते है।

हिंदी मे विसर्ग का प्रयोग थोड़े से संस्कृत तत्सम शब्दों मे होता है। हिंदी के शब्दों में छः शब्द तथा छिः, आदि विस्मयादि बोधक शब्दों से भी इस का व्यवहार मिलता है। दुःख शब्द मे विसर्ग (प्रा० भा० आ० का जिह्वामूलीय) लिखा तो जाता है लेकिन इस का उच्चारण क के समान होता है। ख् (क्+ह्) ठ् (ट्+ह्), आदि अघोष महाप्राण व्यजनों में भी विसर्ग या ह् ही पाया जाता है।

उदा० *पुनः, प्रायः, छः* ।

७१. *ह्* ह् और विसर्ग या ह् का उच्चारण स्थान एक ही है भेद केवल इतना है कि विसर्ग अघोष ध्वनि है और ह् घोष ध्वनि है। शब्द के अंत मे आने वाला ह्[1] घोष रहता है, जैसे *यह, वह, आह* । शब्द के आदि मे आने वाले ह् के घोष होने मे मतभेद है[2]। घ् (ग्+ह्) ह् (ड्+ह्) आदि घोष महाप्राण व्यजनों में घोष ह् पाया जाता है। ह् स्वरयंत्रमुखी, घोष, सवर्षी ध्वनि है।

उदा० *हाथी, कहता, साहूकार* ।

७२. *ख़्* ख् का उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु से लगा कर किया जाता है किंतु इस के उच्चारण मे हलक का दरवाजा बिलकुल बन्द नही किया जाता अतः हवा रगड़ खा कर निकलती रहती है। क् के समान स्पर्श ध्वनि न हो कर ख़् जिह्वामूलीय, अघोष, संघर्षी ध्वनि है अतः ख़् आदि स्पर्श व्यंजनों के साथ इसे रखना ठीक नही है। ख़् ध्वनि हिंदी में फारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है। यह भारतीय आर्य भाषा की ध्वनि नही है। कौवे के निकट से बोली जाने वाली प्राचीन ध्वनियें हिंदी मे नहीं थी अतः हिंदी बोलियों मे ख़् के स्थान पर प्रायः ख् का उच्चारण किया जाता है।

उदा० *ख़राब, बुख़ार, बलख़* ।

७३. *ग़्* : ख़् और ग़् के उच्चारण स्थान एक ही हैं। ग़् भी जिह्वा-मूलीय, संघर्षी ध्वनि है किंतु यह अघोष न हो कर घोष है। ग़् भी भारतीय आर्य भाषा की ध्वनि नहीं है और फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही पाई जाती है। उच्चारण की दृष्टि से ग़् को ग् का रूपान्तर समझना भूल है

[1]सक., ए. अ., ३९।

[2]सक., ए अ., ३८; क़ादरी, हि फो., पृ० ९९।

यद्यपि हिंदी बोलियों में ग़् के स्थान पर प्रायः ग् का ही प्रयोग किया जाता है।

उदा० ग़रीब, चोग़ा, दाग़।

१४. श् : श् का उच्चारण जीभ की नोक को कठोर तालु को रगड के साथ छूकर किया जाता है। श् अघोष, संघर्षी, तालव्य ध्वनि है। यह ध्वनि प्राचीन है और फारसी-अरबी तथा अंग्रेजी आदि से आये हुए विदेशी शब्दों में भी मिलती है। हिंदी बोलियो मे श् के स्थान पर प्रायः स् का उच्चारण होता है।

उदा० शब्द, पशु, वश; शायद, पश्मीना; शेयर (Share)।

१५. स् : स् का उच्चारण जीभ की नोक से वर्त्स स्थान को रगड के साथ छूकर किया जाता है। स् वर्त्स्य, संघर्षी, अघोष ध्वनि है।

उदा० सेना, कसना, पास।

१६. ज़् : ज़् और स् का उच्चारण स्थान एक ही है अर्थात् ज़् भी वर्त्स्य, संघर्षी ध्वनि है किंतु यह स् की तरह अघोष न हो कर घोष है। अतः वास्तव मे ज़् स्पर्श ज् का रूपान्तर न होकर स् का रूपान्तर है। ज़् भी विदेशी ध्वनि है और फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है। हिंदी बोलियों मे ज़् के स्थान पर ज् हो जाता है।

उदा० ज़ालिम, ग़ुज़र, बाज़।

१७. फ़् : फ़् का उच्चारण नीचे के होंठ को ऊपर की दांतो की पंक्ति से लगाकर किया जाता है साथ ही होंठों और दांतों के बीच से रगड़ के साथ हवा निकलती रहती है। फ़् दन्त्योष्ठ्य, संघर्षी, अघोष ध्वनि है। ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से फ् को स्पर्श फ् का रूपान्तर मानना उचित नही है। फ़् भी हिन्दी में विदेशी ध्वनि है और फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों मे ही व्यवहृत होती है। हिन्दी बोलियों मे इसका स्थान फ् ले लेता है क्योंकि यह हिन्दी की प्राचीन प्रचलित ध्वनियों मे फ़् के निकटतम है।

उदा० फ़ारसी, साफ़, बर्फ़।

१८. व् : व् का उच्चारण भी नीचे के होंठ को ऊपर के दांतो से

लगा कर किया जाता है, साथ ही होठ और दांतों के बीच से रगड़ खा कर कुछ हवा निकलती रहती है। व् दन्त्योष्ठ्य, संघर्षी घोष ध्वनि है[1]। व् की अपेक्षा व् ध्वनि सरल है। हिन्दी की बोलियों मे व् के स्थान पर प्रायः ब् का ही उच्चारण होता है। व् प्राचीन ध्वनि है। हिन्दी में व्यवहृत विदेशी शब्दों में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

उदा० *वन, चावल, यादव, वलवला।*

ट. अर्द्धस्वर

७९. य् : य् का उच्चारण जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जा कर किया जाता है किन्तु जीभ न चवर्गीय ध्वनियों के समान तालु को अच्छी तरह छूती ही है और न इ आदि तालव्य स्वरों के समान दूर ही रहती है। अत य् को अन्तस्थ या अर्द्धस्वर अर्थात् व्यंजन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जाता है। जीभ को इस तरह तालु के निकट रखना कठिन है इसीलिये हिन्दी बोलियों मे प्रायः य् के स्थान पर शब्द के आरम्भ में प्राय. ज् हो जाता है। य् तालव्य, घोष, अर्द्धस्वर है। य् का उच्चारण एऋ से मिलता जुलता होता है।

उदा० *यम, नियम, आय।*

८०. .व् व् जब शब्द के मध्य मे हलन्त व्यजन के बाद आता है तो इसका उच्चारण दन्त्योष्ठ्य न होकर द्वयोष्ठ्य हो जाता है। किन्तु ब् के उच्चारण की तरह दोनो होठ बिलकुल बन्द नही किये जाते और न संघर्ष ही होता है। .व् के उच्चारण मे जीभ का पिछला भाग भी कोमल

---

[1] क़ादरी ने (हि० फो, पृ० ९४) महाप्राण व् अर्थात् व्ह् का उल्लेख भी किया है। व् के बाद यदि स्वर+ह् हो तो तेज बोलने में स्वर के लुप्त हो जाने से व् का उच्चारण व्ह् के समान हो जाता है। जैसे वहाँ > व्हाँ; वही > व्ही। हिन्दी में अभी महाप्राण व् का उच्चारण स्थायी रूप से नहीं होता है।

तालु की तरफ उठता है किन्तु कोमल तालु को स्पर्श नहीं करता। व् कण्ठ्योष्ठ्य, घोष, अर्द्धस्वर है। हिन्दी बोलियों[1] में भी यह ध्वनि विशेष रूप से पाई जाती है। व् का उच्चारण ऑ्व से मिलता जुलता होता है।

उदा० *क्वारा, स्वाद, स्वर।*

८१. ऊपर वर्णित समस्त ध्वनियों का वर्गीकरण कोष्ठक में विस्तार से किया गया है। आशा है प्रत्येक हिन्दी ध्वनि के ठीक रूप को तथा ध्वनियों के आपस के भेद को समझने में यह वर्गीकरण विशेष रूप से सहायक होगा।

---

[1] सक, ए अ, § ४१।

अध्याय २

हिंदी ध्वनियों का इतिहास

८२. पिछले अध्याय में साहित्यिक हिन्दी तथा हिन्दी की बोलियों में पाई जाने वाली समस्त ध्वनियों का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। इस अध्याय में आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में प्रयुक्त ध्वनियों का इतिहास देने का यत्न किया जायगा। बोलियों में प्रयुक्त विशेष ध्वनियों के संबंध मे ऐतिहासिक सामग्री की कमी के कारण बोली वाली ध्वनियों का इतिहास नहीं दिया जा सका है। फारसी-अरबी तथा अंग्रेजी से आई हुई विशेष ध्वनियों का उल्लेख भी नहीं किया गया है क्योंकि इन का इतिहास स्पष्ट ही है। हिन्दी में आने पर विदेशी शब्दों तथा उन में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों की विस्तृत समीक्षा अगले अध्याय में की गई है। इस अध्याय में प्राचीन भारतीय आर्य ध्वनियों के उद्गम से आई हुई ध्वनियों पर ही विचार किया गया है।

ध्वनि संबंधी परिवर्तनों को दिखलाने के लिये तत्सम शब्दों से बिलकुल भी सहायता नहीं मिलती है। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। क्योंकि ध्वनियों के इतिहास का अध्ययन केवल तद्भव शब्दों में ही हो सकता है अतः इस अध्याय के उदाहरण के अंशों में प्रायः ऐसे शब्द दिखलाई पड़ेंगे जिन का प्रयोग साहित्यिक हिन्दी की अपेक्षा हिन्दी की बोलियों मे विशेष रूप से होता है। केवल मात्र बोलियों

में प्रयुक्त शब्दों का निर्देश कर दिया है। इस अध्याय का समस्त विवेचन हिन्दी ध्वनि समूह के दृष्टिकोण से है अतः उदाहरणों[1] में आधुनिक काल से पीछे की ओर जाने का यत्न किया गया है—पहले हिन्दी का रूप दिया गया है और उसके सामने संस्कृत का तत्सम रूप दिया गया है। बहुत कम शब्दों के निश्चित प्राकृत रूप मिलने के कारण प्राकृत उदाहरण बिलकुल ही छोड़ दिये गये हैं। इस कारण ध्वनि परिवर्तन की मध्य अवस्था सामने नहीं आ पाती किन्तु इस कठिनाई को दूर करने का अभी कोई उपाय नहीं था। स्थानाभाव के कारण ध्वनि परिवर्तनों पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सका है। तुलनात्मक ढंग से केवल संस्कृत और हिन्दी रूप देकर ही संतोष करना पड़ा है। हिंदी ध्वनियों के इतिहास में संस्कृत से नियमित अथवा अपवाद स्वरूप से आने वाली ध्वनियों का भेद नहीं दिखलाया जा सका है। इन सब त्रुटियों के रहते हुये भी विषय का विवेचन मौलिक ढंग से किया गया है और कदाचित् हिन्दी में अपने ढंग का पहला है।

अ. स्वर-परिवर्तन संबंधी कुछ साधारण नियम

८३. संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपों में ध्वनि संबंधी परिवर्तन बहुत हुए हैं किन्तु हिंदी तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में आने पर इस तरह के परिवर्तन अपेक्षाकृत कम पाये जाते हैं। संस्कृत शब्दों के स्वर हिन्दी में आने पर प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं यद्यपि बहुत से उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिन में स्वर परिवर्तन हो जाता है। वास्तव में हिन्दी में आने पर संस्कृत के स्वरों में अनेक प्रकार के परिवर्तन पाये जाते हैं। स्वरों का एक दूसरे में परिवर्तित हो जाना साधारण बात है। ये परिवर्तन एक ही स्वर के ह्रस्व और दीर्घ रूपों में भी पाये जाते हैं तथा भिन्न स्थान वाले स्वरों में भी आपस

---

[1] उदाहरण इकट्ठे करने में बी., क. मै. तथा चै., बे. डै. से विशेष सहायता ली गई है।

मे पाये जाते हैं। हिन्दी के दृष्टि कोण से इन परिवर्तनों के पर्याप्त उदाहरण आगे दिये गये हैं।

८४. बीम्स[1] आदि विद्वानों ने भारतीय आर्य भाषाओं के स्वर परिवर्तनो के संबंध में कुछ साधारण नियम दिये हैं किन्तु ये व्यापक सिद्ध नियम नहीं समझे जा सकते। इन में से उदाहरण स्वरूप कुछ मुख्य नियम नीचे दिये जाते हैं:—

(१) संस्कृत शब्दों का अन्तिम स्वर म० भा० आ० काल के अन्त तक चला था बल्कि कुछ कुछ तो आधुनिक काल के आरम्भ में भी पाया जाता था। म० भा० आ० काल के अन्त में दीर्घ स्वर —आ, —ई, —ऊ धीरे धीरे —अ, —इ, —उ मे परिवर्तित हो गये थे और —ए, —ओ का परिवर्तन —इ —उ मे हो गया था। इन दीर्घ तथा संयुक्त से ह्रस्व हुये स्वरों और मूल ह्रस्व स्वरों में कोई भेद नही रह सका। आ० भा० आ० में शब्दों के अन्त में ये ह्रस्व स्वर कुछ दिनो रहे किन्तु धीरे धीरे इन का भी लोप हो गया। अब हिन्दी के तद्भव शब्द उच्चारण की दृष्टि से बहुत संख्या मे व्यंजनान्त हो गये हैं। लिखने में यह परिवर्तन अभी साधारणतया नहीं किया जाता है। हिन्दी की कुछ बोलियो में अन्त्य —अ, —इ, आदि का उच्चारण कुछ कुछ प्रचलित है।[2]

(२) गुण वृद्धि परिवर्तन संस्कृत में पाये जाते हैं। प्राकृत मे इन परिवर्तनों का अभाव है अतः आ० भा० आ० में भी ये प्रायः नहीं पाये जाते। किन्तु हिन्दी में संधि के पूर्व के इ उ ह्रस्व स्वर कभी कभी दीर्घ में न बदल कर कदाचित् ए ओ होकर अन्त में गुण (ए ओ) में बदल जाते हैं:—

---

[1] बी, क ग्रै, भा० १, अ० २।
   चै, बे लै, § १४८।

[2] ध्वनि संबंधी प्रयोगों के बाद सकसेना (ए अ § ५४, ५५) इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि अवधी में ये अन्त्य स्वर केवल फुसफुसाहट वाले हैं।

कोढ < कुष्ठ

कोख < कुक्षि

बेल < बिल्व

सुम < शिम्बा

तत्सम शब्दों को छोड कर हिन्दी मे तद्भव शब्दों मे वृद्धि स्वरों (ऐ, औ) का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ऐ औ प्राय ए, ओ में परिवर्तित हो जाते हैं —

केवट < कैवर्त्त

गेरू < गैरिक

गोरा < गौर

(३) ऋ का उच्चारण कदाचित् सस्कृत मे ही शुद्ध मूल स्वर के समान नहीं रह गया था। प्राकृत मे तो ऋ मिलती ही नहीं, इस के स्थान मे अ इ उ आदि कोई अन्य स्वर हो जाता है। कुछ प्राकृत शब्दों मे रि या रु रूप भी मिलते हैं। हिंदी तत्सम शब्दो में ऋ का उच्चारण रि के समान होता है। तद्भव शब्दों मे ऋ किसी अन्य स्वर मे परिवर्तित हो जाती है। इन परिवर्तनो के उदाहरण आगे दिये गये हैं। नीचे दिये हुए समस्त ध्वनि परिवर्तन एक तरह से अपवाद स्वरूप हैं। साधारण नियम यही है कि सस्कृत शब्दो के स्वर हिंदी मे प्राय ज्यों के त्यों रहते हैं।

आ. हिंदी स्वरों का इतिहास

८५. हिंदी के एकएक स्वर को लेकर नीचे यह दिखलाने का यत्न किया गया है कि यह किन किन सस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है। उदाहरणों में पहले हिंदी का शब्द दिया गया है तथा उस के आगे उस शब्द का सस्कृत पूर्व रूप दिया गया है। बहुत से हिंदी शब्द प्राकृत काल के बाद संस्कृत से सीधे लिये गये थे अत उन के वर्तमान रूप प्राकृत रूपों से विक

मे पाये जाते हैं। हिन्दी के दृष्टि कोण से इन परिवर्तनों के पर्याप्त उदाहरण आगे दिये गये हैं।

८४. बीम्स[1] आदि विद्वानों ने भारतीय आर्य भाषाओं के स्वर परिवर्तनों के संबंध मे कुछ साधारण नियम दिये हैं किन्तु ये व्यापक सिद्ध नियम नहीं समझे जा सकते। इन में से उदाहरण स्वरूप कुछ मुख्य नियम नीचे दिये जाते हैं:—

(१) संस्कृत शब्दों का अन्तिम स्वर म० भा० आ० काल के अन्त तक चला था बल्कि कुछ कुछ तो आधुनिक काल के आरम्भ में भी पाया जाता था। म० भा० आ० काल के अन्त में दीर्घ स्वर—आ, —ई, —ऊ धीरे धीरे—अ, —इ, —उ में परिवर्तित हो गये थे और —ए, —ओ का परिवर्तन —इ —उ में हो गया था। इन दीर्घ तथा संयुक्त से ह्रस्व हुये स्वरों और मूल ह्रस्व स्वरों में कोई भेद नहीं रह सका। आ० भा० आ० मे शब्दों के अन्त में ये ह्रस्व स्वर कुछ दिनो रहे किन्तु धीरे धीरे इन का भी लोप हो गया। अब हिन्दी के तद्भव शब्द, उच्चारण की दृष्टि से, बहुत संख्या मे, व्यंजनान्त हो गये हैं। लिखने में यह परिवर्तन अभी साधारणतया नहीं किया जाता है। हिन्दी की कुछ बोलियो में अन्त्य —अ, —इ, आदि का उच्चारण कुछ कुछ प्रचलित है।[2]

(२) गुण वृद्धि परिवर्तन संस्कृत में पाये जाते हैं। प्राकृत मे इन परिवर्तनों का अभाव है अतः आ० भा० आ० में भी ये प्रायः नहीं पाये जाते। किन्तु हिन्दी मे संधि के पूर्व के इ उ ह्रस्व स्वर कभी कभी दीर्घ मे न बदल कर कदाचित् ए ओ होकर अन्त में गुण (ए ओ) में बदल जाते हैं:—

---

[1] बी, क ग्रै, भा० १, अ० २।
चै, ग्रे है, § १४८।

[2] ध्वनि संबंधी प्रयोगों के बाद सकसेना (ए अ § ५४, ५५) इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि अवधी में ये अन्त्य स्वर केवल फुसफुसाहट वाले हैं।

कोढ़ < कुष्ठ

कोख < कुक्षि

बेल < बिल्व

सेम < शिम्बा

तत्सम शब्दों को छोड़ कर हिन्दी में तद्भव शब्दों मे वृद्धि स्वरों (ऐ, औ) का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ऐ औ प्रायः ए, ओ मे परिवर्तित हो जाते हैं:—

केवट < कैवर्त्त

गेरू < गैरिक

गोरा < गौर

(३) ऋ का उच्चारण कदाचित् संस्कृत मे ही शुद्ध मूल स्वर के समान नहीं रह गया था। प्राकृत में तो ऋ मिलती ही नहीं, इस के स्थान मे अ इ उ आदि कोई अन्य स्वर हो जाता है। कुछ प्राकृत शब्दों मे रि या रु रूप भी मिलते हैं। हिंदी तत्सम शब्दों मे ऋ का उच्चारण रि के समान होता है। तद्भव शब्दों में ऋ किसी अन्य स्वर में परिवर्तित हो जाती है। इन परिवर्तनों के उदाहरण आगे दिये गये हैं। नीचे दिये हुए समस्त ध्वनि परिवर्तन एक तरह से अपवाद स्वरूप हैं। साधारण नियम यही है कि संस्कृत शब्दों के स्वर हिंदी में प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं।

आ. हिंदी स्वरों का इतिहास

८५. हिंदी के एकएक स्वर को लेकर नीचे यह दिखलाने का यत्न किया गया है कि यह किन किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है। उदाहरणों मे पहले हिंदी का शब्द दिया गया है तथा उस के आगे उस शब्द का संस्कृत पूर्व रूप दिया गया है। बहुत से हिंदी शब्द प्राकृत काल के बाद संस्कृत से सीधे लिये गये थे अतः उन के वर्तमान रूप प्राकृत रूपों से विक-

सित नहीं हुये हैं। ऐसे शब्दों की ध्वनियों के अध्ययन में प्राकृत रूपों से विशेष सहायता नहीं मिल सकती। तो भी ध्वनियों के इतिहास के अध्ययन में प्राकृत रूप कुछ न कुछ साधारण सहायता अवश्य देते हैं। कुछ नहीं तो इतना बात तो निश्चित हो ही जाती है कि अमुक हिंदी शब्द प्राचीन तद्भव है अर्थात् प्राकृत भाषाओं से होकर आया हुआ है, अथवा आधुनिक तद्भव है अर्थात् प्राकृत काल के बाद का आया हुआ है। क्योंकि प्राकृत साहित्य परिमित है अतः प्रत्येक हिंदी शब्द का प्राकृत रूप मिल सके यह आवश्यक नहीं है। अनुमान के आधार पर प्राकृत रूप गढ़े जा सकते हैं किंतु ऐसे रूपों से ठीक निर्णय पर पहुँचना संभव नहीं है। इन्हीं कठिनाइयों के कारण, जैसा ऊपर निर्देश किया जा चुका है, इस अध्याय में प्राकृत शब्दों के देने का प्रयास ही नहीं किया गया है। प्रायः एक ही शब्द में अनेक ध्वनि परिवर्तन हुये हैं अतः एक ही शब्द कभी कभी कई स्थलों पर उदाहरण स्वरूप मिलेगा। प्रत्येक स्थल पर उस शब्द में पाये जाने वाले निर्दिष्ट ध्वनि-परिवर्तन पर ही ध्यान देना उचित होगा।

क. मूलस्वर

८६. हि० अ[1].

सं० अ: पहर	प्रहर
थन	स्तन
थल	स्थल
सं० आ: अचरज	आश्चर्य
महगा	महार्घ
मंजन	मार्जन

[1]अन्त्य अ का उच्चारण साहित्यिक हिंदी में प्रायः नहीं होता किन्तु बोलियों में यह कुछ कुछ अब भी चला जाता है। इन उदाहरणों में अन्त्य अ का होना मान लिया गया है।

सं० इ : बादल — वारिद

भवूत — विभूति

सं० ई :

गाभिन	गर्भिणी
गहरा	गभीर
पाकड़	पर्कटी

सं० उ :

कबरा	कर्बुर
चोंच	चंचु
बूंद	बिंदु

सं० ऋ :

मरा	मृत
घर[1]	गृह

८१. हि० आ :

सं० आ :

आम	आम्र
आस	आशा
थान	स्थान

---

[1] टर्नर (दे., नेपाली डिक्शनरी पृ० १५४) हि० घर की व्युत्पत्ति सं० गृह से न मान कर भा० यू० घ्ँगो (अर्थ-अग्नि, गरमी, घर में अग्नि का स्थान) से मानते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह संभावित रूप मात्र है।

सं० अ :

काम	कर्म
बकरा	बर्कर
मंहगा	महार्घ

सं० ऋ :

सांकर	शृंखला
कान्ह	कृष्ण
नाच	नृत्य

८८. हि० ओ :

सं० ओ :

घोड़ा	घोटक
कोइल	कोकिल
होंठ	ओष्ठ

सं० अ :

चोंच	चंचु
नोन (बो०)	लवण
पोहे (बो०)	पशु

सं० उ :

पोखर	पुष्कर
कोख	कुक्षि
कोढ़	कुष्ठ

सं० औ :

गोरा	गौर
मोती	मौक्तिक
झोली	झौलिक

८९. हि० उ :

सं० उ :

कुंजी	कुंचिका
उजला	उज्वल
खुर	क्षुर

सं० अ :

उंगली	अंगुली
पुआल	पलाली
खुजली	खर्जू

सं० ऊ :

महुआ	मधूक
सुई	सूचिका

सं० ऋ :

मुआ (ब्र०)	मृत
सुरत (ब्र०)	स्मृति

सं० व :

सुर	स्वर
तुरंत	त्वरित

८८. हि० ऊ :

सं० ऊ :

ऊन	ऊर्ण
रूखा	रूक्षक

सं० श्र :

मूंछ	श्मश्रु

सं० इ :

बूंद	बिन्दु
ऊख	इक्षु
बिच्छू	वृश्चिक

सं० उ :

मूसल	मुषल
बालू	बालुका

सं० ऋ :

बूढा	वृद्ध
रूख (ब्र०)	वृक्ष
पूछे	पृच्छति

८९. हि० ई :

सं० ई :

पानी	पानीय
सीस	शीर्ष
कीड़ा	कीट

सं० अ :

बहँगी	वाहांग-
करसी	करीष
तीसी	अतसी

सं० इ :

चीना	चित्रक
जीभ	जिह्वा
हाथी	हस्तिन्

सं० उ :

बाई	वायु
बिंदी	बिन्दु

सं० ऋ :

सींग	शृंग
भतीजा	भ्रातृज
जमाई	जामातृ

९२. हि० इ :

सं० इ :

किरन	किरण
बहिरा	वधिर
गाभिन	गर्भिणी

सं० अ :

पिंजड़ा	पंजर-

गिनना	गणन
इमली	अम्लिका

सं० ई :

दिया	दीपक
दिवाली	दीपावली

सं० ऋ :

विच्छू	वृश्चिक
मिट्टी	मृत्तिका
गिद्ध	गृद्ध

९३. हि० ए :

सं० ए :

एक	एक
जेठ	ज्येष्ठ
सेठ	श्रेष्ठिन्

सं० अ :

सेंध	सन्धि
केकड़ा	कर्कट
छेरी	छगल

सं० इ :

बेल	बिल्व
बेंदी	बिन्दु
सेम	शिम्बा

सं० उ :

फेफड़ा	फुप्फुस

सं० ऊ :

नेउर	नूपुर

सं० ऋ :

देखना	√दृश्

सं० ऐ :

गेरू	गैरिक
केवट	कैवर्त
तेल	तैल

सं० औ :

गेहूँ	गोधूम

ख. अनुनासिक स्वर

९४. हिन्दी मे प्रायः प्रत्येक स्वर निरनुनासिक और अनुनासिक दोनों रूपों में व्यवहृत होता है। अनुनासिक स्वर प्रायः उन शब्दों में पाये जाते हैं जिन के तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक व्यंजन रहा हो और उस का लोप हो गया हो, जैसे :—

कांटा	कण्टक
कांपना	कम्पन
क्वांरा	कुमार
पैंतीस	पञ्चत्रिंशत्
चांद	चन्द्र

भौंरा	भ्रमर
सांईं	स्वामी
भुइं (बो०)	भूमि

९५. उच्चारण की दृष्टि से अनुनासिक व्यंजनों के निकटवर्ती स्वर अनुनासिक हो जाते हैं यद्यपि साधारणतया लिखने में यह परिवर्तन नहीं दिखलाया जाता,[1] जैसे :—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
आम	आंम
राम	रांम
हनूमान	हंनूंमांन
कान	कांन
तुम	तुंम
महाराज	मंहांराज

९६. हिन्दी में अनुनासिक स्वरों के कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जो अकारण ही अनुनासिक हो गये हैं और जिन के तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक ध्वनि नहीं पाई जाती। सुविधा के लिये इसे अकारण अनुनासिकता[2] कह सकते हैं, जैसे :—

---

[1] अवधी, ब्रजभाषा आदि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में बहुत से स्थलों पर उच्चारण के अनुसार कभी कभी लिखने में भी इस तरह के परिवर्तन दिखलाये गये हैं। तुलसीकृत मानस की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इस तरह के रूप पाये जाते हैं जैसे, रांम, कांन, जांमवन्त, अतिबलवांना आदि।

[2] सिद्धेश्वर वर्मा, नैज़ेलाइज़ेशन इन हिंदी लिटरेरी वर्क्स, (जर्नल आव दि डिपार्टमेंट आव लेटर्स, कलकत्ता, भाग १८); चै., बं. लै., § १७८।

आँसू	अश्रु
सांच (बो०)	सत्य
सांस	श्वास
भौं	भ्रू
जू	यूक

ग. संयुक्त स्वर

८७. प्राचीन-भारतीय-आर्यभाषा में केवल ए, ओ, ऐ, औ यह चार संयुक्त स्वर माने जाते थे और इन के संबंध में धारणा यह है कि इन के मूल रूप निम्न लिखित स्वरों के संयोग से बने थे :—

ए	:	अ + इ
ओ	:	अ + उ
ऐ	:	आ + इ
औ	:	आ + उ

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है (दे० § २.) वैदिक तथा संस्कृत काल में ही ए , ओ का उच्चारण मूल दीर्घस्वरों के समान हो गया था जो आज भी आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रचलित है। अतः हिंदी ए, ओ का विवेचन मूल स्वरों के साथ किया गया है। प्राकृतों में ह्रस्व ए , ओ का व्यवहार भी मिलता है । आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ये ध्वनियाँ अधिक शब्दों में नहीं पाई जातीं यद्यपि हिंदी की कुछ बोलियों में इन का व्यवहार बराबर मिलता है। ए ओ संधिस्वर नहीं हो सकते। इन का इतिहास भी प्राकृत काल के पूर्व नहीं जा सकता।

वैदिक काल में ऐ औ का पूर्व स्वर दीर्घ था (आ+इ; आ+उ) किंतु भा० आ० भा० के मध्य काल के पूर्व ही इस दीर्घ आ का उच्चारण ह्रस्व अ के

समान होने लगा था। आजकल संस्कृत में ऐ, औ का उच्चारण अइ, अउ के समान ही होता है। हिंदी की कुछ बोलियों मे ऐ, औ का यह उच्चारण अब भी प्रचलित है। आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ऐ, औ का उच्चारण अए-अओ हो गया है। प्राचीन अइ, अउ उच्चारण बहुत कम शब्दों में पाया जाता है। पाली प्राकृत मे ऐ, औ संयुक्त स्वरों का बिलकुल भी व्यवहार नहीं होता था।

यद्यपि पाली प्राकृत वर्णमालाओं में संयुक्त स्वर एक भी नहीं रह गया था तो भी व्यंजनो के लोप के कारण उच्चारण की दृष्टि से प्राकृत शब्दों में निकट आने वाले स्वरों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई थी। उदाहरण के लिये जब सं० जानाति, एति, हित, प्राकृत, लता तथा शत का उच्चारण महाराष्ट्री प्राकृत में क्रम से जाणाइ, एइ, हिअ, पाउअ, लआ तथा सअ हो गया था तो अनेक स्वर समूहों का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से प्राकृत भाषाओं में स्वर समूहो का व्यवहार वैदिक तथा संस्कृत भाषाओं की अपेक्षा कहीं अधिक था।

प्राकृत तथा अपभ्रंशों से विकसित होने के कारण हिंदी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं में भी संयुक्त स्वरों का व्यवहार संस्कृत की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। साहित्यिक हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में व्यवहृत संयुक्त स्वरो की सूची उदाहरण सहित पिछले अध्याय मे दी जा चुकी है। हिंदी संयुक्त स्वरों का इतिहास प्राय अपभ्रंश तथा प्राकृत भाषाओं तक ही जाता है। मूलस्वरों के समान इन का इतिहास साधारणतया प्रा० भा० आ० तक नहीं पहुँचता। अपभ्रंश तथा प्राकृत के संयुक्त स्वरों का पूर्ण विवेचन सुलभ न होने के कारण हिंदी संयुक्त स्वरों का इतिहास[1] भी अभी ठीक ठीक नहीं दिया जा सकता। ऐसी स्थिति में पिछले अध्याय मे समस्त संयुक्त स्वरों तथा स्वर समूहों की सूची देकर ही संतोष करना पड़ा है।

---

[1] हा, हि ग्रै, § ६८-९८।

बंगाली संयुक्त स्वरो के लिये दे, चै, बं. लै., § २०४-२३१।

यदि दो ह्रस्व स्वरों के समूह को सच्चा संयुक्त स्वर माना जाय तो साहित्यिक हिन्दी में ऐ (अए) औ (अओ) ही संयुक्त स्वर रह जाते हैं। इन का इतिहास नीचे दिया जाता है।

९८. हि० ऐ (अए) :

सं० ऐ (अइ) :

बैर	वैर
बैराग	वैराग्य
चैत	चैत्र

सं० अ :

पैंसठ	पञ्चषष्ठि
रैन	रजनी

सं० अय :

नैन (बो०)	नयन
समै (बो०)	समय
निहिचै (बो०)	निश्चय

नोट[1]—(१) बैल, मैला, थैली आदि शब्दों में सं० बली, मलीन, स्थली की ई के प्रभाव से अ का ऐ हो गया है।

(२) ऐसा, कैसा आदि शब्दों में प्रा० एरिसो (सं ईदृश), प्रा० केरिसो (सं० कीदृश) आदि के र् के लोप होने से इ के संयोग मे ए का ऐ हो गया है।

९९. हि० औ (अओ)

[1]धी , क. ग्रै., § ३५, ४२ ।

सं० अव :

लौंग	लवग
ब्यौसाय (बो०)	व्यवसाय

नोट[1]—(१) शब्द के मध्य में आने वाले प या म के व में परिवर्तित हो जाने से भी कभी कभी औ की उत्पत्ति हो जाता है, जैसे:—

सौत	सपत्नी
कौड़ी	कपर्द
बौना	वामन
चौंरी	चामर

(२) प्राकृत में मध्य त् के लोप हो जाने से अ और उ के संयोग से भी कुछ शब्दों में औ आया है, जैसे—

चौथा	चतुर्थ
चौदह	चतुर्दश

इ. स्वर संबंधी विशेष परिवर्तन

१००. ऊपर दिये हुए स्वरों के इतिहास के अतिरिक्त स्वरों के संबंध में कुछ अन्य विशेष परिवर्तन भी ध्यान देने योग्य हैं। इन में स्वरों का लोप आगम तथा विपर्यय मुख्य हैं।

क. स्वर लोप

बहुत से ऐसे हिंदी शब्दों के उदाहरण मिलते हैं जिन के संस्कृत रूपों में आदि, मध्य या अन्त्य स्वर वर्तमान था किंतु बाद को उस का लोप

[1] बी, क ग्रै, § ९२, ३६।

हो गया। इस संबंध में बीम्स[1] ने कुछ रोचक उदाहरण संगृहीत किये हैं जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

आदि स्वर लोप

अ :	भीतर	अभ्यन्तरे
	भीजना	अभि-√अञ्ज्
	भी	अपि
	रहटा	अरघट्ट
	तीसी	अतीसी
उ :	बैठना	उपविष्ट

मध्य स्वर लोप

मध्य स्वर का पूर्ण लोप बहुत कम पाया जाता है। स्वर परिवर्तन साधारण बात है और इसके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। शब्दांश के अंत मे आने वाले ह्रस्व अ का हिंदी में प्रायः लोप हो जाता है। लिखने मे यह परिवर्तन अभी नहीं दिखाया जाता है। जैसे—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
इमली	इम्ली
बोलना	बोल्ना
चलना	चल्ना
गरदन	गर्दन
कमरा	कम्रा
तरबूज	तर्बूज़

---

[1] बी., क. ग्रै., § ४६।

दिखलाया	दिख्लाया
समझना	समझ्ना
बलहीन	बल्हीन

अन्त्य स्वर लोप

अ ऊपर बतलाया जा चुका है कि आधुनिक साहित्यिक हिंदी में अन्त्य अ का लोप अत्यन्त साधारण परिवर्तन है। इस कारण अधिकांश अकारान्त शब्द व्यंजनान्त हो गये हैं। लिखने में यह परिवर्तन अभी नहीं दिखाया जाता है, जैसे—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
चल	चल्
घर	घर्
सब	सब्
परिवर्तन	परिवर्तन्
साधारण	साधारण्
केवल	केवल्
तत्सम	तत्सम्

इस नियम के कई अपवाद[1] भी हैं। अन्त्य अ के पहले यदि संयुक्त व्यंजन हो तो अ का उच्चारण होता है, जैसे कर्तव्य, प्रारम्भ, दीर्घ, आर्य, सम्बन्ध आदि। यदि अन्त्य अ के पहले इ, ई वा ऊ के आगे आने वाला य हो तो भी अन्त्य अ का उच्चारण होता है जैसे *प्रिय*, *सीय*, *राजसूय* इत्यादि

शब्दांश अथवा शब्द के अंत में आने वाले अ का लोप आधुनिक है

---

[1] गु, हि व्या, § ३८।

हिंदी की बोलियों में अभी यह ढंग प्रचलित नहीं हुआ है। पुराने हिंदी काव्य-ग्रंथों में भी अन्त्य अ का उच्चारण किया जाता है।

अन्य अन्त्य स्वरों के लोप के उदाहरण भी बराबर पाये जाते हैं, जैसे—

आ :

नींद्	निद्रा
दूब्	दूर्वा
बात्	वार्ता
दाख्	द्राक्षा
परख्	परीक्षा
जीभ्	जिह्वा

इ :

पाकड़्	पर्कटि
बिपत् (बो०)	विपत्ति
आग्	अग्नि

ई :

गाभिन्	गर्भिणी
बहिन्	भगिनी

उ :

बांह	बाहु

ए : संस्कृत सप्तमी के रूपों से विकसित हिंदी शब्दों में ए के लोप के उदाहरण मिलते हैं, जैसे—

पास	पार्श्वे
निकट	निकटे
संग	संगे

ख. स्वरागम

१०१. हिंदी के कुछ शब्दों मे नये स्वरों का आगम हो जाता है चाहे तत्सम रूप मे उस जगह पर कोई भी स्वर न हो।

आदि स्वरागम

तत्सम शब्द में आरम्भ में ही संयुक्त व्यंजन होने से उच्चारण की सुविधा के लिये आदि मे कोई स्वर बढ़ा लिया जाता है। साहित्यिक हिंदी में इस तरह के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं किंतु बोलियों मे आदि स्वरागम साधारण बात है, जैसे—

इ :	इस्त्री	स्त्री
अ :	अस्नान	स्नान
	अस्तुति	स्तुति

मध्य स्वरागम

शब्द के मध्य में भी स्वरागम प्रायः तब पाया जाता है जब उच्चारण की सुविधा के लिये संयुक्त व्यंजनों को तोड़ने की आवश्यकता होती है। यह प्रवृत्ति भी बोलियों में विशेष पाई जाती है, जैसे—

अ :	किशन्	कृष्ण
	गरब्	गर्व
	चन्दरमा	चन्द्रमा
	जनम्	जन्म
इ :	तिरिया	स्त्री
	गिरहन्	ग्रहण
	गिलानि	ग्लानि
उ :	सुमरन्	स्मरण

ग. स्वर विपर्यय

१०२. कभी कभी ऐसा पाया जाता है कि स्वर का स्थान बदल जाता है या दो स्वरों में कदाचित् उच्चारण की सुविधा के लिये स्थान परिवर्तन हो जाता है, जैसे—

लूका	उल्का
रेंडी	एरंड
उंगली	अंगुली
इमली	अम्लिका
बूंद	बिन्दु
ऊख	इक्षु
मूंछ	श्मश्रु

कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें एक स्वर दूसरे को प्रभावित कर उसे या तो परिवर्तित कर देता है या दोनों मिल कर तीसरा रूप ग्रहण कर लेते हैं—

सेंध	सन्धि
पोहे (बो०)	पशु

ई. व्यंजन परिवर्तन संबंधी कुछ साधारण नियम

१०३. बीम्स[1] के आधार पर व्यंजन परिवर्तनों के संबंध में कुछ साधारण नियम संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं।

---

[1] बी, क ग्रै, भा० १, अ० ३, ४।

क. असंयुक्त व्यंजन

आदि व्यंजन

आदि असंयुक्त व्यंजन मे प्रायः कोई भी परिवर्तन नहीं होता। यह प्रवृत्ति प्रायः समस्त भारत यूरोपीय कुल की भाषाओं में किसी न किसी रूप में पाई जाती है। हिन्दी मे इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं—

कोइल	*कोकिल*
नगा	*नग्न*
रोना	*रोदन*
हाथ	*हस्त*

शब्द के अन्दर होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव कभी कभी आदि व्यंजन पर आ कर पड़ जाता है ऐसी अवस्था मे आदि व्यंजन मे भी परिवर्तन हो जाता है। नीचे के उदाहरणों मे ह् या ऊष्म ध्वनियों के प्रभाव के कारण आदि व्यंजन अल्पप्राण से महाप्राण हो गया है—

भाप	*बाष्प*
घर	गृह
धी (बो०)	दुहितृ

कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें संस्कृत दंत्य व्यंजन हिंदी में मूर्द्धन्य मे परिवर्तित हो जाता है—

डसना	√दंश्
डाह	√दह्
डोला	√दुल्

मध्य व्यंजन

शब्दों के मध्य में आने वाले व्यंजनों में सब से अधिक परिवर्तन होते हैं यद्यपि ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें या तो व्यंजन में कोई भी

परिवर्तन नही होता या उसका लोप हो जाता है। इस संबंध मे कुछ प्रवृत्तियाँ अत्यंत रोचक हैं—

(१) अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन के अपने वर्ग के घोष अल्पप्राण व्यंजन में परिवर्तित हो जाने के बहुत उदाहरण मिलते हैं—

साग्	*शाक्*
कुंजी	*कुंचिक*
कीड़ा	*कीट्*
सवा	*सपादिक*

(२) प के संबंध में ऐसे उदाहरण अधिक मिलते हैं जिनमे प् केवल ब् में परिवर्तित होकर नहीं रुक जाता बल्कि स्पर्श ब् अन्तस्थ व् मे परिवर्तित होकर अन्त मे उ का रूप धारण कर लेता है। यह मूलस्वर उ अपने गुणरूप ओ अथवा वृद्धिरूप औ में परिवर्तित हो जाता है—

सोना	*स्वप्नं*
बोना	*वपनं*
कौड़ी	*कपर्द*
सौत	*सपत्नी*

इसी ढंग का परिवर्तन म् के संबंध मे भी मिलता है—

गौना	*गमनं*
बौना	*वामन*
चौरी	*चामर*

(३) महाप्राण स्पर्श व्यंजनों के संबंध मे एक परिवर्तन बहुत साधारण है। ऐसे व्यंजनो मे एक अंश वर्गीय-स्पर्श का रहता है तथा दूसरा अंश हकार का। अक्सर यह देखा जाता है कि महाप्राण का वर्गीय अंश लुप्त हो जाता है और केवल हकार शेष रह जाता है—

मेह	मेघ्
कहना	कथन
बहरा	बधिर
अहीर	आभीर

छ् झ्, ठ् ढ् तथा फ् के संबंध में यह परिवर्तन कम मिलता है।

(४) साधारणतया ऊष्म ध्वनियों में कोई परिवर्तन नहीं होता किन्तु कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमे संस्कृत ऊष्म भी ह् में परिवर्तित हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी की अपेक्षा सिंधी और पंजाबी में विशेष पाई जाती है—

बारह	द्वादश्
केहरी	केशरी
इकहत्तर	एकसप्तति
पोहे	पशु

(५) मध्य म् का एक विशेष परिवर्तन अत्यंत रोचक है। म् ओष्ठ्य अनुनासिक है अतः कभी कभी यह देखा जाता है कि इसके ये दोनों अंश पृथक् हो जाते हैं। अनुनासिक अंश पिछले स्वर को अनुनासिक कर देता है और ओष्ठ्य अंश का व् हो जाता है—

आंवला	आमलक
गांव	ग्राम्
सांवला	श्यामल
कुंवर	कुमार

(६) मध्य ण् प्रायः न् में परिवर्तित हो जाता है—

घिन	घृणा
गिनना	गणन

सुनना	श्रवण
पन्डित	पण्डित

(७) मध्य व्यंजन का लोप होना प्राकृत मे साधारण नियम था, हिन्दी में भी इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं—

कोइल	कोकिल
सुनार	स्वर्णकार
नेवला	नकुल

इन परिवर्तनों के संबंध मे बीम्स[1] ने कुछ कारण दिये हैं जो रोचक हैं किन्तु ये निश्चित नियम नहीं माने जा सकते।

अन्त्य व्यंजन

साधारणतया हिंदी में व्यंजनान्त शब्दों की संख्या बहुत कम है। यह बतलाया जा चुका है कि आधुनिक काल में अन्त्य अ के उच्चारण में लुप्त हो जाने के कारण हिन्दी के बहुत से शब्द व्यंजनान्त हो गये हैं। आधुनिक परिवर्तन होने के कारण इसका अन्त्य व्यंजन पर अभी विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

कुछ परिवर्तन बोलियों मे विशेष रूप से पाए जाते हैं। इनमें से मुख्य मुख्य नीचे दिये जाते हैं—

य् > ज्	जोत	योत्र
	काज	कार्य
	जमुना	यमुना
ल् > र्	केरा	केला
	महिरारू	महिला

[1] बी., क. ग्रै. § ५४, ५५।

	थरिया	स्थाली
व् > ब्	सब	सर्व
	बिरियाँ	वेला
श् > स्	बस	वश
	सरीर	शरीर
ष् > ख्	भाखा	भाषा
	हरख	हर्ष
	मेख (मीनमेख)	मेष (मीनमेष)

र्, ह्, और स् में परिवर्तन बहुत कम होते हैं।

ख. सयुक्त व्यजन

१०४. सस्कृत शब्दों मे आदि अथवा मध्य में आनेवाले सयुक्त व्यंजनों मे हिंदी में प्राय एक ही व्यजन रह जाता है। प्राकृत भाषाओं मे प्राय एक व्यजन दूसरे का रूप ग्रहण कर लेता था। इस सबध मे मुख्य मुख्य प्रवृत्तियाँ[1] नीचे दी जाती हैं—

---

[1] बीम्स ने (क ग्रै , भा० १, अ० ४) सयुक्त व्यजनो में ध्वनि परिवर्तन के इतिहास की दृष्टि से व्यजनो के दो विभाग किये हैं—१ बली व्यजन अर्थात् पचवर्गों के प्रथम चार स्पर्श व्यजन, और २ बलहीन व्यजन अर्थात् पाँच स्पर्श अनुनासिक, अतस्थ, और ऊष्म। इस दृष्टि से सयुक्त व्यजनों के तीन भेद हो सकते हैं—१ बली सयुक्त व्यजन, जैसे प्त्, ग्ध्, ब्ज्। २ बलहीन सयुक्त व्यजन जैसे श्र्, र्य्, ल्व्। ३ मिश्र सयुक्त व्यजन जैसे, त्न्, ध्य्, द्य्। इन तीनो प्रकार के सयुक्त व्यजनो के ध्वनि परिवर्तन सबधी नियम बीम्स ने नीचे लिख दिये हैं और ये साधारणतया ठीक उतरते हैं—

१ बली सयुक्त व्यजन में हिंदी में पहले व्यजन का प्राय लोप हो जाता है और पूर्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है।

(१) स्पर्श+स्पर्श : ऐसी परिस्थिति में हिंदी में प्रायः पहले व्यंजन का लोप हो जाता है साथ ही संयुक्त व्यंजन का पूर्वस्वर दीर्घ हो जाता है—

मूग	*मुद्ग*
दूध	*दुग्ध*
सात	*सप्त*

रूप परिवर्तन के भी कुछ उदाहरण हिंदी में मिल जाते हैं—

सत्तर	*सप्तति*
सत्तरह	*सप्तदश*

(२) स्पर्श+अनुनासिक : ऐसी परिस्थिति मे यदि स्पर्श पहले आवे तो अनुनासिक व्यंजन का प्राय. लोप हो जाता है—

आग	*अग्नि*
तीखा	*तीक्ष्ण*

ज्ञ (ज्+ञ्) के संयुक्त रूप में कई प्रकार के परिवर्तन पाये जाते हैं—

आग्या	*आज्ञा*
जनेऊ	*यज्ञोपवीत*
जग्य, जाग (बो०)	*यज्ञ*
रानी	*राज्ञी*

---

२ बलहीन संयुक्त व्यंजनो में प्राय अधिक निर्बल व्यंजन का लोप हो जाता है, जैसे स्पर्श-अनुनासिक और अतस्थ में अतस्थ अधिक निर्बल ठहरता है।

३ मिश्र व्यंजनो में प्राय बलहीन व्यंजन का लोप हो जाता है।

ऊपर दिये हुये उदाहरणो का इस दृष्टि से भिन्न भिन्न वर्गों में विभक्त करके परीक्षा करना रोचक होगा।

यदि अनुनासिक व्यंजन पहले हो तो उस का लोप तो हो जाता है किंतु पूर्वस्वर अनुनासिक हो जाता है—

जांघ	जङ्घा
चोंच	चञ्चु
कांटा	कण्टक
चांद	चन्द्र
कांपना	कम्पन

(३) स्पर्श+अन्तस्थ (य्, र्, ल्, व्): ऐसी परिस्थिति में स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को, अन्तस्थ का प्रायः लोप हो जाता है—

य् :	जोग (बो०)	योग्य
	चूना	च्यु
र् :	बाघ	व्याघ्र
	पनाली	प्रणाली
	दुबला	दुर्बल
व् :	पका	पक्व
	तुरत	त्वरित

दन्त्य स्पर्श व्यंजनों का संयोग जब किसी अन्तस्थ से होता है तो एक असाधारण परिवर्तन मिलता है। अन्तस्थ लुप्त होने के साथ स्पर्श व्यंजन को अपने स्थान के स्पर्श व्यंजन में परिवर्तित कर देता है अर्थात् दन्त्य स्पर्श य् के संयोग से तालव्य स्पर्श (चवर्ग), र् के संयोग से मूर्द्धन्य स्पर्श (टवर्ग), तथा व् के संयोग से ओष्ठ्य स्पर्श (पवर्ग) में परिवर्तित हो जाता है—

य् :	सच	सत्य
	नाच	नृत्य

	आज	अद्य
	बांझ	वन्ध्या
	सांझ (बो०)	सन्ध्या
	बटेर	वर्तिक
र् :	काटना	कर्तन
	कौड़ी	कपर्द
	गाड़ी	गंर्ती
व् :	बुढ़ापा	वृद्धत्व
	बारह	द्वादश

(४) स्पर्श+ऊष्म (श्, ष्, स्, ह्) : ऐसी परिस्थिति मे, स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को, ऊष्म का प्रायः लोप हो जाता है साथ ही यदि स्पर्श व्यंजन अल्पप्राण हो तो महाप्राण हो जाता है—

श् :	पच्छांव (बो०)	पश्चिम
ष् :	आँख	अक्षि
	खेत	क्षेत्र
	काठ	काष्ठ
	पीठ	पृष्ठ
स् :	थन	स्तन
	हाथ	हस्त
ह् :	जीभ	जिह्वा
	गुझिया	गुह्य

(५) अनुनासिक+अनुनासिक : ऐसी परिस्थिति बहुत कम पाई जाती है। न् और म् का संयोग कभी कभी मिलता है। किन्तु ऐसी हालत में दोनों अनुनासिक रह जाते हैं—

जनम (बो०)	जन्म

(६) अनुनासिक+अन्तस्थ : ऐसी परिस्थिति में अन्तस्थ का प्रायः लोप हो जाता है—

अरना (भैंसा)	अरण्य
सूना	शून्य
ऊन	ऊर्णा
कान	कर्ण
काम	कर्म

(७) अनुनासिक+ऊष्म : ऐसी परिस्थिति में कई प्रकार के परिवर्तन पाये जाते हैं। कभी अनुनासिक का लोप हो जाता है, कभी ऊष्म का, कभी दोनों किसी न किसी रूप मे ठहर जाते हैं तथा कभी कभी ऊष्म ह् में परिवर्तित हो जाता है—

रास	रश्मि
मसान	श्मशान
सनेह, नेह	स्नेह
नहान	स्नान
कान्ह	कृष्ण

(८) अन्तस्थ+अन्तस्थ : ऐसी परिस्थिति के लिए भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी एक अन्तस्थ का लोप हो जाता है और कभी दोनों अन्तस्थ किसी न किसी रूप मे रह जाते हैं—

मोल	मूल्य
सब	सर्व
चोरी	चौर्य

सूरज (बो०)	सूर्य
परब (बो०)	पर्व
बरत (बो०)	व्रत

(९) अन्तस्थ+ऊष्म : ऐसी परिस्थिति के लिये भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी अन्तस्थ रह जाता है, कभी ऊष्म, और कभी दोनों रह जाते हैं—

सिर	शीर्ष
पास	पार्श्व
साला	श्याला
ससुर	श्वशुर
आसरा	आश्रय
मिसिर (बो०)	मिश्र
मगसिर (बो०)	मार्गशीर्ष

उ. हिंदी व्यंजनों का इतिहास[1]

अब हिंदी के एक एक व्यंजन को लेकर यह दिखलाने का यत्न किया जायगा कि यह प्रायः किन किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है।

क. स्पर्श व्यंजन

१. कंठ्य [क्, ख्, ग्, घ्].

१०५. हि० क् :

---

[1] इस अंश के क्रम तथा उदाहरणों में चै., बें. लै., § २५०-३०५ से विशेष सहायता ली गई है। गुजराती के संबंध में इस प्रकार के शास्त्रीय विवेचन के लिये दे., टर्नर, गुजराती फोनोलोजी ज. रा. ए. सो., १९२१, पृ० ३२९, ५०५।

सं० र्क् :	कपूर	कर्पूर
	काम	कर्म
सं० क्क् :	चिकना	चिक्कण
	कूकुर (बो०)	कुक्कुर
सं० क्य् :	मानिक	माणिक्य
सं० क्र् :	कोस	क्रोश
	चाक	चक्र
सं० क्व् :	पका	पक्व
सं० ङ्क् :	आंक	अंक
सं० र्क् :	शकर	शर्करा
„	पाकड़	पर्कटी
सं० स्क् :	कंधा	स्कन्ध

क् ध्वनि कुछ देशी शब्दों[1] में भी मिलती है जैसे बकना, झक्की, हांकना आदि।

बैठक, झलक आदि शब्दों में प्रत्यय के रूप में आने वाली क् ध्वनि की व्युत्पत्ति के लिये अध्याय ५ देखिये।

उच्चारण मे शब्द के मध्य तथा अन्त में आने वाले ख् का उच्चारण कभी कभी क् के समान हो जाता है, जैसे भूख, झखना आदि उच्चारण में प्रायः भूक, झकना हो जाते हैं। इस तरह के परिवर्तनों पर साधारणतया ध्यान नहीं दिया जाता।

विदेशी भाषाओं की क् ध्वनि हिन्दी विदेशी शब्दों में बराबर पाई जाती है, जैसे अं० कोट, सिकत्तर, फा० कारगुज़ार, अ० मकान।

---

[1] चै., बं. लै, भा० १, पृ० ४५७।

फारसी, अरबी क़् ध्वनि पुरानी हिन्दी तथा आधुनिक बोलियों मे बराबर क् में परिवर्तित हो जाती है, जैसे कुलफी (फा०), कीमत (अ०), नुकसान (अ०), संदूक (अ०) ।

१०६. हि० ख् :

सं० क् :	खरताल (बाजा)	करताल
सं० क्ष् :	खीर	क्षीर
	खत्री	क्षत्रिय 5K क्षात्रि
	आँख	अक्षि
	लाख	लक्ष
सं० क्ष्ण् :	तीखा	तीक्ष्ण
सं० ख् :	खाट	खट्वा
	खजूर	खर्जूर
	मूरख (बो०)	मूर्ख
सं० :ख् :	दुख	दुःख
सं० ख्य् :	बखानना	व्याख्यान
सं० ष्क् :	पोखर	पुष्कर
	सूखा	शुष्क

हिंदी बोलियों में सं० ष् के स्थान पर ख् बोला जाता है—

दोख	दोष
बरखा	वर्षा
मीनमेख	मीनमेष

लिखने में ख और र व के रूपों मे संदेह होने के कारण पुरानी हस्त-लिखित पोथियों मे ख के लिये ष लिखने लगे थे, जैसे षरि, मुष आदि । हिंदी

की दृष्टि से ष् चिह्न मूर्द्धन्य ष् के लिये अनावश्यक समझा गया क्योंकि इस का शुद्ध उच्चारण लोग भूल गये थे और उच्चारण की दृष्टि से हिंदी-भाषा-भाषी ष् और श् को समान ही समझते थे। इस तरह जब ष् चिह्न ख् तथा ष् दोनों के लिये प्रयुक्त होने लगा तो संस्कृत ष् का उच्चारण भी भ्रमवश ख् के समान किया जाने लगा।

हिंदी बोलियों में फा० अ० ख़् का उच्चारण ख् के समान होता है—

खोजा	फा० ख़्वाजह
चरखा	फा० चर्ख़
बखत	अ० वक़्त

अंतिम उदाहरण में अ० क़् के लिये साहित्यिक हिंदी में भी प्रायः ख् या ख़् हो जाता है।

१०७, हि० ग् :

सं० क् :	गेंद	कन्दुक
	ग्यारह	एकादश
	मगर .	मकर
	पगार	प्राकार
	भगत (बो०)	भक्त
	साग	शाक
सं० ग् :	गाठ	ग्रन्थि
	गेरू	गैरिक
	गोरा	गौर
सं० ग्न् :	आग	अग्नि
	लगन	लग्न

नगा	नग्न + क :
सं० ग्य् : जोग (बो०)	योग, योग्य
सं० ग्र् : गाव	ग्राम
आगे	अग्र
अगहन	अग्रहायण
सं० ङ्ग् : लौंग	लवङ्ग
भाग	भद्ग
सींग	शृङ्ग
सं० ज्ञ् : यग्य, जाग (बो०)	यज्ञ
ग्यान	ज्ञान
सं० द्ग् : मूग	मुद्ग
मुगरी	मुद्गर
सं० ल्ग् : फागुन	फाल्गुन
बाग	वल्गा

विदेशी ग़् ध्वनि हिन्दी बोलियों में ग् हो जाती है—

गरीब	ग़रीब
बाग	बाग़

१०८. हि० घ् :

सं० ग् : घुघची	गुंजा
सं० घ् : घडा	घट
घाम	घर्म
सं० घ्र् : बाघ	व्याघ्र

२. मूर्द्धन्य[1] [ट् ठ् ड् ढ्]

१०९. हि० ट्

स० ट्	टक्साल	टङ्कशाला
सं० ट्ट्	लगोट	लिंगपट्ट
	हाट	हट्ट
स० ण्ट्	काटा	कण्टक
	कटहल	कण्टफल
	बाटना	√वण्ट्
स० त्र्	टूटना	√त्रुट्
स० र्त्	काटना	कर्तन
	कटारी	कर्तरिका
	केवट	कैवर्त
स० ष्ट्	ईंट	इष्टक
स० ष्ट्र्	ऊंट	उष्ट्र
स० ष्ठ्	कोट (किला)	कोष्ठ
	छटा	षष्ठक

---

[1]हिन्दी मूर्द्धन्य स्पर्श व्यजनों का उच्चारण प्रा० भा० आ० की इन ध्वनियों की अपेक्षा बहुत आगे को हट आया है।

मूर्द्धन्य ध्वनियें भारतीय आर्य ध्वनियें हैं, या किसी अनार्य भाषा के प्रभाव से मूल आर्य भाषा में आ गईं यह प्रश्न हमारे क्षेत्र के बाहर है। भारतीय आर्य भाषाओं में ये आदि काल से मौजूद रही हैं। इस विषय पर दे, चै, बें लैं § २६६, बी, क ग्रै § ५९।

११०. हि० ठ् :

सं० एठ् :	सोंठ	शुण्ठि
सं० न्थ् :	गांठ	ग्रन्थि
सं० र्थ् :	अहुठ (3½) बो०	अर्द्ध चतुर्थ
सं० ष्ट् :	मीठा	मिष्ट
	मूठ	मुष्टि
	ढीठ	धृष्ट
	डीठि (बो०)	दृष्टि
	लाठी	यष्टि
सं० ष्ठ् :	कोठा	कोष्ठकः
	साठ	षष्ठि
	जेठ	ज्येष्ठ
	निठुर	निष्ठुर
सं० स्थ् :	पठाना (बो०)	प्रस्थापयति

१११. हि० ड् :

सं० ड :	डाइन	डाकिनी
सं० एड् :	भंडार	भाण्डागार
सं० द् :	डोली	दोलिका
	डोरा	दोरक
	डांड	दण्ड
	डीवट	दीपवर्तिका

११२. हि० ढ :

सं० ष्ट् :	ढीठ	धृष्ट

३. दन्त्य [त्, थ्, द्, ध्]

११३. हि० त् :

सं० क्त् :	सत्तू	सक्तु
	भात	भक्त
	मोती	मौक्तिक
	राते (ब्रo)	रक्त
सं० त्र् :	छत्तीस	षट्त्रिंशत्
सं० त् :	तेल	तैल
	तांत	तन्तु
सं० त्त् :	माता (मद–)	मत्त
	भीत	भित्ति
	पीतल	पित्तल
	उतरना	(उत्तरति)
सं० त्र् :	तीन	त्रीणि
	तोड़ी (रागिनी)	त्रोटिका
	तोड़ना	(√त्रुट्)
	खेत	क्षेत्र
	चीता	चित्रक
	छाता	छत्र

सं० त्व् :	तू	त्वं
	तुरंत	त्वरित; त्वरन्त
सं० न्त् :	दांत	दन्त
	सन्ताल (जाति)	सामन्त पाल
सं० न्त्र् :	आँत	अन्त्र
सं० प्त् :	नाती	नप्तृ
	विनती	(विज्ञप्ति) विनति
	सतरह	सप्तदश
	तत्ता (बो०)	तप्त
सं० र्त् :	कातिक	कार्तिक
	बत्ती	वर्तिका
सं० स्त्र् :	तिरिया (बो०)	स्त्री

११४. हि० थ् :

सं० त्थ् :	कैथ	कपित्थ
	कुलथी (दाल)	कुलत्थ
सं० र्थ् :	साथ	सार्थ
	चौथा	चतुर्थ
सं० स्त् :	माथा	मस्तक
	हाथ	हस्त
	पाथर (बो०)	प्रस्तर

११५. हि० द् :

सं० द् :	दांत	दन्त

	दूध	दुग्ध
	दाहिना	दक्षिण
सं० द्र् :	नींद	निद्रा
	भादौं	भाद्रपद
	हलदी	हरिद्रा
सं० द्व् :	दो	द्वौ
	दूना	द्विगुण-
	दीप (जै०, जम्बू दीप)	द्वीप
सं० न्द् :	सेंदुर	सिन्दूर
	ननद	ननान्दा
सं० न्द्र :	चांद	चन्द्र
सं० र्द् :	चौदह	चतुर्दश

११६. हि० ध् :

सं० ग्ध :	दूध	दुग्ध
सं० द्ध् :	ऊधौ	उद्धव
	उधार	उद्धार
सं० द्ध्र् :	गीध (बो०)	गृध्र
स० ध् :	धान	धान्य
	धुआं	धूम
	धरना	√धृ
सं० न्ध् :	अंधेरा	अन्धकार
	आंधी	अन्धिका

	बांधना	(√बन्ध्)
सं० र्ध् :	आधा	अर्द्ध
	गधा (बो०)	गर्दभ

४. ओष्ठ्य [प्, फ्, ब्, म्]

११७. हि० प् :

सं० त्प् :	उपज	उत्पद्यते
सं० त्म् :	अपना	आत्मानं
सं० प् :	पान	पर्ण
	पौन	पादोन-
	पीपल	पिप्पल
सं० प्य् :	रुपया	रौप्यक
सं० प्र् :	पिया (बो०)	प्रिय
	पावस	प्रावृष्
	पहर	प्रहर
सं० म्प् :	कांपना	√कम्प्
सं० र्प् :	कपड़ा	कर्पट
	कपास	कार्पास
	साप	सर्प
सं० ष्प् :	भाप	बाष्प
सं० स्प् :	परस	स्पर्श

११८. हि० फ् :

सं० प् :	फांस	पाश

	फलाग	(प्लवग)
स० फ्	फलारी (मिठाई)	फलाहार-
	फूल	फुल्ल
स० स्फ्	फोडा	स्फोटक
	फटकरी	(स्फटिकारिका)
	फुर्ती	स्फूर्ति

११९. हि० ब्

स० ड्व्	छबीस	षड्विंश
स० द्व्	बारह	द्वादश
	बाईस	द्वाविंशति
स० प्	बैठना	√उपविष्ट
स० ब्	बाझ	बन्ध्या
	बाह	बाहु
	बकरा	बर्कर
	बाधना	√बन्ध्
स० ब्र्	बाम्हन (बो०)	ब्राह्मण
स० म्ब्	नीबू	निम्बुक
स० म्र्	ताबा	ताम्र
	अबिया (बो०)	आम्र
स० र्ब्	दुबला	दुर्बल
स० र्व्	चबाना	चर्वण

	सब	सर्व
सं० व् :	बांका	वक्र
	बावला	वातुल
	बहू	वधू
	बूंद	बिन्दु
सं० व्य् :	बखानना (बो०)	व्याख्यान—
	बाघ	व्याघ्र

१२०. <u>हि० भ् :</u>

सं० ब् :	भूख	बुभुक्षा
	भाप	बाष्प
सं० भ् :	भात	भक्त
	भीख	भिक्षा
सं० भ्य् :	भीतर	अभ्यन्तर
	भीजना	√अभ्यज्
सं० भ्र् :	भौंरा	भ्रमर
	भाई	भ्रातृ
	भावज	भ्रातृजाया
सं० म् :	भैंस	महिष
सं० र्भ् :	गाभिन	गर्भिणी
सं० व् :	भेष	वेष
सं० ह्व् :	जीभ	जिह्वा

ख. स्पर्श-संघर्षी [च्, छ्, ज्, झ्]

१२१. प्रा० भा० आ० में च्, छ्, ज्, झ् तालव्य स्पर्श व्यंजन[1] थे। उन दिनों च् की ध्वनि कुछ कुछ क्य् के सदृश रही होगी। म० भा० आ० के प्रारम्भिक काल में ही ये तालव्य स्पर्श ध्वनियें स्पर्श संघर्षी हो गई थीं। यह परिवर्तन कदाचित् मगध आदि पूर्वी देशों की भाषाओं से आरम्भ हुआ था। मध्य देश और पश्चिमी आर्यावर्त की भाषाओं में कुछ दिनों तक स्पर्श उच्चारण चलता रहा। म० भा० आ० के अंतिम समय तक प्रायः समस्त भारतीय आर्य भाषाओं में इन स्पर्श ध्वनियों का स्पर्श संघर्षी उच्चारण फैल गया। आ० भा० आ० में अब चवर्गीय ध्वनियाँ स्पर्श न हो कर स्पर्श संघर्षी हो गई हैं। आसामी, मराठी, गुजराती आदि कुछ आधुनिक बोलियों में तो इन का झुकाव दंत्य ध्वनियों की ओर हो गया है। हिंदी स्पर्श संघर्षी ध्वनियों का इतिहास नीचे दिया जाता है।

१२२. हि० च् :

सं० च् :	चाद	चन्द्र
	चाक	चक्र
	काच	काच
सं० ञ्च् :	पाच	पञ्च
	आंचल	अञ्चल
सं० त्य् :	नाच	नृत्य
	मीचु (बो०)	मृत्यु
	साच (बो०)	सत्य
सं० र्च् :	कूची	कूर्चिका

[1] चै, बें लैं., § १३२, § २५५।

१२३. हि० छ् :

सं० क्ष् :	छुरा	क्षुरकः
	छत्री (बो०)	क्षत्रिय
	रीछ	ऋक्ष
	छिन (बो०)	क्षण
सं० च्छ् :	पूछना	√पृच्छ्
सं० छ् :	छाता	छत्र
	छेरी (बो०)	छगल
	छांह (बो०)	छाया
सं० त्स् :	बछड़ा	वत्सक.
सं० श् :	छिलका	(शल्कल)
	छकड़ा	(शकटक.
सं० श्च् :	बीछू	वृश्चिक
सं० ष् :	छः	षट्

१२४. हि० ज् :

सं० ज् :	जागता	(जागर्ति)
	भावज	भ्रातृ जाया
	बिजना (बो०)	व्यजन-
	जनम (बो०)	जन्म
सं० ज्ज् :	काजल	कज्जल
	लाज	लज्जा
सं० ज्य् :	जेठ	ज्येष्ठ

	राज	राज्य
	बनजारा	(वाणिज्य+कार
सं० ज्व् :	उजला	उज्वल
सं० ञ्ज् :	मूज	मुञ्ज
	पिंजड़ा	पञ्जर
सं० द्य् :	अनाज	अन्नाद्य
	जुआ	द्यूत
	आज	अद्य
	बिजली	विद्युत्
सं० य् :	जौ, जावा	यव
	जाना	(√या)
	जाता	यन्त्र
सं० य्य् ·	सेज	शय्या
सं० र्ज :	खुजली	(खर्जुर)[२]
	भोजपत्र	भूर्जपत्रं
	माजना	मार्जनं
सं० र्य :	आजी	आर्यिका
	काज (बो०)	कार्य

१२५. हि० झ :

सं० ध्य .	ओझा	उपाध्याय
	समझना	(संबुध्यति)
	बूझना	(बुध्यति)

	जुझना (बो०)	(युध्यति) <
सं० ध्य :	सांझ (बो०)	सन्ध्या
	बांझ	बन्ध्या

ग. अनुनासिक [ङ्, ञ्, ण्, न्, न्ह्, म्, म्ह्]

१२६. संस्कृत में ङ् ध्वनि कंठ्य व्यंजनों के पहले केवल मात्र शब्द के मध्य में आती थी। हिन्दी में भी इसका यही प्रयोग मिलता है किन्तु केवल ह्रस्व स्वर के बाद।

<u>हि० ङ् < सं० ङ्</u>

अङ्गुल	अङ्गुलि
कङ्गाल	कङ्काल
जङ्गल	जङ्गल

कुछ देशी शब्दों में भी यह ध्वनि पाई जाती है, जैसे बङ्गू, चङ्गा।

विदेशी शब्दों में भी ऊपर दी हुई परिस्थिति में ङ् ध्वनि पाई जाती है, जैसे जङ्ग, तङ्ग।

१२७. संस्कृत में ञ् ध्वनि केवल मात्र शब्द के मध्य में तालव्य व्यंजनों के पहले आती थी। तालव्य व्यंजनों के उच्चारण में स्थान परिवर्तन होने के कारण हिन्दी में ऐसे स्थलों पर अब ञ् के स्थान पर न् का उच्चारण होने लगा है। लिखने में अभी यह परिवर्तन नहीं दिखाया जाता।

लिखितरूप	उच्चरित रूप
चञ्चल	चन्चल
पञ्जा	पन्जा
कञ्ज	कन्ज

आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में ञ् का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं मिलता किन्तु हिन्दी की कुछ बोलियों मे ञ् से मिलती जुलती एक ध्वनि है किन्तु यह वास्तव मे य मात्र है, जैसे ब्र० नाञ् या नायं (नहीं), जाञ् या जायं (जावें) बाञे या बायें (बांये)

१२८. प्राकृतों में ण् का प्रयोग बहुत होता था आजकल पंजाबी में इसका व्यवहार विशेष पाया जाता है। तत्सम शब्दों में हिन्दी में भी संस्कृत ण् का व्यवहार शब्द के मध्य या अन्त मे मिलता है, जैसे *गुण*, *गणपति*, *मृण*, *हरिण* इत्यादि। तद्भव रूपों मे हिन्दी मे ण् के स्थान पर बराबर न् हो जाता है, जैसे *गुनी*, *हिरन*, *गनेस*। तत्सम शब्दों मे भी मध्य हलन्त ण् के स्थान पर न् का ही उच्चारण होता है। यद्यपि लिखा ण् जाता है—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
पण्डित	*पन्डित*
खण्ड	*खन्ड*
मुण्ड	*मुन्ड*

१२९. हिन्दी न् वास्तव में दन्त्य ध्वनि नहीं रही है बल्कि वर्त्स्य ध्वनि हो गई है। न का प्रयोग हिन्दी में आदि मध्य और अन्त सब स्थानों पर स्वतन्त्रता पूर्वक होता है। हिन्दी मे संस्कृत के पाँच अनुनासिक व्यंजनो के स्थान पर दो—न् और म्—का ही प्रयोग विशेष होता है। ङ् केवल कुछ शब्दों के मध्य मे मिलता है, ण् कुछ तत्सम शब्दों मे जब सस्वर हो और ञ् का व्यवहार बिलकुल भी नहीं होता। न् का इतिहास नीचे दिया है—

हि० न् :

सं० ज्ञ्	*बिनती*	*विज्ञप्तिका*
स० ञ् :	चन्चल	चञ्चल
	पन्जा	पञ्चकः
	कन्ज	कञ्ज

सं० ण्	: कनी	कणिका
	कंगन	कंकण
	दुगना	द्विगुण
	पन्डित	पण्डित
	खन्ड	खण्ड
	मुन्ड	मुण्ड
सं० ण्य्	: पुन (बो०)	पुण्य
	अरना (बो०)	अरण्य
सं० न्	: नींद	निद्रा
	निउला	नकुल
	थन	स्तन
	पानी	पानीय
सं० न्य्	: धान	धान्य
	सूना	शून्य
	मान (आदरणीय संबंधी)	मान्य
सं० र्ण्	: पान	पर्ण
	कान	कर्ण

१३०. हि० न्ह् :

सं० ष्ण्	: कान्ह (बो०)	कृष्ण
सं० स्न्	: अन्हाना (बो०)	स्नान

१३१, हि० म्

स० म्	मेह	मेघ
	मूग	मुद्ग
	माथा	मस्तक
स० मृ	मक्खन	मृक्षण
स० म्ब्	नीम	निम्ब
	जामुन	जम्बु
	कदम (बो०)	कदम्ब
स० म्र	आम	आम्र
स० श्म्	मसान (बो०)	श्मशान

१३२, हि० म्ह्

स० म्भ्	कुम्हार	कुम्भकार
स० ष्म्	तुम्हें	युष्मे
स० ह्म्	बम्हा (बो०)	ब्रह्मा

घ, पार्श्विक [ल्]

१३३ हि० ल्

स० ड्	सोलह	षोडश
स० त्	अलसी	अतीसी
स० द्र्	भला	भद्र
स० य्	लाठी	यष्टिका

सं० र्	चालीस	चत्वारिंशत्
	हलदी	हरिद्रा
सं० र्य्	पलग	पर्यङ्क
सं० ल्	लाख	लक्ष
	लगन	लग्न
	आंवला	आमलक
	काजल	कज्जल
सं० ल्य्	वल	वल्य
	मोल	मूल्य
सं० ल्	वल	बिल्व

कुछ विदेशी शब्दों के न का उच्चारण हिन्दी बोलियों में ल् के समान होता है, जैसे लोट < अं० नोट, लंबर < अं० नम्बर।

ङ. लुंठित[1] [र्]

१३४. हि० र्

सं० त्	सत्तर	सप्तति

---

१ र् और ल् के प्रयोग की दृष्टि से प्रा० तथा म० भा० आ० भाषाओं में तीन विभाग मिलते हैं—१ पश्चिमी, जिनमें र् का प्रयोग विशेष है, २ मध्यवर्ती, जिनमें र् और ल् दोनों का व्यवहार मिलता है, और ३ पूर्वी जिनमें ल् का व्यवहार विशेष है। यह विशेषता कुछ कुछ आ० आ० भा० में भी पाई जाती है। हिन्दी मध्यवर्ती भाषा है अत इस में र् और ल् दोनों का व्यवहार मिलता है। इस संबंध में विस्तृत विवचन के लिये द, चै, बँ लैं, § ३२, § २९१।

म० द्	बारह	द्वादश
	ग्यारह	एकादश
सं० र्	रात	रात्रि
	रानी	राज्ञी
	और	अपर
	गहिरा	गभीर
स० ल्	पखारना (बो०)	प्रक्षालन
	बेर	वेला

च. उत्क्षिप्त [ड़् ढ़्][1]

१३५. वैदिक भाषा में दो स्वरों के बीच में आने वाले ड् ढ् का उच्चारण ळ्, ळ्ह् होता था। पाली में भी यह विशेषता पाई जाती है किन्तु संस्कृत में यह परिवर्तन नहीं होता था। म० भा० आ० में किसी समय स्वर के बीच में आने वाला ड् ढ् का उच्चारण ड़् ढ़् के समान होने लगा।

धीरे धीरे कुछ अन्य मूर्द्धन्य ध्वनियें भी ड़् ढ़् में परिवर्तित हो गईं। ड़् ढ़्, सदा शब्द के मध्य में दो स्वरों के बीच में आते हैं। आजकल अनेक आ० भा० आ० भाषाओं में ये ध्वनियें पाई जाती हैं। हिन्दी ड़् ढ़् का इतिहास नीचे दिया जाता है—

१३६. हि० ड़्

सं० ट्	बाड़ी	वाटिका
	कड़ाही	कटाह
	घोड़ा	घोटक

---

[1] बे हैं, § १३३, § २७०।

	फोड़ना	स्फोटयति
	बड	वट
	खड़िया	खटिका
	कनाडी	कर्नाटिका
सं० ड्य् :	जाडा	जाड्य
सं० ण्ड् :	खाड	खण्ड
	पाडे	पण्डित
	माड़	मण्ड
	सूंड	सुण्ड
	साड	षण्ड
सं० र्द्	कौडी	कपर्द

१३१. <u>हि० ढ्</u> :

सं० ठ् :	मढी	मठिका
	पीढा	पीठिका
	पढ़ना	पठति
सं० द्ध् ·	बूढ़ा	वृद्ध
सं० ध्य् :	कुढ़ना	कुध्यति
सं० र्द्ध् :	साढ़े	सार्द्ध
	बढ़ई	वर्द्धकिन्
सं० र्ध् :	वढ़ना	वर्धते

ख. संघर्षी [ह्, ह्, श्, स्, व्]

१३८. विसर्ग अथवा अघोष ह् केवल थोड़े से तत्सम शब्दों में आता है।

हि० ः :

सं० :	: प्राय:	प्राय:
	पुन:	पुन:
सं० जिह्वामूलीय ·	अन्त:करण	अन्त:करण

शब्द के अन्त मे आने वाले घोष ह् का उच्चारण हिन्दी मे प्राय: अघोष ह् के समान हो जाता है किन्तु लिखने मे यह परिवर्तन नहो दिखाया जाता।

लिखितरूप	उच्चरितरूप
वह	व: या वह्
कह	क: या कह्
स्नेह	स्ने: या स्नेह्
मुह	मु: या मुह्

यह भी स्मरण दिला देना अनुचित न होगा कि घोष महाप्राण स्पर्श व्यंजनों में घोष ह् आता है और अघोष महाप्राण स्पर्श व्यंजनों मे अघोष ह् आता है किन्तु देवनागरी लिपि में यह भेद नहीं दिखलाया जाता।

१३९. घोष ह् शब्द के मध्य या आदि में आता है। अन्त्य घोष ह् उच्चारण में अब अघोष हो गया है।

हि० ह् <

सं० ख् :	मुँह	मुख
	अहेरी	आखेटिक
	नह (बो०)	नख

सं० घ् : रहटा	अरघट्ट
सं० थ् : कहना	कथनं
सं० ध् : साहू	साधु
बहू	वधू
दही	दधि
सं० भ् : गहिरा	गभीर
सुहाग	सौभाग्य
हो	√भू
सं० श् : बारह	द्वादश
सोलह	षोडश
सं० ष् : पुहुप (बो०)	पुष्प
सं० ह् : बाह	बाहु
हाथी	हस्तिन्
हीरा	हीरक

१४०. हिन्दी बोलियों में[1] साधारणतया केवल दन्त्य स् का प्रयोग विशेष पाया जाता है और श् के स्थान पर भी स् कर लिया जाता है किन्तु साहित्यिक हिन्दी में तत्सम शब्दों में तालव्य श् का व्यवहार बराबर होता है। उच्चारण की दृष्टि से सं० मूर्द्धन्य ष् हिन्दी में तालव्य श् में परिवर्तित हो गया है किन्तु तत्सम शब्दों के लिखने में श् और ष् का भेद अभी बराबर

---

[1]बंगाली आदि पूर्वी आ० भा० आ० भाषाओं में तथा पहाड़ी भाषाओं में स् के स्थान पर भी श् का ही व्यवहार विशेष होता है। हिन्दी से प्रभावित हो जाने के कारण बिहारी में स् का प्राधान्य है। श् और स् का यह भौगोलिक भेद बहुत प्राचीन है।

दिखलाया जाता है। उच्चारण की दृष्टि से हिन्दी में मूर्द्धन्य ष् अब नहीं है।

१४१. हि० श् :

सं० श् :	पशु	पशु
	विश्व	विश्व
सं० ष् :	शेश	शेष
	कशाय	कषाय

१४२. हि० स् :

सं० श् :	संख	शंख
	सलाई	शलाका
	सास	श्वश्रू
सं० ष् :	सिरस	शिरीष
	कसेला	कषाय
	बरस	वर्ष
	असाढ़	आषाढ़
सं० स् :	सूत	सूत्र
	सुहाग	सौभाग्य
	सोना	स्वर्ण

१४३. व् केवल तत्सम शब्दों में रह गया है हिन्दी बोलियों में व् के स्थान पर बराबर ब् हो जाता है।

हि० व् :

सं० व् :	वेला	वेला
	वाम	वाम
	कवि	कवि

सूचना—अन्य संघर्षी फ़् ज़् स़् ग़् ध्वनियें केवल विदेशी शब्दों मे पाई जाती हैं इनका विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है।

ज. अर्द्धस्वर (य् व्)

१४४. प्रा० भा० आ० काल मे य् व् शुद्ध अर्द्धस्वर इँ उँ थे। संस्कृत में उँ दन्त्योष्ठ्य संघर्षी व़् में परिवर्तित हो गया था। साथ ही ओष्ठ्य व़् रूपान्तर भी बहुत प्राचीन समय से मिलता है। इँ भी म० भा० आ० मे ही य् के सदृश हो गई थी। संस्कृत के य् और व् हिन्दी मे शब्द के आदि मे प्राय: ज् और ब् हो गये तथा शब्द के मध्य में इनका लोप हो जाता था। बाद को दो स्वरों के बीच में श्रुति के रूप मे य् और व् का फिर विकास हुआ, जैसे सं० एकादश > प्रा० *एआरह* > हि० *ग्यारह*।

१४५. हिन्दी मे य् का उच्चारण बहुत स्पष्ट नहीं होता। उच्चारण की दृष्टि से संयुक्त स्वर इअ या एअ और अर्द्धस्वर य् बहुत मिलते जुलते हैं। अ तथा इ ई या ए के बीच मे आने पर य् ध्वनि बिलकुल ही अस्पष्ट होजाती है, जैसे *गये*, *गयी* आदि मे। किन्तु *गया*, *आया* मे य् श्रुति स्पष्ट सुनाई पड़ती है। विदेशी शब्दों के अतिरिक्त य् ध्वनि तत्सम शब्दों में विशेष पाई जाती है।

तत्सम	तद्भव
यज्ञ	*जाग*
आर्य	*आरज*
योधा	*जोधा*
वीर्य	*बीज*
कार्य	*काज*
यमुना	*जमुना*

१४६. व़् अर्द्धस्वर शब्द के मध्य मे प्रयुक्त होता है। लिखने में व्
और व़् मे कोई भेद नहीं किया जाता है। व् का व़् के सदृश उच्चारण
बहुत प्राचीन है।

व़् :

सं० व्	: स्वामी	स्वामी
	ज्वर	ज्वर
सं० म्	: क्वांरा	कुमार
	आवला (बो०)	आमलक
	चंवर (बो०)	चमर

ऊ. व्यंजन संबंधी कुछ विशेष परिवर्तन

क. अनुरूपता

१४७. हिन्दी शब्दों मे कुछ उदाहरण मिलते हैं जिनमें दो भिन्न स्थानीय संयुक्त व्यंजनों में से एक दूसरे का रूप धारण कर लेता है या उसी स्थान के व्यंजन में परिवर्तित हो जाता है—

शक्कर	शर्करा
छत्तीस	षट्त्रिंशत्
बत्ती	वर्तिका

कुछ बोलियों में, विशेषतया कनौजी में, र् या ल् का निकट के व्यंजन में परिवर्तित हो जाना साधारण नियम है—

कनौ०	हि०
उद्द	उर्द
हद्दी	हलदी
मिच्चैं	मिरचें

बोलने में अनुरूपता के बहुत उदाहरण मिलते हैं किन्तु इन्हें लिखने में नहीं दिखाया जाता है—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
डाक घर	डाग्घर
एक गाड़ी	एग्गाड़ी
आध सेर	आस्सेर

ख. व्यंजन विपर्यय

१४८. व्यंजन विपर्यय के अनेक उदाहरण प्राचीन तथा आधुनिक शब्दों में बराबर मिलते हैं। विदेशी शब्दों में भी अकसर व्यंजनों के स्थान में परिवर्तन हो जाता है। नीचे कुछ रोचक उदाहरण दिये जा रहे हैं—

बिलारी	बिड़ाल
हलुक (बो०)	लघु-क
घर	गृह
पहिरना	√परि+धा
गडुर (बो०)	गरुड़
नखलऊ (बो०)	लखनऊ
नुस्कान (बो०)	नुक़्सान

अध्याय ३

विदेशी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन

अ. फ़ारसी-अरबी

१४९. विदेशी शब्दों के संबंध में भूमिका मे साधारण विवेचन हो चुका है। यहाँ इन विदेशी शब्दों के हिन्दी में आने पर ध्वनिपरिवर्तन के संबंध में विचार किया जायगा। हिन्दी में सबसे अधिक विदेशी शब्द फ़ारसी अरबी के हैं। प्रायः यह भुला दिया जाता है कि इन विदेशी भाषाओं मे फ़ारसी आर्य भाषा है जिस के प्राचीनतम रूप—अवस्ता की भाषा—का ऋग्वेद की भाषा से बहुत निकट का संबंध है और अरबी भिन्न कुल की भाषा है जिसका आर्य भाषाओं से अब तक किसी प्रकार का भी संबंध स्थापित नहीं हो सका है। अरबी और फ़ारसी शब्दों मे होने वाले ध्वनिपरिवर्तन को समझने के लिए अरबी और फ़ारसी की ध्वनियों के संबंध में ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है अतः इन भाषाओं की ध्वनियों का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जाता है।

क. अरबी ध्वनिसमूह

१५०. अरबी ध्वनिसमूह[1] में ३२ व्यंजन, ९ मूलस्वर तथा ४ संयुक्त स्वर हैं। आधुनिक शास्त्रीय दृष्टि से ये नीचे वर्गीकृत[2] हैं—

---

[1] गेर्डनर, फोनेटिक्स आव ऐरेबिक।

[2] चै., वें., लैं., § २०८।

व्यंजन	द्व्योष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंतमध्य स्थानीय	वर्त्स्य या दन्त्य — साधारण	वर्त्स्य या दन्त्य — कंठस्थान युक्त	तालु तथा वर्त्स्य स्थानीय	तालव्य	कंठ्य	अलिजिह्व	उपालिजिह्व	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	ब्			त् द्	त्‌ द्‌		ज्	क् ग्	क़		?
अनुनासिक	म्			न्							
पार्श्विक					ल्‌ झ़्‌	ल्					
कंपनयुक्त						र्					
संघर्षी		फ्	थ़् द़्	स् ज़्	स्‌ ज़्‌	श् झ़्			ख़् ग़्	ह् ʕ	ह्
अर्द्धस्वर	व्						य्				
स्वर	इन नौ मूलस्वरों के अतिरिक्त अइ, अउ, ऑइ और ऑउ ये चार मुख्य संयुक्त स्वर माने जाते हैं।						ई ए —अ— ऍ अ	ऊ ओ ऑ आ			

सूचना—अघोष ध्वनियों के नीचे लकीर खिंची है, शेष ध्वनियाँ घोष हैं।

अरबी ध्वनिसमूह में कुछ ध्वनियाँ असाधारण हैं। त्‌, द्‌, ल्‌, झ़्‌, स्‌, ज़्‌ कंठस्थान युक्त वर्त्स्य ध्वनियें हैं। इनके उच्चारण में जीभ की नोक वर्त्स स्थान को छूती है और साथ ही जीभ का पिछला भाग कोमल तालु

की ओर उठता है। इस तरह जीभ बीच मे नीची और आगे पीछे ऊँची हो जाती है। ल् ध्वनि अरबी में केवल अल्लाह शब्द के उच्चारण में प्रयुक्त होती है। ये समस्त ध्वनियाँ एक तरह से द्विस्थानीय हैं।

ह् का उच्चारण कौवे के पीछे हलक की नली की पिछली दीवार से जिह्वामूल के नोचे उपालिजिह्वा को छुवाकर किया जाता है। इसके उच्चारण मे एक विशेष प्रकार की जोरदार फुसफुसाहट की आवाज़ होती है। ह् उपालिजिह्व अघोष संघर्षी ध्वनि है और ꞉ अर्थात् ऐन (अ़) उपालिजिह्व घोष संघर्षी ध्वनि है।

꞉ अर्थात् हम्ज़ा-अलिफ के उच्चारण में स्वरयंत्र मुख बिलकुल बन्द हो कर सहसा खुलता है। इस का उच्चारण हलके खाँसने की ध्वनि से मिलता जुलता समझना चाहिये। ꞉ स्वरयंत्रमुखी, अघोष, स्पर्श ध्वनि है। ह् स्वरयंत्रमुखी घोष संघर्षी ध्वनि है।

१५१. अरबी लिपि मे केवल व्यंजनों के लिये लिपि चिह्न हैं, स्वरों के लिये पृथक् चिह्न नहीं हैं। दीर्घ स्वरों में से तीन तथा दो संयुक्त स्वरों के लिये व्यंजन चिह्नों मे से ही तीन प्रयुक्त होते हैं—'हम्ज़ा' (ء) के बिना 'अलिफ' (ا) आ के लिये, 'इये' (ى) ई, अइ के लिये तथा 'वाओ' (و) ऊ अउ के लिये। शेष स्वरों को लिपि द्वारा प्रकट करने का कोई साधन मूल अरबी में नहीं है। ३२ व्यंजन ध्वनियों को प्रकट करने के लिये भी केवल २८ चिह्न हैं अतः नीचे लिखी सात ध्वनियाँ केवल तीन चिह्नों से प्रकट की जाती हैं। 'जोय' (ظ) झ् ज् के लिये, 'लाम' (ل) ल् ल् के लिये, और 'जीम' (ج) झ़् ज् और ग् के लिये प्रयुक्त होती है।

ख. फ़ारसी ध्वनिसमूह

१५२. अरबी से प्रभावित होने के पूर्व छठी सदी ईसवी तक फारसी भाषा पहलवी लिपि मे लिखी जाती थी। नीचे मध्यकालीन फ़ारसी (पहलवी) की २४ व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण[1] दिया जा रहा है—

---

[1] चै., वें. लैं., § ३०७।

व्यंजन

	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दन्त्य	तालव्य-वर्त्स्य	कंठ्य	जिह्वा-मूलीय	स्वरयंत्र मुखी
स्पर्श	प् ब्		त् द्		क् ग्		
स्पर्श संघर्षी				च़् ज़्			
अनुनासिक	म्		न्				
पार्श्विक				ल्			
कंपन युक्त				र्			
संघर्षी		फ़् व्	स् ज़् द़्	श् झ़्		ख़् ग़्	ह्
अर्द्ध स्वर	व़्			य्			

अरबी के समान पहलवी मे भी स्वरों के लिये पृथक् चिह्न नहीं थे। उच्चारण की दृष्टि से पहलवी में व्यवहृत स्वरों को नीचे लिखे ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है—

स्वर

	अग्र	पश्च
संवृत्	ई इ	ऊ उ
अर्द्ध संवृत्	ए ऎ	ओ ऒ
विवृत्	अ	आ
संयुक्त स्वर	अइ	अउ

१५३. सातवीं सदी ईसवी में जब अरबों ने ईरान को पराजित कर ईरानी धर्म और सभ्यता के स्थान पर अपने इस्लाम धर्म और अरबी सभ्यता को स्थानापन्न किया तो बहुत बड़ी संख्या में अरबी शब्दसमूह को लेने के साथ साथ फारसीभाषा अरबी लिपि में लिखी जाने लगी। फारसी के लिये व्यवहृत होने पर अरबी वर्णों के उच्चारण तथा संख्या दोनों में परिवर्तन करना पड़ा। अरबी वर्णों की संख्या फारसी में ३२ कर दी गई। इसका तात्पर्य यह है कि पहलवी में पाये जाने वाले २४ वर्णों में आठ नये अरबी वर्ण जोड़ दिये गये यद्यपि फारसी में आने पर इन मूल अरबी वर्णों के उच्चारण भिन्न अवश्य हो गये। अरबी के ये आठ विशेष वर्ण निम्न लिखित हैं—

वर्ण का उर्दू नाम	अरबी उच्चारण	फारसी उच्चारण
से (ث)	थ़्	स्
हे (ح)	ह्	ह़्
स्वाद् (ص)	स्	स्
ज्वाद् (ض)	द्	ज्
तोय (ط)	त्	त्
जोय (ظ)	ज्	ज्
ऐन् (ع)	ء	अ
काफ (ق)	क़्	क्

अरबी ध्वनियों का उच्चारण फारसी ध्वनियों के सदृश कर लेने के कारण इस नई फारसी-अरबी वर्णमाला में कई कई वर्णों के उच्चारण में सादृश्य हो गया। ये नीचे दिखलाया जा रहा है—

वर्ण का उर्दू नाम	अरबी उच्चारण	फारसी उच्चारण
सीन (س)	स्	स्
स्वाद् (ص)	स्	
से (ث)	थ्	

ज़े	(ز)	ज़्	ज़्
ज़ोय	(ظ)	ज़्	
ज़्वाद	(ض)	द़्	
हे	(ح)	ह़्	ह़्
हे	(ه)	ह़्	
ते	(ت)	त़्	त़्
तोय	(ط)	त़्	

अलिफ-हम्ज़ा में हम्ज़ा का उच्चारण फ़ारसी में नहीं होता था।

साथ ही फ़ारसी में चार नई ध्वनियाँ थी जो अरबी में मौजूद नही थीं। इनके लिये अरबी चिह्नों को कुछ परिवर्तित करके नये चिह्न गढ़े गये। ये चार ध्वनियाँ और चिह्न निम्नलिखित हैं—

ध्वनिये	नये चिह्न
प्	پ (पे)
च्	چ (चे)
झ्	ژ (झे)
ग्	گ (गाफ़्)

इन परिवर्तनों को करने के बाद अरबी वर्णमाला के फ़ारसी रूपान्तर में वर्णों की संख्या ३२ (२४+८) हो गई। अरबी के समान ये भी सब व्यंजन ही रहे। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दुस्तान में फ़ारसी भाषा तथा शब्द समूह लगभग १००० से १६०० ईसवी के बीच मे आया था अतः हिन्दुस्तान की फ़ारसी भाषा तथा शब्द समूह में कुछ पुरानापन है जो फ़ारस की आधुनिक फ़ारसी मे नही पाया जाता। आधुनिक फ़ारसी और मध्यकालीन फ़ारसी के ध्वनिसमूह मे विशेष अन्तर नहीं है।

ग. उर्दू वर्णमाला

१५४. १२०० ईसवी के बाद जब मुसलमान विजेताओं के साथ साथ अरबी और फ़ारसी भाषा तथा अरबी-फ़ारसी लिपि का प्रचार हिन्दुस्तान में हुआ तब हिन्दुस्तानी भाषाओं के शब्दों को लिखने के लिये अरबी-फ़ारसी लिपि में फिर कुछ परिवर्तन करने पड़े। कुछ विशेष हिन्दुस्तानी ध्वनियों को प्रकट करने के लिये तीन नये चिह्न बना कर बढ़ाये गये। ये चिह्न और ध्वनियें नीचे दी हैं—

नई ध्वनियें	नये चिह्न	
ट्	ٹ	(टे)
ड्	ڈ	(डाल्)
ड़्	ڑ	(ड़े)

इस तरह मूल अरबी लिपि के वर्तमान हिन्दुस्तानी रूप में, जो साधारणतया उर्दू लिपि के नाम से पुकारी जाती है, वर्णों की संख्या ३५ (३२+३) है।

स्वरों का बोध कराने के लिये व्यंजनों के साथ नीचे लिखे चिह्नों तथा व्यंजनों का व्यवहार किया जाता है—

स्वर	चिह्नों के नाम	चिह्न	उदाहरण
अ	जबर्	َ	سَت (सत)
इ	ज़ेर्	ِ	سِت (सित)
उ	पेश्	ُ	سُت (सुत)
आ	अलिफ़	ا	سات (सात)
ई	जेर+इये	ِي	سِيت (सीत)
ए	इये	ي	سيت (सेत)
ऐ	जबर+इये	َي	سَيت (सैत)
ऊ	पेश+वाओ	ُو	سُوت (सूत)

ओ	वाओ	و سوت (सोत)
औ	ज़बर्+वाओ	وَ سَوت (सौत)

नित्य प्रति के लिखने मे ज़ेर, ज़बर, पेश् प्राय: नही लगाये जाते अत: तीन ह्रस्व स्वरों का भेद दिखलाया ही नही जाता तथा शेष सात दीर्घ स्वरों में आ के लिये अलिफ़ (ا), ई, ए, ऐ, के लिये 'इये' (ی) तथा ऊ, ओ, औ के लिये 'वाओ' (و) का व्यवहार किया जाता है। मुड़िया के समान उर्दू लिपि के पढ़ने मे सब से अधिक कठिनाई इसी कारण पड़ती है। साथ ही इन उर्दू मात्राओं के न लगाने से मुड़िया की तरह उर्दू लिपि भी देवनागरी की अपेक्षा कुछ अधिक तेज़ी से लिखी जा सकती है।[1]

---

[1] अरबी-फारसी लिपि में तीन चिह्न बढा लेने के बाद भी उर्दू लिपि समस्त हिंदी ध्वनियों को प्रकट करने में असमर्थ रही अत: सयुक्त चिह्नो से काम लिया जाने लगा। उदाहरण के लिये हिन्दी की समस्त महाप्राण ध्वनियाँ रोमन अनुलिपि के समान अल्पप्राण चिह्न में ह् (ھ) लगाकर प्रकट की जाती हैं। ङ्, ञ् और ण् अनुनासिक व्यंजनो को प्रकट करने के लिये अब भी कोई चिह्न नहीं हैं। स्वरो के लिये भी विशेष चिह्नो का प्रयोग साधारणतया नहीं किया जाता।

हिन्दी वर्णमाला की उर्दू अनुलिपि निम्नलिखित है—

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
ـَ	ا	ـِ	ـِی	و	وٗ	ی	یَ	و	وَ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
ک	کھ	گ	گھ	×
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
چ	چھ	ج	جھ	×
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ٹ	ٹھ	ڈ	ڈھ	×
त्	थ्	द्	ध्	न्

१५५. नीचे के कोष्ठक मे अरबी, फारसी, तथा उर्दू वर्णमालायें तुलनात्मक ढग से दो गई हैं। साथ में देवनागरी के आधार पर बनाये गये लिपि चिह्न तथा उर्दू वर्णमाला की देवनागरी अनुलिपि भी दी गई है—

अरबी		फारसी		उर्दू		
अरबी लिपि चिह्न	ध्वनि देवनागरी मे	फारसी लिपि चिह्न	ध्वनि देवनागरी में	उर्दू लिपि चिह्न	देवनागरी अनु-लिपि	ध्वनि देवनागरी में
ا	?	ا	अ	ا	अ	अ
ب	ब्	ب	ब्	ب	ब्	ब्
×	×	پ	प्*	پ	प्	प्
ت	त्	ت	त्	ت	त्	त्
×	×	×	×	ٹ §	ट्	ट्
ث	थ्	ث	स्†	ث	स्	स्
ج	ज्	ج	ज्	ج	ज्	ज्
×	×	چ	च्*	چ	च्	च्

ت　تھ　د　دھ　ں
प्　फ्　ब्　भ्　म्
پ　پھ　ب　بھ　م
य्　र्　ल्　व्
ی　ر　ل　و
श्　स्　ह्
ش　س　ہ या ح
ड़्　ढ़्
ڑ　ڑھ

ح	ह्	ح	ह्ा	ح	ह्	ह्
خ	ख़्	خ	ख्	خ	ख्	ख्
د	द्	د	द्	د	द्	द्
×	×	×	×	ڈ §	ड्	ड्
ذ	द्	ذ	ज़् (द्)	ذ	ज़्	ज्
ر	र्	ر	र्	ر	र्	र्
×	×	×	×	ڑ§	ड़्	ड़्
ز	ज़्	ز	ज़्	ز	ज़्	ज़्
×	×	ژ	झ़्	ژ	झ़्	झ़्
س	स्	س	स्	س	स्	स्
ش	श्	ش	श	ش	श्	श्
ص	स़्	ص	स्ा	ص	स्	स्
ض	द्	ض	ज्ा	ض	ज़्	ज्
ط	त्	ط	त्ा	ط	त्	त्
ظ	ज़्	ظ	ज्ा	ظ	ज़्	ज्
ع	॰	ع	अा	ع	अ्	अ
غ	ग़्	غ	ग़्	غ	ग़्	ग़्
ف	फ़्	ف	फ़्	ف	फ़्	फ़्
ق	क़्	ق	क़्ा	ق	क़्	क़्
ک	क्	ک	क्	ک	क्	क्
×	×	گ	ग्*	گ	ग्	ग्
ل	ल्	ل	ल्	ل	ल्	ल्

م	म्	م	म्	م	म्	म्
ن	न्	ن	न्	ن	न्	न्
و	व़्	و	व्	و	व्	व्
ه	ह्	ه	ह़्	ه	ह्	ह्
ی	य्	ی	य्	ی	य्	य्
२८		३२		३५		

सूचना—† ये चिह्न उन आठ वर्णों पर लगाये गये हैं जो अरबी के विशेष वर्ण होने के कारण फारसी के मूल २४ पहलवी वर्ण समूह में जोड़े गये थे जिससे फारसी मे व्यवहृत अरबी शब्द सुविधा से लिखे जा सकें। इनको छोड़ कर शेष २४ वर्ण फारसी के अपने हैं। इन नये आठ वर्णों का प्रयोग केवल अरबी शब्दों मे मिलता है।

* ये चिह्न फारसी के उन चार विशेष वर्णों पर लगाये गये हैं जिनके लिये अरबी मे ध्वनि चिह्न मौजूद नहीं थे। न ये ध्वनियें ही अरबी मे थी। अतः फारसी भाषा लिखने को प्रयुक्त होने पर मूल अरबी लिपि में इनके लिये चार नये चिह्न गढ़े गये थे।

§ ये चिह्न उन तीन वर्णों पर लगाये गये हैं जो हिन्दुस्तानी भाषाओं की आवश्यकता के कारण अरबी-फारसी लिपि मे बढ़ाये गये थे।

फारसी वर्णमाला के समान ही उर्दू वर्णमाला में भी अरबी के तत्सम शब्दों में अरबी वर्ण लिखे तो जाते हैं किन्तु उनका उच्चारण हिन्दुस्तानी मुसलमान भी साधारणतया अपनी ध्वनियों की तरह करते हैं। अतः लिखने में भिन्न चिह्नों का प्रयोग करने पर भी उच्चारण की दृष्टि से स़् (ث), स़् (ص) स् (س) का उच्चारण स् (س), त़् (ط) त् (ت) का उच्चारण त् (ت), ह़् (ح) ह् (ه) का उच्चारण ह् (ه), और ज़् (ذ) ज़् (ض) ज़् (ظ) ज़् (ز) का उच्चारण ज़् (ز) के समान होता है। ع (ع) का उच्चारण भी अ (ا) से भिन्न साधारणतया नहीं किया जाता।

घ. फारसी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन

१५६. ऊपर के विवेचन से यह कदाचित् स्पष्ट हो गया होगा कि हिन्दी मे अरबी तथा तुर्की शब्द भी फारसी भाषा के द्वारा आये हैं अत ऐसे शब्दों के साथ मूल अर्बी या तुर्की ध्वनियाँ नही आ सकी हैं। फारसी मे आने पर अरबी और तुर्की शब्दो की ध्वनियों मे जो परिवर्तन हो चुके थे उन्ही परिवर्तित रूपों में ये शब्द हिन्दी मे पहुँचे हैं। व्यवहारिक दृष्टि से हिन्दी के लिये ये शब्द अरबी या तुर्की भाषा के न होकर फारसी भाषा के ही हैं।

✓ फारसी और हिन्दी की अधिकाश ध्वनियो मे समानता है किन्तु फारसी मे कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो हिन्दी मे नही हैं। ये ध्वनियाँ फारसी-अरबी तत्सम शब्दो मे सुनाई पडती हैं और इनके लिये देवनागरी मे निम्नलिखित परिवर्तित लिपि चिह्नो का प्रयोग होता आया है—क़ ख़ ग़ ज़ फ़। इन में झ़ भी शामिल किया जा सकता है। श् ध्वनि संस्कृत मे पहले ही से मौजूद थी। फारसी श् तथा संस्कृत श् मे थोडा ही भेद है। साहित्यिक हिन्दी मे फ़ारसी-अरबी शब्दो की इन विशेष ध्वनिया का उच्चारण तथा लिखने मे बराबर प्रयोग किया जाता है।

फारसी तत्सम शब्दों से पूर्ण उर्दू भाषा के बोले जाने वाले या लिखे जाने वाले रूप से अधिक परिचित होने के कारण पश्चिमी सयुक्त प्रान्त तथा दिल्ली प्रान्त के रहने वाले हिन्दी लेखक इन विदेशी ध्वनियों का व्यवहार बातचीत तथा लिखने दोनो मे ही शुद्ध रीति से कर सकते हैं और बराबर करते हे। किन्तु पूर्वी संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा कमायू-गढवाल के प्रदेशों मे रहनेवाले हिन्दी बोलने वालो तथा हिन्दी लेखको को दिल्ली, आगरा, तथा लखनऊ के उर्दू केन्द्रों से दूर रहने के कारण इन विदेशी ध्वनियो के व्यवहार मे कठिनाई पडती है और ये लोग इन ध्वनियों का व्यवहार प्राय शुद्ध नही कर पाते। इसी कारण कभी कभी इन विदेशी ध्वनियों तथा उनके लिये प्रयुक्त विशेष लिपि चिह्नो के व्यवहार को साहित्यिक हिन्दी से हटा देने का प्रस्ताव उठा करता है।

हिन्दी के केन्द्र सयुक्त प्रान्त की विशेष परिस्थिति के कारण यहाँ के शिष्ट लोगों मे जरा को ज़रा, गरीब को ग़रीब, सराब को स़राब बोलना या लिखना

ग्राम्य दोष समझा जाता है और कदाचित् भविष्य में भी अभी बहुत दिनों तक समझा जायगा। इस का मुख्य कारण संयुक्त प्रान्त में उर्दू भाषा तथा मुसल्मानी संस्कृति का प्रभाव ही है। इन दोनों प्रभावों के निकट भविष्य में दूर या क्षीण होने की संभावना नहीं दिखलाई पड़ती। ऐसी परिस्थिति में इन विशेष ध्वनियों वाले फारसी शब्दों को साहित्यिक हिन्दी में निकटतम तत्सम रूपों में ही लिखना तथा बोलना उचित प्रतीत होता है। उपर्युक्त प्रभावों से दूर होने के कारण बंगाली, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में फारसी शब्दों की विशेष ध्वनियों के संबंध में इस तरह की कठिनाई नहीं उठती। इन भाषाओं के साहित्यिक रूपों में भी, हिन्दी की ग्रामीण बोलियों के समान, ऐसी विशेष विदेशी ध्वनियों के स्थान पर भारतीय निकटवर्ती ध्वनियों का व्यवहार पढ़े लिखे लोगों के बीच में भी पूर्ण स्वतंत्रता से होता आया है। परिस्थिति की विभिन्नता के कारण साहित्यिक हिन्दी को इस बात में बंगाली आदि की नकल नहीं करनी चाहिये।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि लिखने में भेद करने पर भी बोलने में साधारणतया फारसी में ही कई कई ध्वनियों में साम्य हो गया था। उर्दू में भी इन विशेष वर्ण समूहों में उच्चारण की दृष्टि से भेद नहीं किया जाता अतः हिन्दी में इन भिन्न वर्णों के लिये इकहरे वर्णों अर्थात् स्, ज्, त्, अ तथा ह् का व्यवहार करना युक्ति संगत ही है। साहित्यिक हिन्दी में शिष्ट भाषा में ध्वनि संबंधी इन मुख्य परिवर्तनों को करने के बाद फारसी अरबी शब्दों का न्यूनाधिक व्यवहार बराबर पाया जाता है।

१५७. फारसी अरबी शब्दों के हिन्दी में प्रयुक्त होने पर मुख्य मुख्य परिवर्तनों का उल्लेख संक्षेप में नीचे किया जाता है[१]—

---

[१] चै, वें. हैं, § ३१२-३५३।

सकसेना, पर्शियन लोनवर्ड्स इन दि रामायन आव तुलसीदास, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज भाग १, पृ० ६३।

स्वर

(१) फारसी इ ई उ ऊ ए ओ ध्वनियें फ़ारसी और हिन्दी में समान हैं अतः इन मे साधारणतया कोई परिवर्तन नही होता—

	हि०	फ़ा०
इ :	इनाम	इनाम्
ई :	ईमान	ईमान्
उ :	फ़ुरसत	फ़ुर्सत्
ऊ :	क़ानून	क़ानून्
ए :	तेज़	तेज़्
ओ :	ज़ोर	ज़ोर्

(२) फारसी अ अग्र विवृत् स्वर था हिन्दी में यह अर्द्धविवृत् मध्य स्वर अ हो जाता है—

हि० क़दम फा० क़́दम्

हि० मसला फा० म́स́ल́ह्

(३) फ़ारसी में ए ओ ध्वनियें हैं अवश्य किन्तु उच्चारण मे इन का झुकाव बराबर इ उ की तरफ़ रहता है। हिन्दी मे इन के स्थान पर बराबर इ उ ही मिलता है।

(४) फारसी संयुक्त स्वर अइ अउ हिन्दी मे क्रम से ऐ (अए) औ (अओ) हो जाते हैं—

फा० अइ : हि० मैदान फा० मइदान्

फ़ा० अउ : हि० मौसम फ़ा० मउसम्

(५) स्वरलोप तथा स्वर परिवर्तन के उदाहरण भी बराबर पाये जाते हैं—

हि०	फा०
मसला	म́स́ल́ह्

ज़ात्ती	*ज़ियादती*
मामला	*मुआमलह्*
माफ़िक़	*मुवाफ़िक़्*

(६) स्वरागम के उदाहरण भी बराबर मिलते हैं—

हि०	फा०
निरख़	*निर्ख़्*
शामियाना	*शामानह्*
हुकुम	*हुक्म्*

व्यंजन

(७) अरबी ह् और ह् फारसी में ह् मे परिवर्तित हो गये थे। हिन्दी में फारसी ह् के स्थान पर प्रायः ह् हो जाता है—

हि०	फा०
हवा	ह़वा
हुनर	ह़ुनर्
मुहर्रम	मुह़र्रम्

संयुक्त व्यंजनों के आने पर ह् का या तो लोप हो जाता है या बीच में स्वर डाल दिया जाता है—

हि०	फा०
मुहर	मुह्र्
फ़ेरिस्त	फ़िह्रिस्त्

फारसी शब्दों का 'हा-इ-मुख़्तफ़ी' अर्थात् उच्चरित न होने वाला अन्त्य ह् पूर्व अ के साथ मिल कर हिन्दी में आ में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	फा०
किनारा	*क्निार्ह्*
ख़ज़ाना	*ख़ज़ान्ह्*

(८) अरबी ॽ (ع) फारसी में ॽ से मिलती जुलती ध्वनि मे परिवर्तित हो गया था। हिन्दी में ॽ का लोप हो जाता है या इसके स्थान पर प्रायः अ हो जाता है—

हि०	फा०
जमा	*जम्ॽ*
तावीज़	*तॽवीद्*
अजब	*ॽअजब्*
अरब	*ॽअरब्*

(९) फारसी क्, ग्; च् ज्; त् द्; प् ब्; ड् न् म्; र् ल्; स्; य् हिन्दी ध्वनियों के ही समान होने के कारण इनमे साधारणतया परिवर्तन नहीं किये जाते—

हि०	फा०
किताब	*किताब्*
गरम	*गर्म्*
चाकर	*चाकर्*
जमा	*जम्ॽ*
तख़्ता	*तख़्तह्*
दाग़	*दाग़्*
पीर	*पीर्*
बस्ता	*बस्तह्*

फ़िरंगी	फ़िरङ्गी
निमाज़	नमाज़्
मीनार	मीनार्
रास	रास्
लाल	ला॰ल्
सिपाही	सिपाही
याद	याद्

ऊपर के नियम के संबंध मे कुछ अपवाद भी बराबर पाये जाते हैं।

(१०) फारसी द् हिन्दी में ज़ या द में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	फा०
कागज़, कागद (बो०)	कागद्
खिदमत, खिजमत (बो०)	खिद्मत्

(११) फ़ारसी के अन्त्य न् के स्थान पर हिन्दी में पिछला स्वर अनुनासिक कर दिया जाता है—

हि०	फा०
ख़ां	ख़ान्
मियां	मियान्

(१२) व्यंजनों के संबंध मे कुछ अन्य असाधारण परिवर्तनों के उदाहरण रोचक होंगे—

विपर्यय

हि०	फ़ा०
फ़लीता	फ़तीलह्
लहमा	लम्हा

मुचलका	मुचल्कह्

लोप

हि०	फा०
मजदूर	मुज़्दूर्
मसीत (बो०)	मस्जिद्
जिद	ज़िद्द्

(१३) हिन्दी बोलियों में साधारणतया क़् ख़् ग़् ज़् फ़् श् और व् के स्थान पर क्रम से क् ख् ग् ज् फ् स् और ब् हो जाते हैं। उर्दू प्रभाव से दूर रहने वाले हिन्दी लेखक या बोलने वाले साहित्यिक-हिन्दी में भी प्रयोग करते समय फ़ारसी अरबी शब्दों में इस तरह के परिवर्तन कर देते हैं—

हि०	फ़ा०
कीमत	क़ीमत्
खबर	ख़बर्
गरीब	ग़रीब्
जालिम	ज़ालिम्
रजाई	रज़ाई
फारसी	फ़ारसी
निसान	निशान्
बिकालत	वकालत्

(१४) हिन्दी बोलियों में कुछ असाधारण ध्वनि परिवर्तन भी पाये जाते हैं—

फा क् < हि० ग्　हि० तगादा　　फा० तक़ादह
　　　　　　　हि० नगद　　　फा० नक़्द

आ. अंग्रेजी

१५८, लगभग १६०० ईसवी से भारत में यूरोपीय जाति के लोगों का आना जाना प्रारम्भ हुआ था और तभी से कुछ यूरोपीय शब्दों का व्यवहार भारत मे होने लगा था। किन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना हिन्दी प्रदेश में लगभग १८०० ईसवी से हुई थी और तब से अंग्रेजी सभ्यता और भाषा तथा ईसाई धर्म की गहरी छाप हिन्दी भाषियों पर पडना प्रारम्भ हुई। दक्षिण भारत तथा समुद्र के किनारे के प्रदेशों की तरह हिन्दी प्रदेश फ्रासीसी, पुर्तगाली आदि जातियों के विशेष सपर्क में कभी नही आया। हिन्दी में थोडे से फ्रासीसी तथा पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द[1] आ गये हैं, किन्तु इनकी संख्या अत्यन्त परिमित है। हिन्दी की अपेक्षा बगला[2] आदि में इनकी सख्या कहीं अधिक है। यूरोपीय भाषाओं में से अंग्रेजी भाषा के शब्द हिन्दी मे सब से अधिक सख्या में आये हैं और यह स्वाभाविक ही है।

क, अंग्रेजी ध्वनि समूह

१५९. अंग्रेजी मे होने वाले ध्वनि परिवर्तनों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि सक्षेप मे अंग्रजी ध्वनियों को समझ लिया जाय। अंग्रेजी ध्वनियों का वर्गीकरण[3] निम्नलिखित ढग से किया जा सकता है—

---

[1] दे भूमिका, 'विदेशी भाषाओ के शब्द'।

[2] बगला में व्यवहृत पुर्तगाली शब्दों के सबध में दे, चै, बें, लैं अ० ७।

[3] वा फो, ६, § ९२, § ९६, § २१४।

व्यंजन

	ओष्ठ्य		दन्त्य		तालव्य			
	द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	तालव्य-वर्त्स्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्र मुखी
स्पर्श	प् ब्			ट् ड्			क् ग्	
स्पर्श संघर्षी					च् ज्			
अनुनासिक	म्			न्			ङ्	
पार्श्विक				ल्			ल़्	
लुठित				र्				
संघर्षी		फ़् व़्	थ् द़्	स् ज़्	श् झ़्			ह्
अर्द्धस्वर	व़्					य्	(व़्)	
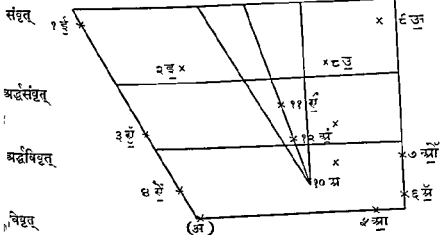
संयुक्तस्वर

१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
एइ,	ओउ	अइ	अउ	ऑइ	इअ	ऍअ	ऑअ	उअ

सूचना—अंग्रेजी स्पर्श प् ब्, क् ग् के उच्चारण में स्वराघात युक्त शब्दांश में कुछ हकार की ध्वनि आ जाती है[1] किन्तु यह हकार का अंश इतना कम होता है कि लिखने मे नहीं दिखाया जाता और इस कारण ये अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हिन्दी के महाप्राण स्पर्श व्यंजनों (फ् भ्, ख् घ्) के समान नहीं हो जाते।

वाक्य में जोर देने के लिये तथा कुछ अन्यस्थलों पर भी अंग्रेजी के कुछ शब्दों मे स्वरयंत्रमुखी स्पर्श[2] (अलिफ हम्जा) की ध्वनि सुनाई पडती है किन्तु इसकी गिनती साधारणतया अंग्रेजी मूलध्वनियों में नहीं की जाती।

ख. अंग्रेज़ी शब्दों में ध्वनि परिवर्तन

मूलस्वर

१६०. अंग्रेजी और हिन्दी की अधिकांश ध्वनियाँ समान हैं किन्तु अंग्रेजी में कुछ नवीन ध्वनियें भी हैं। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण में इन नवीन ध्वनियों के संबंध में ही हिन्दी भाषा भाषियों को कठिनाई पड़ती है।

अंग्रेजी मूलस्वरो मे ई (सी : *see*), इ (सिट् : *sit*), आ, (काम् · *calm*), उ (पुट् *put*), ऊ (सून् : *soon*) तथा अ (बट् : *but*) हिन्दी मूलस्वरों से विशेष भिन्न नहीं है अतः इन अंग्रेजी स्वरों का उच्चारण हिन्दी भाषा भाषी शुद्ध कर लेते हैं। शेष छः मूलस्वर हिन्दी मे नहीं पाये जाते अतः इनका स्थान कोई न कोई हिन्दी स्वर ले लेता है।

ऍ : यह अर्द्ध विवृत ह्रस्व अग्रस्वर है किन्तु इसका उच्चारण प्रधान स्वर ए की अपेक्षा काफी ऊपर की तरफ होता है। हिंदी में इस अंग्रेजी स्वर के स्थान पर इ या ए हो जाता है।

---

१ वा., फो. इं , § २१८।

२ वा., फो. इ , § २२७ (सी)।

हि०	अं०
कालिज, कालेज	कॉलेँज् (*college*)
बिंच, बेंच	बेँन्च् (*bench*)

ऍ : यह भी अर्द्धविवृत् ह्रस्व अग्रस्वर है किन्तु इसका उच्चारण प्रधान स्वर ऍ से बहुत नीचे की तरफ और प्रधान स्वर अ के निकट होता है। हिन्दी मे यह प्रायः ऐ (अए) में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	अं०
मैन	मैँन् (*man*)
गैस	गैँस् (*gas*)

ॲ : यह अर्द्ध विवृत् ह्रस्व पश्च स्वर है किन्तु इसका स्थान प्रधान स्वर आ की अपेक्षा कुछ ही ऊपर की तरफ है। हिन्दी मे यह प्रायः आ मे परिवर्तित हो जाता है—

हि०	अं०
चाक	चॅक् (*chalk*)
आफिस	ऑफिस् (*office*)

ऑ : यह अर्द्ध विवृत् दीर्घ पश्च स्वर है किन्तु इसका उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर ऑ की अपेक्षा नीचे की तरफ होता है। हिन्दी मे इसके स्थान मे भी प्रायः आ हो जाता है। अब कुछ दिनो से ॲ, तथा ऑ दोनो के लिये ऑ लिखने का रिवाज हो रहा है—

हि०	अं०
ला, लॉ	लॉ (*law*)
बाट, बॉट	बॉट (*bought*)

ऍ : यह अर्द्ध विवृत् दीर्घ मध्य स्वर है किन्तु इसका स्थान कुछ ऊपर की तरफ हटा है। हिन्दी मे इसके स्थान पर प्राय: अ हो जाता है।

हि०	अं०	
बर्ड	बॅड्	*(bird)*
लर्न	लॅन्	*(learn)*

अं : यह अर्द्ध विवृत् ह्रस्व मध्य स्वर है। हिन्दी में इसके स्थान पर प्रायः अ हो जाता है—

अलोन	अंलोउन्	*(alone)*
बटर	बटं	*(butter)*

संयुक्तस्वर

१६१. अंग्रेजी के ढंग के संयुक्तस्वरों का व्यवहार हिन्दी मे नहीं है अतः इनके स्थान पर प्रायः दीर्घ मूलस्वर या हिन्दी के संयुक्त स्वर हो जाते हैं। कुछ में असाधारण संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग भी करना पडता है—

	हि०	अं०	
अं० एइ > हि० ए :	मेल	मेइल्	*(mail)*
	जेल	ज़ेइल्	*(jail)*
अं० ओउ > हि० ओ, अ :	बोट	बोउट्	*(boat)*
	कोट	कोउट्	*(coat)*
	रपट, रिपोट	रिपोउट्	*(report)*
अं० अइ > हि० ऐ (अए) आइ, ए :	टैम, टाइम, टेम	टइम्	*(time)*
	टाइप, टैप	टइप्	*(type)*
अं० अउ > हि० औ (अओ) आउ :	टौन, टाउन	टउन्	*(town)*
	कौन्सिल, काउन्सिल	कंउन्सिल्	*(council)*

अं० ऑइ > हि० व़ाय, वाइ ऐ (अए) : ब्व़ाय बॉइ (*boy*)
न्वाइज़् नॉइज़् (*noise*)
ऐन्टमेन्ट ऑइन्ट्मॅन्ट् (*ointment*)

अं० इअ़ > हि० इआ, इअ, ए : इन्डिआ इन्डिअ़ (*India*)
बिअर बिअ़ (*beer*)
एरन् इअ़-रिङ् (*earring*)

अं० ऍअ़ > हि० एअ, ए : शेअर, शेर शॅअ़ (*share*)
चेअर, चेर चॅअ़

अं० ऑअ़ > हि० ओ : मोर मॉअ़ (*more*)
बोर्ड बॉअ़ड् (*board*)

अं० उअ़ > हि० यो : प्योर पुअ़ (*pure*)
योर युअ़ (*Your*)

१६२. हिन्दी मे व्यवहृत् अंग्रेजी शब्दो मे स्वरागम के बहुत उदाहरण मिलते हैं। स्वरलोप के उदाहरण बहुत कम पाये जाते हैं। स्वरागम के उदाहरण शब्द के आदि मे संयुक्त व्यंजन के पूर्व मे मिलते हैं या संयुक्त व्यंजन के टूटने पर मध्य मे मिलते हैं, जैसे इस्टाम (*stamp*), इस्कूल (*school*), फ़ारम (*form*), बुरुश (*brush*), बिराडी (*brandy*)।

व्यंजन

१६३. अंग्रेजी व्यंजनों मे से कुछ हिन्दी मे नही पाये जाते अतः ये हिन्दी को निकटतम ध्वनियों मे परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी असाधारण ध्वनियों का विवेचन हिन्दी में पाये जाने वाले परिवर्तनों सहित नीचे दिया जा रहा है—

ट्॒ ड्॒ अंग्रेज़ी ट्॒ ड्॒ न तो हिन्दी के ट् ड् के समान मूर्द्धन्य हैं और न त् द् के समान दन्त्य हैं। ये वास्तव में वर्त्स्य हैं अर्थात् जीभ की नोक को दाँतों के ऊपर मसूढ़ों पर लगा कर इनका उच्चारण किया जाता है। वर्त्स्य ट्॒ ड्॒ के अभाव के कारण हिन्दी में ये ध्वनियें क्रम से ट् या त् और ड् या द् में परिवर्तित हो जाती हैं—

अ० ट्॒ > हि० ट् रपट (*report*), बालस्टर (*barrister*)

अ० ट्॒ > हि० त् अगस्त (*August*), सिकत्तर (*secretary*)

अ० ड्॒ > हि० ड् डिक्स (*desk*), डबल मार्च (*double march*)

अ० ड्॒ > हि० द् दिसम्बर (*December*) अर्दली (*orderly*)

च्॒ ज्॒ अंग्रेज़ी च्॒ ज्॒ का उच्चारण हिन्दी की तालव्य स्पर्श-संघर्षी च् ज् ध्वनियों से भिन्न है। अंग्रेज़ी ध्वनियों का उच्चारण कुछ कुछ ट्श् ड्झ् की तरह होता है। हिन्दी मे इनके स्थान पर क्रम से च् ज् हो जाता है—

अ० च्॒ > हि० च् चेयर (*Chair*), चेन (*chain*)

अ० ज्॒ > हि० ज् जज (*judge*), जेल (*jail*)

च्॒ ज्॒ के अतिरिक्त अंग्रेज़ी मे कुछ अन्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनियें[1] भी पाई जाती हैं किन्तु इनका व्यवहार च्॒ ज्॒ की अपेक्षा कम मिलता है। ये ध्वनियें मूल व्यजनों की अपेक्षा संयुक्त व्यजनो के अधिक समान मालूम पडती

[1] वा, फा इ, § २३१।

हैं अतः साधारणतया इन्हें अंग्रेज़ी मूल व्यंजन-ध्वनियों में नहीं सम्मिलित किया जाता। ये अन्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनियें उदाहरण सहित नीचे दी जाती हैं—

ट्थ्	:	एइट्थ्	(eighth)
ड्थ्	:	विड्थ्	(width)
ट्स्	:	ईट्स्	(eats)
ड्ज्	:	बैड्ज्	(beds)

ट्र् और ड्र् को भी कभी कभी इसी श्रेणी में रख लिया जाता है, जैसे ट्री (*tree*), ड्रॅ (*draw*)।

अंग्रेज़ी अनुनासिक व्यंजन म्, न्, ङ् का उच्चारण हिन्दी के इन अनुनासिक व्यंजनों के समान होता है अतः अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों में इनके आने पर हिन्दी में साधारणतया किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

ल् : स्वर के पहले अंग्रेज़ी ल् का उच्चारण हिन्दी ल् के समान ही होता है। इसे 'स्पष्ट ल्' कह सकते हैं। किन्तु व्यंजन के पहले या शब्द के अन्त में ल् का उच्चारण भिन्न ढंग से होता है जिसमें जीभ की नोक से वर्त्स्य स्थान को छूने के साथ साथ जीभ के पिछले हिस्से को कोमल तालु की ओर ऊपर उठा देते हैं जिससे जीभ मध्य भाग में कुछ झुक जाती है। इसे 'अस्पष्ट ल्'[1] कहते हैं। देवनागरी में इसे ल़् से प्रकट किया गया है। हिन्दी में अंग्रेज़ी की इन दोनों ल् ध्वनियों में भेद नहीं किया जाता और ल़् का उच्चारण भी ल् के समान ही किया जाता है, जैसे बोतल (*bottle*) पॅट्रोल (*petrol*)।

ल् के समान अंग्रेज़ी में र् के भी दो रूप पाये जाते हैं—एक लुंठित और दूसरा संघर्षी। संघर्षी र्[2] को देवनागरी में ऱ् से प्रकट

---

[1] वा., फो. इं., § २४०।

[2] वा., फो. इं., § २४८।

कर सकते हैं। संघर्षी ऱ् प्रायः शब्द के आरंभ में पाया जाता है। यह भेद इतना सूक्ष्म है कि इस पर यहाँ अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नही प्रतीत होती।

स्पर्श-संघर्षी ध्वनियों में .थ् .द् हिन्दी के लिये नई ध्वनियें हैं। .थ् .द् दन्त्य संघर्षी हैं। हिन्दी मे ये साधारणतया थ् द् अर्थात् दन्त्य स्पर्श ध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे थर्ड (*third*), थर्मामेटर (*thermometre*)। कुछ शब्दो मे अ० .थ् हि० ट् या ठ् मे भी परिवर्तित हो जाता है, जैसे ठेठर (*theatre*) लकलाट (*longcloth*)।

अंग्रेजी स्पर्श-संघर्षी ध्वनियों में से .फ् व् .ज् और श् से हिन्दी भाषा भाषी संस्कृत या फारसी प्रभाव के कारण परिचित थे अतः पढ़े लिखे लोग इनका उच्चारण शुद्ध कर लेते हैं। गाँव के लोग बोली में इन ध्वनियों को क्रम से फ् ब् ज् और स् मे परिवर्तित कर देते हैं, जैसे फुटबाल (*football*), बोट (*vote*) सिलिङ् (*shilling*),। अंग्रेजी ह् का उच्चारण हिन्दी ह् के समान है।

.झ् का प्रयोग हिन्दी मे प्रचलित बहुत कम अंग्रेजी शब्दों में पाया जाता है। यह साधारणतया .ज् मे परिवर्तित कर दिया जाता है, जैसे प्लेज़र (*pleasure*)।

अंग्रेजी ओष्ठ्य अर्द्धस्वर .व् के स्थान पर हिंदी में प्रायः दन्त्योष्ठ्य संघर्षी व् या ओष्ठ्य स्पर्श ब् हो जाता है, जैसे वास्कट (*waist coat*) वेटिङ् रूम (*waiting room*)।

अंग्रेजी और हिन्दी य् के उच्चारण मे कोई भेद नही है।

१६४. अंग्रेजी में नई ध्वनिये होने के कारण ऊपर दिये हुये अनिवार्य परिवर्तनों के अतिरिक्त अंग्रेजी विदेशी शब्दों में कुछ असाधारण ध्वनि परिवर्तन भी पाये जाते हैं। ये उदाहरण सहित नीचे दिये जाते हैं—

(१) अनुरूपता : कलट्टर (*collector*)

(२) विपर्यय : सिंगल (*signal*), डिकस (*desk*)

(३) व्यंजन लोप : बास्कट (*waist coat*)

(४) व्यंजनागम : मोटर (मोउटृ *motor*)

(५) वर्ग की घोष ध्वनि का अघोष तथा अघोष ध्वनि का घोष मे परिवर्तित होना : काग (*cork*), डिगरी (*decree*), लाट (*lord*)।

(६) ल् और न् में आपस मे परिवर्तन : लंबर (*number*), लमलेट (*lemonade*)।

अध्याय ४

✓ स्वराघात

१६५. स्वराघात दो प्रकार का होता है। एक स्वराघात तो वह है जिसमें आवाज़ का सुर ऊँचा या नीचा किया जाता है। इसको *गीतात्मक स्वराघात* कहते हैं। यह स्वराघात उसी प्रकार का है जैसा हम गाने में पाते हैं और इसका संबंध स्वरतंत्रियों के ढीला करने या तानने से है। दूसरे ढंग का स्वराघात वह है जिसमें आवाज़ ऊँची नीची नहीं की जाती बल्कि साँस को धक्के के साथ छोड़ कर जोर दिया जाता है। इसे *बलात्मक स्वराघात* कहते हैं। इसका संबंध नादतंत्रियों से न होकर फेफड़े से हवा फेंकने के ढंग पर होता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि बलात्मक स्वराघात और दीर्घस्वर, तथा कभी कभी गीतात्मक स्वराघात के भी, एक ही ध्वनि में पाये जाने के कारण इन सब में भेद करने मे कठिनाई हो जाती है।

अ. भारतीय आर्यभाषाओं के स्वराघात का इतिहास

क. वैदिक स्वराघात

१६६. स्वराघात की दृष्टि से प्रा० भा० आ० भाषा की विशेषता यह है कि वह गीतात्मक स्वराघात प्रधान भाषा है। वैदिक साहित्य में प्रत्येक शब्द के ऊपर नीचे जो चिह्न रहते हैं वे इसी स्वराघात के सूचक हैं। गीतात्मक

स्वराघात में तीन भेद हैं जिन्हे पारिभाषिक शब्दों मे उदात्त अर्थात् ऊँचा सुर, अनुदात्त अर्थात् नीचा सुर और स्वरित अर्थात् बीच का सुर कहते हैं।

वैदिक साहित्य मे गीतात्मक स्वराघात प्रकट करने के चार भिन्न ढग प्रचलित हैं। सामवेद को छोड कर ऋग्वेदादि तीनों वेदों की प्रचलित सहिताओं मे उदात्त-स्वर पर कोई चिह्न नही लगाया जाता है। कदाचित इसका कारण यह है कि प्रातिशाख्यो के अनुसार स्वरित का पूर्व भाग उदात्त से भी ऊँचा बोला जाता था अत सुर को दृष्टि से उदात्त और स्वरित मे वास्तव में स्थान परिवर्तन हो गया था। स्वरित स्वर के ऊपर खडी लकीर और अनुदात्त-स्वर के नीचे ब्रेडी लकीर लगाई जाती है। जैसे *अग्निना* शब्द में *अ* अनुदात्त, *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। पाद के आरभ मे आने वाले समस्त उदात्त चिह्न-हीन छोड दिये जाते हैं तथा प्रत्येक अनुदात्त चिह्नित रहता है किन्तु स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों मे केवल अन्तिम अनुदात्त को चिह्नित किया जाता है। जैसे *इम मे' गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि* में *म* उदात्त है किन्तु *गङ्गे यमुने सरस्वति* के समस्त स्वर अनुदात्त हैं, *शु* फिर उदात्त और *द्रि* अनुदात्त है। स्वराघात के चिह्नों की दृष्टि से प्रत्येक पाद पूर्ण माना जाता है। पद पाठ मे प्रत्येक शब्द पृथक् तथा पूर्ण माना जाता है।

ऋग्वेद की मैत्रायणी और काठक सहिताओं मे स्वरित स्वर के ऊपर खडी लकीर न करके उदात्त स्वर के ऊपर खडी लकीर की जाती है। जैसे इन सहिताओं में *अग्निना* मे *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। अनुदात्त का चिह्न ऋग्वेदादि के समान ही है किन्तु स्वरित का चिह्न दोनों सहिताओ मे कुछ भिन्न ढग से लगाया जाता है। सामवेद मे उदात्त, स्वरित और अनुदात्त स्वरों के ऊपर क्रम से १, २, ३ के अक बनाये जाते हैं, जैसे *अग्निना* (३ १ २)। शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्त चिह्नित किया जाता है और इसके लिये स्वर के नीचे अनुदात्त वाली आडी लकीर का व्यवहार होता है, जैसे *अग्निना*। साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है और इसमे उदात्त सुर प्रधान है।

इस बात के चिह्न मिलते हैं कि प्रा० भा० आ० काल में गीतात्मक स्वराघात के साथ कदाचित् बलात्मक स्वराघात भी वर्तमान था यद्यपि यह प्रधान नहीं था अतः चिह्नित भी नहीं किया जाता था।

ख. प्राकृत तथा आधुनिक काल में स्वराघात[1]

१६७. कुछ यूरोपीय विद्वानों की धारणा है कि म० भा० आ० के आदिकाल मे ही भारतीय आर्य भाषाओं में बलात्मक स्वराघात पूर्ण रूप से विकसित हो गया था और गीतात्मक स्वराघात की प्रधानता नष्ट हो गई थी। यह बलात्मक स्वराघात शब्दान्त के पूर्व प्रथम दीर्घ स्वर पर प्रायः रहता था[1]। संस्कृत श्लोकों के पढ़ने मे अबतक इस ढंग का स्वराघात चला जा रहा है।

मा० भा० आ० काल मे स्वराघात की दृष्टि से प्राकृतों के दो विभाग किये जाते हैं। एक तो वे जो किसी न किसी रूप में वैदिक गीतात्मक स्वराघात को अपनाये रहीं। इस श्रेणी में महाराष्ट्री, अर्द्ध मागधी, जैन मागधी, काव्य की अपभ्रंश, तथा काव्य की जैन शौरसेनी रक्खी जाती हैं। इससे भिन्न शौरसेनी, मागधी तथा ढक्की (पंजाबी) प्राकृतों मे संस्कृत के बलात्मक स्वराघात का विकसित रूप वर्तमान था ऐसा माना जाता है। प्रोफेसर टर्नर आ० भा० आ० भाषाओं मे भी म० भा० आ० काल के इस दोहरे स्वराघात के चिह्न पाते हैं और वे मराठी को पहली श्रेणी मे तथा गुजराती की दूसरी श्रेणी मे रखते हैं। ग्रियर्सन आदि विद्वानों का एक मंडल म० भा० आ० तथा आ० भा० आ० भाषाओं मे केवल बलात्मक स्वराघात के चिह्न पाते हैं तथा प्रोफेसर ब्लाक इन दोनों कालों मे बलात्मक स्वराघात के भी पाये जाने के बारे मे संदिग्ध हैं। प्रा० भा० आ० काल के बाद लिखने में स्वराघात चिह्नित करने का रिवाज उठ गया था इसलिये बाद के कालों के स्वराघात की स्थिति के संबंध में कोई भी मत विशेषतया अनुमान के आधार पर ही बनाया जा सकता है अतः इस विषय पर मतभेद और संदेह का होना स्वाभाविक है।

---

[1] इस अंश की सामग्री का मुख्य आधार चै., बें. लैं., § १४२ है।

आ. हिन्दी में स्वराघात

१६८. वैदिक भाषा के समान हिन्दी मे गीतात्मक स्वराघात शब्दों में नही पाया जाता। वाक्यों में इसका थोड़ा बहुत प्रयोग अवश्य होता है जैसे प्रश्न वाचक वाक्य *क्या तुम घर जाओगे?* में *जाओगे* का उच्चारण कुछ ऊँचे सुर से होता है।

हिन्दी शब्दों में बलात्मक स्वराघात अवश्य पाया जाता है किन्तु वह अंग्रेज़ी के इस प्रकार के स्वराघात के सदृश प्रत्येक शब्द मे निश्चित नही है। इसके अतिरिक्त हिन्दी मे प्रायः दीर्घ स्वर पर स्वराघात होने के कारण दोनो मे भेद करना साधारणतया कठिन हो जाता है। आधुनिक हिन्दी शब्दो मे स्वर लोप तथा ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद दिखलाना बहुत आवश्यक है। स्वराघात का भेद उतना स्पष्ट नही है।

हिन्दी स्वराघात के संबंध मे गुरु के हिन्दी व्याकरण मे[1] कुछ नियम दिये हैं जिनका सार नीचे दिया जाता है। नीचे दिये हुये समस्त उदाहरणों में साधारणतया उपान्त्य स्वर पर स्वराघात पाया जाता है अतः ये समस्त नियम इस एक नियम के अन्तर्गत आ सकते हैं।

(१) यदि शब्द या शब्दांश के अन्त मे रहने वाले *अ* का लोप हो कर शब्द या शब्दांश उच्चारण की दृष्टि से व्यंजनान्त हो जाता है तो उपान्त्य स्वर पर जोर पड़ता है जैसे, *सँब*, *आँदमी*, *कमँल*।

(२) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती स्वर पर जोर पड़ता है जैसे, *चँन्दा*, *लंम्बा*, *विंद्या*।

(३) विसर्ग युक्त स्वर का उच्चारण कुछ जोर से होता है, जैसे *प्रायँः*, *अन्तँःकरण*।

---

[1] गु., हि. व्या., § ५६।

(४) प्रेरणार्थक धातुओं में आ पर स्वराघात होता है जैसे *करा́ना*, *बुला́ना*, *चुरा́ना* ।

(५) यदि शब्द के एक ही रूप के कई अर्थ निकलते हैं तो इन अर्थों का अन्तर केवल स्वराघात से जाना जाता है, जैसे *की* (संबंध-कारक चिह्न) और *की* (क्रिया) में दूसरी *की* का उच्चारण अधिक जोर देकर किया जाता है ।

१६९. हिन्दी के कुछ मात्रिक और वर्णिक छन्दों का मूलाधार स्वरों की संख्या या मात्रा काल न हो कर वास्तव में बलात्मक स्वराघात ही है। यदि स्वरों के मात्रा काल के अनुसार ये मात्रिक तथा वर्णिक छन्द चलते होते तो ह्रस्व स्वर सदा एक मात्रा तथा दीर्घ स्वर सदा दो मात्रा काल का माना जाता किन्तु हिन्दी के इन छन्दों मे बराबर ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें स्वरों की मात्राओं मे उच्चारण की दृष्टि से परिवर्तन कर लिया जाता है।

उदाहरण के लिये सवैया छन्द मे गणों का क्रम तथा वर्ण संख्या बंधी हुई है। प्रत्येक पाद की वर्ण संख्या मे तो कोई गड़बड़ नही होती किन्तु गणो के अन्दर वास्तव में स्वर की ह्रस्व दीर्घ मात्राओं का ध्यान नहीं रक्खा जाता, जैसे *अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे* इस पाद मे के रे, रे कै मात्रा के हिसाब से दीर्घ हैं किन्तु छन्द की दृष्टि से इन्हे ह्रस्व मानना पडता है। वास्तव में इस सवैया के अन्दर संस्कृत के समान गण का क्रम न हो कर प्रत्येक दो वर्ण के बाद बलात्मक स्वराघात है। स्वराघात की दृष्टि से इस पंक्ति को हम यों लिख सकते हैं—*अवधे́स के द्वा́रे सका́रे गई' सुत गो́द कै भू́पति लै' निक्से'* । इस कारण जिन वर्णों पर बलात्मक स्वराघात नहीं है वे चाहे ह्रस्व हो या दीर्घ किन्तु वे स्वराघात-हीन होने के कारण ह्रस्व के निकट हो जाते हैं। स्वराघात वाले स्वर अवश्य दीर्घ होने चाहिए।

कवित्त या घनाक्षरी छन्द मे भी वर्णों की निर्धारित संख्या के अतिरिक्त पाद के अन्दर बलात्मक स्वराघात का क्रम रहता है।

१७०. अवधी[1] के स्वराघात का अध्ययन सकसेना ने किया है। अवधी में भी बलात्मक स्वराघात पाया जाता है। इस संबंध मे सकसेना के अध्ययन का सार नीचे दिया जाता।

एकाक्षरी शब्दों मे स्वराघात केवल तब पाया जाता है जब उनका व्यवहार वाक्य में हो। दो अक्षर, तीन अक्षर तथा अधिक अक्षर वाले शब्दो में अन्त के दो अक्षरों में से उस पर स्वराघात होता है जो दीर्घ हो या स्थान के कारण दीर्घ माना जाय, यदि दोनों दीर्घ या ह्रस्व हो तो स्वराघात उपान्त्य अक्षर पर होता है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

दो अक्षर वाले शब्द .

पि-सा॑न्, प-ची॑स्, धा॑-इस्, बे॑-हिन्इ्, मा॑-रा ।

तीन अक्षर वाले शब्द .

फा-ग॑-इ्, अ-हा॑-ई, सो-ओ॑-इस्इ् ।

चार अक्षर वाले शब्द :

क-रि-हा॑-उ, क-चे-ह-री॑ ।

---

[1] सक, ए. अ भा १, अ ५।

अध्याय ५

रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय

१३१. संस्कृत संज्ञा प्रायः तीन अंशों से मिल कर बनती है—धातु, प्रत्यय तथा कारकचिह्न[1]। धातु और प्रत्यय से मिलकर मूल शब्द बनता है और फिर उस मे आवश्यकतानुसार कारक चिह्न लगाये जाते हैं। आधुनिक आर्य भाषाओं की संज्ञाओं में संस्कृत कारक चिह्न प्रायः लुप्तप्राय हो गये हैं। आधुनिक भाषाओ में कारक रचना का सिद्धान्त ही भिन्न हो गया है। इसका विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा। इस अध्याय मे हिन्दी रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्ययो के संबंध में विचार करना है।

संस्कृत के बहुत से प्रत्यय तथा उपसर्ग आधुनिक भाषाओं में आते आते नष्टप्राय हो गये हैं किन्तु अब भी कुछ ऐसे हैं जो थोड़े या अधिक परिवर्तनों के साथ आधुनिक भाषाओं मे प्रयुक्त होते हैं। कुछ काल से हिन्दी में सस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग विशेष बढ़ गया है अतः इन शब्दों के साथ बहुत से प्रत्यय तथा उपसर्गों का तत्सम रूपो मे फिर से व्यवहार होने लगा है। नीचे तत्सम, तद्भव और विदेशी प्रत्यय तथा उपसर्गों का पृथक् पृथक् विवेचन किया गया है।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, §१।

अ. उपसर्ग[1]

क. तत्सम उपसर्ग तथा अव्ययादि

१९२. ऊपर बतलाया जा चुका है कि तत्सम शब्दों के साथ बहुत से संस्कृत उपसर्गों का व्यवहार साहित्यिक हिन्दी मे होने लगा है। इन्हे अभी हिन्दी के उपसर्ग नही माना जा सकता क्योकि ये अभी हिन्दी भाषा की ऐसी सम्पत्ति नहीं हो पाये हैं कि जो तद्भव, विदेशी, या देशी शब्दो मे स्वतन्त्रता-पूर्वक लगाये जा सकें। पं० कामताप्रसाद गुरु ने हिन्दी व्याकरण[2] मे ऐसे तत्सम उपसर्गों तथा उपसर्गों के समान व्यवहृत संस्कृत विशेषण तथा अव्ययों की एक पूर्ण सूची दी है। उपसर्गों के इतिहास की दृष्टि से इन तत्सम उपसर्गों मे कोई विशेषता नहीं दिखलाई जा सकती अत. अनावश्यक समझ कर इन्हें यहाँ नही दिया गया है।

ख. तद्भव उपसर्ग[3]

१९३. प्रचलित तद्भव उपसर्ग व्युत्पत्ति सहित नीचे दिये जा रहे हैं—

अ < सं० अ : यह संस्कृत उपसर्ग है किंतु तद्भव शब्दों मे भी इस का स्वतंत्रता पूर्वक प्रयोग होता है, जैसे, अथाह, अजान। संस्कृत मे स्वर से प्रारंभ होने वाले शब्दों के पूर्व अ के स्थान पर अन् हो जाता है जैसे, अनेक।

---

[1] उपसर्ग उस अक्षर या अक्षर-समूह को कहते हैं जो शब्दरचना के निमित्त शब्द के पहले लगाया जाता है जैसे 'रूप' शब्द में 'अनु' उपसर्ग लगाकर 'अनुरूप' शब्द की रचना हो जाती है।

[2] गु, हि व्या, § ४३४, § ४३५ (क)।

[3] गु, हि. व्या § ४३५ (क)।

हिंदी में व्यंजन से प्रारंभ होने वाले शब्दों के पूर्व भी अ के स्थान पर अन मिलता है जैसे, *अनमोल, अनगिनती* ।

अध < सं० अर्द्ध	: आधा,	अधबिच,	अधकचरा ।
उन < सं० ऊन	= एकोन : एक कम;	उन्नीस,	उन्तीस ।
औ < स० अव	: हीन,	औघट,	औगुन ।
दु < सं० दुर्	: बुरा,	दुबला,	दुकाल ।
दु < सं० द्वौ	: दो,	दुधारा,	दुमुहा ।
नि < सं० *निर्*	: रहित,	*निकम्मा*,	निडर ।
बिन < सं० *बिना*	: अभाव,	*बिन ब्याहा*,	*बिनबोया* ।
मर < सं० $\sqrt{}$भृ	: पूरा,	भरपेट,	भरसक ।

ग. विदेशी उपसर्ग

(१) फ़ारसी-अरबी

१७४. फारसी-अरबी उपसर्गों की भी एक पूर्ण सूची गुरु के हिन्दी व्याकरण[1] मे दी हुई है। उसी के अनुसार नीचे मुख्य मुख्य उपसर्ग दिये जा रहे हैं।

कम	: थोड़ा,	*कमज़ोर*,	*कम उम्र* ।
		कम समझ,	*कम दाम* ।
ख़ुश	· अच्छा,	*ख़ुशबू*,	*ख़ुशदिल* ।
ग़ैर	: भिन्न,	*ग़ैरमुल्क*,	*ग़ैरहाज़िर* ।
दर	: में	दरअसल,	दरहक़ीक़त ।

[1]गु, हि. व्या., § ४२५ (क)।

ना	: अभाव,	नापसन्द,	नालायक।
ब	: अनुसार,	बदस्तूर,	बदौलत।
बद	: बुरा,	बदमाश,	बदनाम।
बिला	: बिना,	बिला .कुसूर,	बिलाशक।
बे	: बिना,	बेईमान,	बेरहम।
ला	: बिना,	लाचार,	लावारिस।
सर	: मुख्य,	सरकार,	सरदार; सरपंच।
हम	: साथ,	हमदर्दी,	हमउम्र।
हर	: प्रत्येक,	हररोज़,	हर चीज़।
		हरघड़ी,	हर काम।

(२) अंग्रेज़ी

१७५. कुछ अंग्रेजी शब्द भी हिंदी मे उपसर्ग के समान व्यवहृत होते हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

सब : अं० सब : सब ओवर सियर, सब रिजिस्ट्रार।

हेड : अं० हेड : हेड पंडित, हेडमास्टर।

आ. प्रत्यय[1]

क. तत्सम प्रत्यय

१७६. तत्सम उपसर्गों के समान तत्सम प्रत्यय भी तत्सम शब्दों के साथ बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी मे आ गए हैं। प्रत्ययों के इतिहास को दृष्टि

---

[1] प्रत्यय उस अक्षर या अक्षर समूह को कहते हैं जो शब्द रचना के निमित्त शब्द के आगे लगाया जाता है, जैसे 'बूढ़ा' शब्द में 'पा' प्रत्यय लगा कर बुढ़ापा शब्द बन जाता है।

से इनको यहाँ देना व्यर्थ समझा गया। इनमें से जिनका प्रयोग तद्भव तथा विदेशी शब्दों के साथ होने लगा है उन्हें तद्भव प्रत्ययों की सूची में शामिल कर लिया गया है। तत्सम कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों तथा प्रत्ययों के समान व्यवहृत संस्कृत शब्दों की पूर्ण सूचियें पं० कामताप्रसाद गुरु के हिन्दी व्याकरण[1] में दी हुई हैं।

ख. तद्भव तथा देशी प्रत्यय

१७७. हिन्दी मे व्यवहृत तद्भव तथा देशी प्रत्ययों पर नीचे विचार किया गया है। तद्भव प्रत्ययों मे यथा संभव संस्कृत तत्सम रूप देने का यत्न किया गया है। देशी तथा कुछ अन्य प्रत्ययो का इतिहास नहीं दिया जा सका है। देशी माने जाने वाले प्रत्ययों में कुछ ऐसे हो सकते हैं जो खोज के बाद तद्भव साबित हों।

१७८. अ (कृ० भाववाचक संज्ञा, विशेषण, पूर्वकालिक कृ० अव्यय)

यह प्रत्यय सस्कृत पु० अः, स्त्री० आ तथा नपुं० अम् की प्रतिनिधि है।[2]

बोल	:	*बोलना*
चाल	:	*चलना*
मेल	:	*मिलना*
देख	:	*देखना*

सस्कृत मे धातुओ के आगे जो प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें 'कृत्' कहते हैं। ऐसे प्रत्ययो के लगाने से जो शब्द बनते हैं उन्हें 'कृदन्त' कहते हैं। धातुओं को छोड कर अन्य शब्दो के आगे प्रत्यय लगा कर जो शब्द बनते हैं उन्हें 'तद्धित' कहते हैं। हिन्दी के लिये इस भेद को अनावश्यक समझ कर प्रत्ययों के इस वर्गीकरण का यहाँ अनुसरण नहीं किया गया है।

[1] गु, हि व्या., ४३५ (क), ४३५ (ख)।

[2] चै., बे. लै., § २९५।

१७९. अक्ड़ (कृ०, कर्तृवाचक)[1]

यह देशी प्रत्यय मालूम होती है।

पियक्कड़ : *पीना*

भुलक्कड़ : *भूलना*

१८०. अन्त (कृ०, भाववाचक)[1]

इसका संबंध सं० वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय अन्त (शतृ) से मालूम होता है यद्यपि आधुनिक प्रयोग कुछ भिन्न हो गया है।[1]

रटन्त : *रटना*

गढ़न्त : *गढ़ना*

१८१. आ (कृ०, भूतकालिक कृ०, भाववाचक संज्ञा, करणवाचक संज्ञा)[1]

इसका संबंध निरर्थक प्रत्यय आ के साथ सं० – *त* (क्त) – इत > प्रा० – अ, – इअ से जोड़ा जाता है।[1]

मरा : *मरना*

घेरा : *घेरना*

पोता : *पोतना*

१८२. आ (त० विशेषण, स्थूलता वाचक संज्ञा)[1]

मैला : *मैल*

लकड़ा : *लकड़ी*

१८३. आइंद (त० भाववाचक संज्ञा)[1] < + *गन्ध*

---

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)।
[2] चै., बे. लै., § ३९५।

कपडाइंद : कपडा

सड़ाइंद : सड़ा

१८४. आई (कृ० भाववाचक संज्ञा)[1]

हार्नली[2] इस प्रत्यय का संबंध सं० त० स्त्री० *ता* > प्रा० दा या आ से मानते हैं। निरर्थक क जोडने से सं० *तिका*, प्रा० *दिया* या *इआ*, हि० आई हो गया, जैसे सं० *मिष्टता* या *मिष्टतिका**, प्रा० *मिट्ठइआ*, हि० *मिठा*ई हो गया।

चैटर्जी[3] और हार्नली में मत भेद है। चैटर्जी के अनुसार यह प्रत्यय म० भा० आ० काल का है और इस का संबंध धातु के प्रेरणार्थक रूप से बनी हुई स्त्रीलिंग क्रियार्थक संज्ञाओं से है, जैसे स० *याचापिका** रूप से हि० जचाई रूप बन सकता है।

लडाई : लडना

खुदाई खुदना

१८५. आऊ, ऊ (कृ० कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली[4] के अनुसार यह प्रत्यय स० कृ० तृ अथवा निरर्थक क सहित *तक* से निकला है। प्रा० मे ऋ का उ में परिवर्तन हो जाने के कारण इस प्रत्यय का प्राकृत रूप ऊ या उओ हो गया था जैसे स० *खादिता* (मूलरूप *खादितृ*), प्रा० *खाइऊ* या *खाइउओ*, हि० *खाऊ*। चैटर्जी[5] सं० *उ–क* से इसकी व्युत्पत्ति को मानना ठीक समझते हैं।

---

[1] गु, हि व्या, § ४३५ (ख)।
[2] हा, ई हि ग्रै, § २२३।
[3] चै, बे लै, § ४०२।
[4] हा, ई हि ग्रै, § ३३३।
[5] चै, बे लै, § ४२८।

खाऊ	*खाना*
उड़ाऊ	*उड़ाना*

यह प्रत्यय योग्यता के अर्थ में तथा तद्धित गुण वाचक शब्द बनाने के लिये भी प्रयुक्त होता है।[1]

१८६. *आक, आका* (कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली के अनुसार इसका संबंध सं० कृ० अक या आपक से है, जैसे सं० *उड्डापक,* प्रा० *उड्डावके या उड्डाअके,* हि० *उड़ाका।*

पैराक	*पैरना*
लड़ाका	*लड़ना*

अनुकरण वाचक शब्दों में *आका* लगा कर भाववाचक संज्ञायें (त०) बनती हैं, जैसे *धड़ाका धड़ सड़ाका सड़।*[2]

१८७. *आका, आटा* (त०, भाववाचक संज्ञा)[3]

अनुकरणवाचक शब्दों में प्राय ये प्रत्यय लगते हैं।

धड़ाका	*धड़*
सड़ाका	*सड़*
सन्नाटा	*सन*

१८८. *आन* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

चैटर्जी[4] के अनुसार इस का संबंध सं०–*आप्–अन,* *–आप्–अन–क* से है।

---

[1] चै, बे लै, § ४२८।
[2] गु, हि व्या, § ४३५ (ख)।
[3] गु, हि व्या, § ४३५ (ख)।
[4] चै., बे लै, § ४०८।

उठान	·	उठना
लम्बान	:	लम्बा

१८९. आना (त० स्थानवाचक संज्ञा)

राजपूताना	·	राजपूत
सिरहाना	:	सिर

१९०. आनी (त० स्त्रीलिंग संज्ञा)

यह स० तत्सम आनी से प्रभावित प्रत्यय है, जैसे स० इन्द्र > इन्द्राणी।

गुरुआनी	·	गुरु
पंडितानी	:	पंडित

१९१. आप, आपा (कृ० भाववाचक संज्ञा)[1]

मिलाप	·	मिलना
पुजापा		पूजना

१९२. आयत, आइत (त०, भाववाचक संज्ञा)

इन का संबंध स० वत्, मत् से जोड़ा जाता है[2]। प्राकृत मे ये वत, मत् हो गए थे और इन रूपों के साथ साथ इत या इत्त रूप भी मिलता है। मूल शब्द के अ सहित इनका रूप अवत अमत, या अअत अयत, या अइत, या इत हो सकता है।

बहुताइत	·	बहुत
पचायत	·	पच

---

[1] चै, बे लै, § ४०८।
[2] हा, ई हि ग्रै, § २४०।
वी, क ग्रै, भा २, § २०।

१९३. आर, आरी (त० कर्तृवाचक संज्ञा)

ये प्रत्यय संस्कृत कार, कारिक के वर्तमान रूप हैं।[1]

सं० कुम्भकारः > प्रा० कुम्हआरो > हि० कुम्हार;

सं० पूजाकारिकः > प्रा० पूजआलिए > हि० पुजारी।

१९४. आरा, आरी (आर के पर्यायवाची)

हार्नली[2] इन की व्युत्पत्ति संबंधकारक के प्रत्ययों से जोड़ते हैं, सं० कृतं > प्रा० केरं > हि० का, आरा।

पुजारी : पूजा

भिखारी : भीख

घसिआरा : घास

१९५. आड़ी — खिलाड़ी : खेल

१९६. आल, आला (त० संज्ञा)[3]

यह सं० आलय का वर्तमान रूप है, जैसे सं० श्वशुरालय > हि० ससुराल, सं० शिवालय > हि० शिवाला

ससुराल : ससुर

शिवाला : शिव

---

[1] चै., बे. लै., § ४१२।
हा., ई. हि. ग्रै., § २७७।
बी., क. ग्रै., भाग २, § २५।

[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २७४।

[3] हा., ई. हि. ग्रै., § २४४-२४८।
चै., बे. लै., § ४१६-४१७।

१९७. आली (समूह वाचक)

कुछ शब्दों में इसका संबध सं० अवली से जुडता है, स० दीपावली > हि० दिवाली।

दिवाली : दिया

१९८. आलू : आलु (त०)

इसका सबध सं० आलु से माना जाता है।

झगड़ालू : झगड़ा

कृपालु : कृपा

१९९. आव, (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[1] इसका संबंध सं० त्व, त्वन > प्रा० त्तं, त्तणं > या अत्र अत्रण > अप० अउ अत्रणु से जोड़ते हैं । अत्रउ से आउ या आव हो जाना संभव है। जैसे सं० उच्चकत्वं > प्रा० उच्चत्तं या उच्चअत्र > अप० उच्चअउ > हि० उंचाव। चैटर्जी[2] हार्नली का मत मानने को उद्यत नहीं हैं। बीम्स[3] के अनुसार इसका संबंध स० अतु या आतु से है।

बचाव : बचना

पड़ाव : पडना

हि० आवा और आवट या आवत (कृ०) प्रत्यय व्युत्पत्ति की दृष्टि से आव के ही रूपांतर माने जाते हैं ।

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै, § २२७ ।

[2] चै, बे., लै., § ४०५ ।

[3] बी., क. ग्रै, भा. २, § १६ ।

भुलावा	:	*भुलाना*
सजावट	:	*सजाना*
कहावत	:	*कहना*

आवना (कृ० विशेषण) की व्युत्पत्ति भी *आव* के ही समान हो सकती है।

डरावना	:	*डराना*
सुहावना	:	*सुहाना*

२००. *आस*, *आसा* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[1] इन प्रत्ययों को संस्कृत सं० *वाञ्छा* (इच्छा) का संक्षिप्त तथा परिवर्तित रूप मानते हैं, जैसे सं० *निद्रावाञ्छा* > प्रा० *निद्दंछा* > हि० *निंदासा*, किन्तु यह व्युत्पत्ति अत्यन्त संदिग्ध है। हि० *पियासा* का संबंध सं० *पिपासा* से है।

रुआसा	:	*रोना*
निंदास	:	*नींद*

२०१. *आहट* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[2] के अनुसार इसका संबंध सं० *वृत्ति*, *वृत्त* या *वार्त* संज्ञाओं से है। प्रा० में ये *वट्टी*, *वट्ट* या *वत्ता* हो जाते हैं। बीम्स[3] के अनुसार यह सं० *ऋतु* या *आतु* से निकला है।

कड़ुवाहट	:	*कड़ुवा*
चिकनाहट	:	*चिकना*

---

[1] हा., ई. हि ग्रै., § २८३।
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २८८।
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § १६।

२०२, इन या आइन (स्त्रीलिंग)

व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये आनी के समान हैं।

मुशियाइन *मुशी*

बरेठिन *बरेठा*

√ २०३, इयल (कृ०, कर्तृवाचक)

अडियल *अडना*

मरियल *मरना*

२०४. इया (त०, कर्तृवाचक)

इस की व्युत्पत्ति स० इय, *ईय* या इक से हो सकती है[1] ।

पर्वतिया *पर्वत*

कनौजिया *कनौज*

२०५. ई (त०, सज्ञा, विशेषण)

प्राचीन कई प्रत्ययों ने हिन्दी में ई का रूप धारण कर लिया है[2] ।

(१) स० इन् > हि० ई , जैसे स० *मालिन* > हि० *माली*

(२) स० *ईय* > हि० ई , जैसे स० *देशीय* > हि० *देशी*

(३) स० इक > हि० ई , जैसे स० *तैलिक* > हि० *तेली*

---

[1] बी , क , ग्रै , भा २, § १८ ।
  कै , वे लै , § ४२१ ।

[2] कै , वे लै , § ४१८ ।
  बी , क ग्रै , भा २, § १८ ।

भाववाचक या स्त्रीलिंग वाचक हि० ई की व्युत्पत्ति सं० इका से मानी जाती है[1]।

घोड़ी	घोड़ा
पगली	पागल

ई (कृ०) कुछ क्रियार्थक संज्ञाओं में भी पाई जाती है। इस रूप में यह संस्कृत तत्सम प्रत्यय है।[2]

हँसी	हँसना
घुड़की	घुड़कना

२०६. ईला (त० विशेषण)

हार्नली[3] के मतानुसार इसका संबंध प्रा० इल्ल से है। प्राकृत से ही कदाचित् यह प्रत्यय इल रूप में संस्कृत के कुछ शब्दों में पहुँच गया, जैसे सं० ग्रंथि > ग्रंथिल।

पथरीला	पत्थर
रंगीला	रंग
गठीला	गांठ

२०७. एर, एरा (कृ० कर्तृवाचक, त० भाववाचक)

हार्नली[1] के अनुसार उनका संबंध सं० दृश (सदृश) से माना है। प्राकृत से इस प्रकार के प्रत्यय बराबर पाये जाते हैं।

---

[1] बै, बे लै, § ४१९।

[2] बै, बे लै, § ४२०।

[3] हा, ई ही ग्रै, § २७२।
 पी, क ग्रै, भा २, § १८।
 बै, बे लै, § ४२५, ४२६।

[1] हा, ई हि ग्रै, § २५१, २१७, २१८।

अंधेर, अंधेरा : अंध

बसेरा : बसना

ममेरा : मामा

हि० एड़ी जैसे भंगेडी, एली जैसे हथेली, एल जैसे फुलेल, एला जैसे अधेला, ऐल जैसे लपड़ैल आदि समस्त प्रत्यय व्युत्पत्ति की दृष्टि से एर, एरा के सदृश माने जाते हैं।

२०८. ऐत (कृ० कर्तृवाचक)

व्युत्पत्ति के लिये दे० आयत।

डकैत : डाका

लड़ैत : लड़ना

२०९. ओड, औडा

हसोड : हंसना

हथौड़ा : हाथ

२१०. ओला

खटोला : खाट

२११. औता, औटा, ओती, ओटी, औती, औटी (कृ० त० संज्ञा)

व्युत्पत्ति के लिये दे० आयत।

चुकौता, चुकौती : चुकाना

कजरौटा : काजर

बपौती : बाप

कसौटी : कसना

२१२. औना, औनी, आवना, आवनी (कृ०)

हार्नली[1] के अनुसार इन सब का संबंध सं० अनीय > प्रा० अणीअ, अणिअ, अणअ से है।

खिलौना	खेलना
मिचौनी	मिचाना
पहरावनी	पहराना
डरावना	डराना

२१३ औवल (कृ० भाववाचक)

बुझौवल	बूझना
मिचौवल	मीचना

२१४ क, अक (कृ० त०)

चैटर्जी[2] के अनुसार यह सं० अत अन्त वाले क्रिया के रूपों में क लगा कर बना था। प्रा० में इसका रूप अक्क मिलता है, जैसे हि० चमक < प्रा० चमक्क < सं० चमत्कृत। अतः इसकी उत्पत्ति सं० कृत् से मानी जा सकती है। सं० प्रत्यय अ-क का प्रभाव भी कुछ शब्दों पर हो सकता है। हार्नली के मतानुसार अक आक् इ० का संबंध अक से है।

फाटक	फाड़ना
बैठक	बैठना
धमक	धम

---

[1] हा, इ हि ग्रै, § ३२१।
[2] चै, बे लै, § ४३०, ४३१।
बी क ग्रै, भा २, § ९।
हा, इ हि ग्रै § ३३८।

२१५. का (कृ० त०)

हार्नली[1] के मतानुसार इसका सबध भी सबधकारक के प्रत्ययों से है (दे० हा०, ई० हि० ग्रै० § ३७७)

मैका	मा
लडका	लाड

२१६. गी (कृ०) < फा० —गी

देनगी	देना
बानगी	बान

२१७. डा, डी[2] (त०)

टुकडा	टूक
मुखडा	मुख

२१८. जा (त०)

स० जात का वर्तमान रूप बहुत से हिन्दी शब्दों में मिलता है।

भतीजा	भाई
भानजा	बहिन

२१९ टा, टी[3] (त०)

इनका सबध स० √वृत् > प्रा० वट्ट से है। दे० आहट।

कलूटा	काला
बहूटी	बहू

---

[1] हा, ई हि ग्रै, § २८०।

[2] बी क ग्रै, भा २, § २४।

[3] के, बे लै, § ४३६।

२२०. डा डी[1] (त०)

इनका संबंध (१) स० वाट (जैसे असाडा) (२) स० ट > प्रा० ड (जैसे पाखुडी) से माना जाता है।

२२१. त ता (कृ० त०)

(१) भाववाचक संज्ञाओं में पाए जाने वाले त प्रत्यय का संबंध स० त्व > प्रा० त्त से माना जाता है।[2] हिन्दी में इस प्रत्यय से बने हुये रूप स्त्रीलिंग हो जाते हैं इस कारण यह व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

बचत	बचना
खपत	खपना
रंगत	रंग

(२) कुछ हिंदी संज्ञाओं में त स० पुत्र, पुत्रिक, या पुत्रिका का अवशिष्ट रूप है।[3]

जिठौत	जेठ
बहिनौत	बहिन

(३) वर्तमान कालिक कृदन्त ता का संबध स० अत् > प्रा० अत, अद, अते से माना जाता है।[4]

जीता	जीना
खाता	खाना

---

[1] चै, वे लै, § ४४०, ४४१।

[2] चै, वे लै, § ४४२।

[3] चै, वे लै, § ४४४।

[4] हा, ई हि ग्रै, § २०१।

२२२. न, ना, नी (कृ० त०)

हार्नली[1] इन सब प्रत्ययों का संबंध सं० अनीय > प्रा० अणीअ या अणअ से जोडते हैं। स्त्रीलिंग द्योतक बहुत सी संज्ञाओं में सं० इन् का प्रभाव भी है।[2]

रहन : रहना
घिनौना : घिन
होनी · होना
डोमनी : डोम
चाँदनी · चाँद

२२३. पा, पन (त० भाववाचक संज्ञा)[3]

इन प्रत्ययों का संबंध सं० त्व त्वन > प्रा० प्प, प्पण से जोडा जाता है, जैसे सं० वृद्धत्व > प्रा० बुड्ढप्प > हि० बुढापा।

बुढापा · बूढा
मुटापा : मोटा
लडकपन . लडका
कालापन : काला

---

[1] चै, बे है, § ३२१।
[2] चै, बे है, § ४४५।
[3] हा, ई हि ग्रै, § २३१।
बी, क ग्रै, भा २, § १७।
चै, बे है, § ४४६।

२२४. व (त०)

अब	:	यह
जब	:	जो

२२५. री (त०)

कोठरी	:	कोठा
मोटरी	:	मोट

२२६. रू (त०)

चैटर्जी[1] के अनुसार इसका संबंध सं० रूप > प्रा० रूव से है।

गोरू (गोरूप)	:	गो
पखेरू(पक्षरूप)	:	पंखी
मिहरारू (महिला रूप)		

२२७. ल, ला, ली (त०)

चैटर्जी[2] इन प्रत्ययों का संबंध सं० ल से जोड़ते हैं। बीम्स[3] के अनुसार इस प्रकार के अधिकांश प्रत्ययों का संबंध सं० इल > प्रा० इल्ल से है।

घायल	:	घात
गंठीला	:	गांठ
सहेली	:	सखी
टिकली	:	टीका

---

[1] चै., बे. लै., § ४४८ ।
[2] चै., बे. लै., § ४४९ ।
[3] बी., क. ग्रै., § भा. २, § १८ ।

२२८. वान् (त०)

इस प्रत्यय का संबंध स्पष्ट ही सं० मतुप् से है जिसके मान्, वान् आदि रूप होते हैं।[१]

गुणवान : गुण

धनवान : धन

२२९. वा (त०)

हार्नली[२] के अनुसार इसका संबंध सं० म या स्वार्थे क सहित मक से है, जैसे सं० पञ्चमः या पञ्चमकः > प्रा० पंचमए या पचवॅए > हि० पाचवा।

पाचवा : पाच

सातवा · सात

२३०. वाल, वाला (त०)

हार्नली[३] के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति सं० पाल से है।

ग्वाला < सं० गोपालक · गो

गाड़ीवाला : गाड़ी

कोतवाल (कोटपालक)

प्रयागवाल : प्रयाग

---

[१] बी, क ग्रै, भा २, § २०।
हा, ई हि ग्रै, § २३६।

[२] हा, ई हि ग्रै., § २६६।

[३] हा, ई हि ग्रै, § २९६।

२३१. *वैया* (कृ० कर्तृवाचक)

इस प्रत्यय का मूल रूप हार्नली[1] के अनुसार सं० *तव्य* + इ > प्रा० *एअव्व* या *इअव्व* है।

खवैया	*खाना*
गवैया	*गाना*

२३२. *सा* (त०)

इसका सबध हार्नली[2] स० *सदृशक* * > प्रा० *सइअए**, *सइआ** से जोड़ते हैं। चैटर्जी[3] इस मत से सहमत नहीं हैं और इसका सबध स० *श* (जैसे स० *कपि-श*, *कर्क-श*) से लगाते हैं। बीम्स[4] का मत इन दोनो से भिन्न है।[6]

हाथीसा	*हाथी*
वैसा	*वह*

२३३. *सरा*[5]

इसकी व्युत्पत्ति स० √ *सृ* > *सृत* से मानी जाती है, जैसे स० *द्विसृत* > प्रा० *दुसलिए* > हि० *दूसरा*

तीसरा	*तीन*
दूसरा	*दो*

---

[1] हा, ई हि ग्रै, § ३१४।
[2] हा, ई हि ग्रै, § २९२।
[3] चै, बे लै, § ४५०।
[4] बी, क ग्रै, भा २, § १७।
[5] हा, ई हि ग्रै, § २७१।
चै, बे लै, § ४५२।

२३४. हरा[1]

इस प्रत्यय का संबंध सं० हार (भाग) से माना गया है।

दुहरा	:	दो
इकहरा	:	एक

संड़हर, पीहर आदि शब्दों में हर सं० गृह का परिवर्तित रूप है।

२३५. हार, हारा

हार्नली[2] ने इसका संबंध सं० अनीय से जोड़ा है किन्तु यह व्युत्पत्ति बिलकुल भी संतोषजनक नहीं है।

होनहार	:	होना
पढ़नेहारा	:	पढ़ना
लकड़हारा	:	लकड़ी

२३६. हा (कृ० कर्तृवाचक, त० गुणवाचक)

कटहा	:	काटना
मरसहा	:	मारना
पनिहा	:	पानी
हलवाहा	:	हल

ग. विदेशी प्रत्यय

फ़ारसी अरबी

२३७. गुरु[3] के हिन्दी व्याकरण में हिन्दी में प्रचलित फारसी अरबी शब्दों में पाई जाने वाली प्रत्ययों की सूची दी है। इनमें से कुछ वे प्रत्यय नीचे

---

[1] चै., बे. लै., § ४५४।

[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३२१।

[3] गु., हि. व्या., § ४३६-४४२ (ख)।

दिए जाते हैं जिनका प्रयोग हिन्दी शब्दों में भी होने लगा है। कुछ प्रत्यय चैटर्जी[1] के ग्रंथ से भी लिए गए हैं।

ई (त० भाववाचक संज्ञा)

ख़ुशी	:	ख़ुश
नवाबी	:	नवाब
दोस्ती	:	दोस्त

कार (त० कर्तृवाचक)

पेशकार	:	पेश
जानकार	:	जान

दान, दानी (त० पात्रवाचक)

इत्रदान	:	इत्र
चायदान	:	चाय
गोंददानी	:	गोंद

बान, वान (त० कर्तृवाचक)

बाग़बान	:	बाग़
गाड़ीवान	:	गाड़ी

आना, आनी

घराना	:	घर
साहिबाना	:	साहिबाना
हिंदुआनी	:	हिंदू

---

[1] चै., बे. लै., § ३६८।

ख़ाना

छापाख़ाना : छापा

गाड़ीख़ाना : गाड़ी

ख़ोर

घूसख़ोर : घूस

चुग़लख़ोर : चुग़ली

गीरी फा० गीर या गरी

कारीगरी : कार

बाबूगीरी : बाबू

ची फा० चह् का रूपान्तर

देगची : देग़चा

चमची : चमचा

बगीची : बग़ीचा

बाज, बाज़ी

रंडी बाज़ी : रंडी

कबूतर बाज़ी : कबूतर .

———

अध्याय ६

संज्ञा

अ. मूलरूप तथा विकृत रूप

२३८. हिन्दी में कारकों की संख्या उतनी ही है जितनी संस्कृत मे, किन्तु प्रत्येक कारक मे भिन्न भिन्न सयोगात्मक रूप नहीं होते। संस्कृत मे आठ विभक्तियों और प्रत्येक विभक्ति में तीन वचनों के रूपों को मिला कर प्रत्येक सज्ञा में चौबीस रूपान्तर हो जाते हैं। फिर भिन्न भिन्न अन्त वाली सज्ञाओं के रूप पृथक् पृथक् होते हैं। लिग भेद से भी रूपों मे भेद हो जाता है। इस तरह किसी एक संज्ञा के चौबीस रूप जान लेने से भिन्न अन्त अथवा लिग वाली संज्ञा के रूपान्तर बना लेना साधारणतया संभव नही होता।

हिंदी में द्विवचन तो होता ही नही है। भिन्न भिन्न कारको के एकवचन तथा बहुवचन मे भी सज्ञा में चार से अधिक रूप नहीं पाये जाते। प्रथमा बहुवचन तथा समस्त अन्य कारकों के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में अन्त, वचन तथा लिग भेद के अनुसार कुछ भेद पाये जाते हैं। इन्ही रूपों मे भिन्न भिन्न कारक चिह्न लगाकर, तथा कुछ प्रयोगों में विना लगाये भी, भिन्न भिन्न विभक्तियों के रूप बना लिये जाते हैं। उदाहरण के लिये राम शब्द के संस्कृत तथा हिन्दी के रूप नीचे दिये जाते हैं—

संस्कृत

	एक०	द्वि०	बहु०
कर्ता	रामः	रामौ	रामाः
कर्म	रामम्	रामौ	रामान्
करण	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
संप्रदान	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
अपादान	रामात्	,,	,,
संबध	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण	रामे	,,	रामेषु
सबोधन (हे)	राम	रामौ	रामाः

हिन्दी

	एक०	बहु०
कर्ता	राम	राम
कर्म	,, को	रामों को
करण	,, से	,, से
संप्रदान	,, को	,, को
अपादान	,, से	,, से
संबंध	,, का, के, की	,, का, के, की
अधिकरण	,, में	,, में
सबोधन (हे)	राम	(हे) रामो

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट होगया होगा कि हिन्दी विभक्तियों सबध सस्कृत विभक्तियों से बिलकुल भी नहीं है। व्रजभाषा आदि हिन्दी सयोगात्मक रूप अवश्य मिलते हैं, जैसे कर्म में व्र०

घरै (हि० घर को), सम्प्रदान ब्र० रामै (हि० राम को) किन्तु खडीबोली हिन्दी की सज्ञाओं मे ऐसे रूपो का व्यवहार नही पाया जाता।

२३९. कारक चिह्न लगाने के पूर्व हिन्दी सज्ञा के मूलरूप में जब परिवर्तन किया जाता है तो ऐसे रूपो को सज्ञा का विकृत रूप कहते हैं। हिन्दी में सज्ञा के चार रूपो—दो मूल और दो विकृत—के उदाहरण भी प्रत्येक सज्ञा मे भिन्न नहीं पाये जाते। भिन्न भिन्न अन्त वाली सज्ञाओं मे मिला कर ये चारो रूप अवश्य मिल जाते हैं। नीचे के उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जावगी।

		एक०	बहु०
मूलरूप	(कर्ता)	घोडा	घोडे
विकृत रूप	(अन्य कारक)	घोडे	घोडो
मूलरूप	(कर्ता)	लडकी	लडकी, लडकिया
विकृत रूप	(अन्य कारक)	लडकी	लडकियो
मूलरूप	(कर्ता)	घर	घर
विकृत रूप	(अन्य कारक)	घर	घरों
मूलरूप	(कर्ता)	किताब	किताबें
विकृत रूप	(अन्य कारक)	किताब	किताबो

बहुवचन के भिन्न रूपों की व्युत्पत्ति के सबध मे वचन क शीर्षक मे विचार किया गया है। कुछ आकारान्त शब्दों क एकवचन में भी कर्ता को छोड कर अन्य कारकों में एकारान्त विकृत रूप पाया जाता है (कर्ता एक० घोडा, अन्यकारक एक० घोडे)[1]। इस विकृत रूप की व्युत्पत्ति क सबध में प्राय समस्त विद्वानों का एक मत है। यह रूप सस्कृत एक वचन की भिन्न भिन्न विभक्तियों के रूपों का अवशेष मात्र माना जाता है।

---

[1] इसके अपवादो के लिये दे गु, हि व्या, § २१०।

हिन्दी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होने वाले समस्त संभावित परिवर्तन नीचे दिखलाये गये हैं।

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
	आकारान्त कुछ			
मूलरूप	—आ	—इ	×	—एं
विकृतरूप	—ए	—ओं	×	×
	अन्य			
मूलरूप	×	×	×	(ए)
विकृतरूप	×	—ओं	×	—ओं

सूचना (१) ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों मे ओं लगाने के पूर्व ईकार तथा ऊकार के स्थान में इकार तथा उकार हो जाता है।

(२) स्त्रीलिंग के अन्य रूपों मे इकारान्त अथवा ईकारान्त तथा ऊकारान्त संज्ञाओ के मूलरूप बहुवचन मे इआं, इऐं तथा उऐं रूप भी होते हैं।

आ. लिंग[1]

२४७. प्रकृति में जड़ और चेतन दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। चेतन पदार्थों में पुरुष और स्त्री का भेद होता है। कभी कभी चेतन पदार्थ को लिंग भेद की दृष्टि के बिना भी सोचा जा सकता है। इस प्रकार प्रकृति मे लिंग की दृष्टि से चेतन पदार्थों के तीन भेद हो सकते हैं—(१) पुरुष, (२) स्त्री, तथा (३) लिंग की भावना के बिना चेतन पदार्थ। व्याकरण में स्वाभाविक रीति से इनके लिये क्रम से (१) पुलिंग, (२) स्त्रीलिंग तथा (३) नपुसक लिग शब्दों

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § २९।

का प्रयोग करते हैं। अचेतन पदार्थों को प्रायः नपुंसक लिंग के अन्तर्गत रख लिया जाता है। इस क्रम से मिलता जुलता लिंग भेद संस्कृत और अंग्रेजी में, तथा मराठी, गुजराती आदि के कुछ रूपों में है यद्यपि कभी कभी कुछ जड़ पदार्थों को सचेतन मानकर इनमें भी चेतन पदार्थों के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग भेद का आरोप कर लिया जाता है।

भिन्न भिन्न लिंग वाले पदार्थों के लिये पृथक् शब्द रहने पर भी लिंग के कारण कभी कभी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, या क्रिया के रूपों में परिवर्तन करना व्याकरण संबंधी लिंग भेद का शुद्ध क्षेत्र है। प्राकृतिक लिंग भेद तो प्रत्येक भाषा में समान रूप से वर्तमान है किन्तु व्याकरण संबंधी लिंगों की संख्या तथा मात्रा भिन्न भिन्न भाषाओं में पृथक् पृथक् है। उदाहरण के लिये संस्कृत में विशेषण, कृदन्त तथा प्रथम पुरुष सर्वनाम के रूप पुल्लिंग स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग में भिन्न होते हैं। अंग्रेज़ी में केवल प्रथम पुरुष सर्वनाम के रूपों में भेद किया जाता है। लिंगों की संख्या के संबंध में भारतीय आर्य भाषाओं में ही कई भेद मिलते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में संस्कृत और प्राकृत में तथा आधुनिक भाषाओं में मराठी, गुजराती और सिंहाली में तीन लिंग होते हैं। हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी तथा सिंधी में दो लिंग होते हैं। बंगाली उड़िया, आसामी तथा बिहारी में व्याकरण संबंधी लिंग भेद बहुत ही कम किया जाता है। भारत की पूर्वी भाषाओं में लिंग भेद के शिथिल होने का कारण प्रायः निकटवर्ती तिब्बत और बर्मा प्रदेशों की अनार्य भाषाओं का प्रभाव माना जाता है। इन भाषाओं में व्याकरण संबंधी लिंग भेद नहीं पाया जाता। चैटर्जी की धारणा है कि कोल भाषाओं के प्रभाव के कारण बंगला आदि पूर्वी भाषाओं से लिंग भेद उठ गया। उनके मत के अनुसार पूर्वी भाषाओं में लिंग भेद संबंधी शिथिलता का कारण इन भाषाओं का स्वाभाविक-विकास भी हो सकता है।[1] बिना बाह्य प्रभाव के ऐसा होना संभव है। मराठी, गुजराती आदि दक्षिण पश्चिमी आर्य भाषाओं में प्राचीन

---

[1] चै, बे. लै., § ४८३।

तीनो लिंगो का भेद बना रहना निकटस्थ द्राविड़ भाषाओं के कारण माना जाता है। इन द्राविड़ भाषाओं मे भी लिंगों की संख्या तीन है। मध्यवर्ती भारतीय आर्य भाषाये लिंगों की संख्या की दृष्टि से भी मध्यस्थ हैं।

२४९. हिंदी में व्याकरण संबधी लिंग भेद सब से अधिक दुरूह है। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है हिंदी की एक विशेषता तो यह है कि उसमें केवल दो लिंग—पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग—होते हैं। हिंदी व्याकरण में नपुंसक लिंग नही है अतः प्रत्येक अचेतन पदार्थ के नाम को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग के अन्तर्गत रखना पड़ता है और तत्संबंधी समस्त रूप-परिवर्तन इन शब्दो में भी करने पड़ते हैं। इस संबंध मे निश्चित नियम बनाना दुस्तर है।[1] साधारणतया हिंदी भाषा भाषी अभ्यास से ही अचेतन पदार्थो मे प्रचलित लिंग विशेष के शुद्ध रूपो का व्यवहार करने लगते हैं। विदेशियों को हिंदी में शुद्ध लिंग का प्रयोग करने मे विशेष कठिनाई इसी कारण पड़ती है।

हिंदी मे लिंग संबंधी दूसरी विशेषता यह है कि इस की क्रियाओं में भी लिंग के कारण विकार होता है। लिंग भेद के कारण प्रत्येक हिंदी क्रिया के दो रूप होते हैं—पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग—जैसे *आदमी जाता है*, *जहाज़ जाता है*, किन्तु *स्त्री जाती है*, *रेल जाती है*। लिंग के संबंध में यह बारीकी अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं मे से भी बहुत कम में है। भारत की पूर्वी भाषाओ मे क्रिया मे लिंग भेद न होने के कारण बंगाली, बिहारी तथा संयुक्तप्रान्त की गोरखपुर और बनारस कमिश्नरी तक के लोग हिंदी बोलते समय क्रिया मे अशुद्ध लिंग का प्रयोग अक्सर करते हैं। 'लोमड़ी बोला कि ऐ हाथी तुम कहाँ जाती हो' इस प्रकार के नमूने हिंदी से कम परिचय रखने वाले बंगालियों के मुँह से अक्सर सुनाई पड़ते हैं। हिंदी क्रिया मे कृदन्त रूपों का व्यवहार बहुत अधिक है। संस्कृत कृदन्त रूपो मे लिंग भेद मौजूद था यद्यपि संस्कृत क्रिया मे लिंग भेद नहीं किया जाता था। क्योकि हिंदी कृदन्त

---

[1] इस संबंध में कुछ विस्तृत नियमो के लिये दे. गु, हि. व्या., § २५९-२६६।

रूप सस्कृत कृदन्तों से संबद्ध हैं अतः यह लिंग भेद हिंदी कृदन्तों मे तो आ ही गया साथ ही कृदन्त से बनी हुई क्रियाओं मे भी पहुँच गया है। इस सबध में उदाहरण सहित विस्तृत विवेचन 'क्रिया' शीर्षक अध्याय में किया गया है।

हिंदी आकारान्त विशेषणो में लिंग भेद के कारण भिन्न रूप होते हैं। अन्य विशेषणो में इस प्रकार का भेद बहुत कम पाया जाता है। लिंग के कारण विशेषणों मे होने वाले परिवर्तनों का रूप निश्चित सा है। इनमें सब से अधिक प्रचलित परिवर्तन नीचे लिखे ढग से प्रकट किया जा सकता है—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एक०	—आ	—ई
बहु०	—ए	—ई

हिंदी विशेषणो के ई लगा कर बने हुये स्त्रीलिंग रूपों की व्युत्पत्ति सं० तद्धित प्रत्यय इका > प्रा० इआ से अथवा इसके प्रभाव से मानी जाती है।[1]

हिंदी सर्वनामों तथा प्रायः क्रिया विशेषणो[2] में लिंग भेद के कारण परिवर्तन नहीं होते। मैं, तुम, वह आदि सर्वनाम स्त्री पुरुष द्योतक सज्ञाओं के लिये समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

२४२. हिंदी संज्ञाओं के लिंग भेद की व्युत्पत्ति के संबंध में बीम्स[3] ने नीचे लिखा नियम दिया है। 'तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं में प्रायः वही लिंग हिंदी मे भी माना जाता है जो संस्कृत में उनका लिंग रहा हो। संस्कृत नपुंसक लिंग शब्द हिंदी में प्रायः पुल्लिंग हो जाते हैं'। इस नियम के सैकड़ों अपवाद भी हैं। इस सबंध मे बीम्स[4] ने कुछ विस्तृत नियम दिए हैं जिन का सार नीचे दिया जाता है।

---

[1] हा., ई. हि भा., § ३८५।

[2] इस सबंध में अपवादो के लिये दे. गु., हि. व्या., § ४२३।

[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ३०।

[4] बी., क. ग्रै., भा २, § ३२-३३।

हिन्दी की पुल्लिंग आकारान्त संज्ञाओं की व्युत्पत्ति नीचे लिखे रूपों से हो सकती है—

(१) संस्कृत की—अन् अन्तवाली संज्ञाओं से जिनके प्रथमा में आकारान्त रूप होते हैं, जैसे *राजा*।

(२) संस्कृत की—ऋ अन्तवाली संज्ञाओं से, जैसे *कर्ता*, *दाता*।

(३) कुछ विदेशी शब्दों से, जो प्रायः फारसी, अरबी या तुर्की से आये हैं, जैसे *दरिया*, *दरोगा*।

साधारणतया ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं किन्तु कुछ शब्द पुल्लिंग भी पाये जाते हैं। ये निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं:—

(१) संस्कृत— *इन्* अन्तवाले शब्द, जैसे

सं० *हस्तिन्* > हि० *हाथी*,

सं० *स्वामिन्* > हि० *स्वामी*।

(२) संस्कृत के—ऋ अन्त वाले पुल्लिंग शब्द, जैसे सं० *भ्रातृ* > हि० *भाई*, सं० *नप्तृ* > हि० *नाती*।

(३) संस्कृत के इकारान्त पुल्लिंग या नपुसक लिंग शब्द, जैसे सं० *दधि* (नपुं०) > हि० *दही*, स० *भगिनीपति* (पु०) > हि० *बहिनोई*।

(४) संस्कृत के *इक*, *इय* और *ईय* अन्त वाले पुल्लिंग या नपुंसक लिग शब्द, जैसे सं० *पानीयं* > हि० *पानी*, सं० *ताम्बूलिक* > हि० *तमोली*, सं० *क्षत्रिय* > हि० *खत्री*।

(५) संस्कृत के वे पुल्लिंग या नपुंसक लिग शब्द जिनके उपान्त्य में इकार या ईकार हो। अन्त्य ध्वनि के लोप से ये शब्द हिन्दी में ईकारान्त हो जाते हैं, जैसे सं० *जीव* > हि० *जी*।

पुल्लिंग ऊकारान्त शब्द प्रायः संस्कृत ऊकारान्त शब्दों से सबद्ध हैं

तथा पुल्लिंग व्यजनान्त शब्द प्राय सस्कृत के अन्त्य ह्रस्व स्वर के लोप से हिन्दी में आ गये हैं।

हिन्दी मे कुछ आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द हैं। ये व्युत्पत्ति की दृष्टि से नीचे लिखी श्रेणियों मे रक्खे जा सकते हैं—

(१) सस्कृत के आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द, जैसे *कथा, यात्रा*।

(२) सदिग्ध व्युत्पत्ति वाले शब्द, जैसे *डिबिया, चिड़िया*।

ऊपर दिये हुये पुल्लिंग ईकारान्त शब्दों को छोड कर शेष ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं।

सस्कृत के ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द हिन्दी में भी स्त्रीलिंग मे ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे स० *वधू* > हि० *बहू*।

जाति तथा व्यापार आदि से सबध रखने वाले शब्दों मे पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग रूप बना लिये जाते हैं।[1] पुल्लिंग आकारान्त शब्द स्त्रीलिंग मे ईकारान्त हो जाते हैं, जैसे पु० *लडका* स्त्री० *लडकी*, पु० *घोड़ा* स्त्री० *घोडी*। विशेषणो मे भी यही प्रत्यय लगता है और इसकी व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। बहुत से शब्दों में इन इनी या आनी लगा कर पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग रूप बनाये जाते हैं, जैसे पु० *धोबी* स्त्री० *धोबिन*, पु० *हाथी* स्त्री० *हथिनी*, पु० *पडित* स्त्री० *पडितानी*। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये प्रत्यय स० इन (पु०) इनी (स्त्री०) से सबद्ध हैं किन्तु हिन्दी मे ये स्त्रीलिंग के अर्थ मे ही व्यवहृत होते हैं। सस्कृत मे जिन शब्दों में ये नहीं भी लगते हैं हिन्दी मे उनमे भी लगा दिए जाते हैं। विदेशी शब्दों तक मे इनको लगा कर स्त्रीलिंग रूप बना लेते हैं, जैसे पु० *मुगल* स्त्री० *मुगलानी*, पु० *मेहतर* स्त्री० *मेहतरानी*।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके लिंग मे परिवर्तन हो गया है—सस्कृत में इनका जो लिंग था हिन्दी मे उससे भिन्न लिंग मे ये शब्द व्यवहृत होते हैं, जैसे[2]

---

[1] बी, क ग्रै, भा २, § ३५।

[2] बी, क ग्रै, भा २, § ३६।

सं०	हि०
देह (पु०)	देह (स्त्री०)
बाहु (पु०)	बांह (स्त्री०)
अक्षि (न०)	आंख (स्त्री०)
विष (न०)	विष (पु०)

३. वचन

२४३. प्रा० भा० आ० में तीन वचन थे—एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन। म० भा० आ० काल के प्रारम्भ में ही द्विवचन समाप्त होगया था। आ० भा० आ० में एक वचन और बहुवचन ये दो ही वचन रह गये हैं और प्रवृत्ति केवल एक ही वचन रखने की ओर मालूम पड़ती है।

हिन्दी मे बहुवचन के रूप बहुत सरल ढंग से बनते हैं।

(१) पुल्लिंग व्यंजनान्त तथा कुछ स्वरान्त संज्ञाओं मे प्रथमा एकवचन तथा बहुवचन के रूप समान होते हैं, जैसे

एक०	बहु०
घर	घर
बर्तन	बर्तन
आदमी	आदमी

(२) स्त्रीलिंग व्यंजनान्त संज्ञाओं मे प्रथमा बहुवचन में -एं लगता है, जैसे

एक०	बहु०
रात	रातें
औरत	औरतें

(३) पुल्लिंग आकारान्त शब्दों में प्रथमा बहुवचन मे आ के स्थान मे -ए कर दिया जाता है, जैसे

एक०	बहु०
लड़का	लड़के
साला	साले

(४) स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्दों में प्रथमा बहुवचन में या तो सिर्फ अनुस्वार जोड़ दिया जाता है या ई के स्थान में -इया कर दिया जाता है, जैसे

एक०	बहु०
लडकी	लडकीं या लडकिया
पोथी	पोथीं या पोथिया

(५) अन्य समस्त विभक्तियों के बहुवचन में समान रूप से-ओं लगता है, जैसे घरों, रातों, लड़कों, पोथियों इत्यादि। ईकारान्त शब्दो में ई ह्रस्व हो जाती है और-ओं के स्थान पर-यों हो जाता है।

हिन्दी बहुवचन के चिह्नो मे प्रथमा बहु०-ए के स्थान पर संस्कृत मे पुल्लिंग बहुवचन मे-आ पाया जाता है।[1] सभव है इस परिवर्तन मे, संस्कृत के कुछ सर्वनाम रूपों के बहुवचन के चिह्न-ए का भी प्रभाव रहा हो, जैसे सं० प्रथमा बहु० सर्वे।

हिन्दी प्रथमा बहु०-ए,—इया,—ईय का संबध संस्कृत नपुसक लिंग प्रथमा बहुवचन के—आनि से जोडा जाता है।

स०—आनि > आइं > ऐं > एं, इआ; इ

सं०—आनि > अनि > अन > ओं; इओं

अन्य विभक्तियों के बहुवचन के चिह्न-ओं या—यों का सबंध संस्कृत षष्ठी बहुवचन-आना से है।

---

[1] बी, क ग्रै, भा २, § ४५।

ई. कारक-चिह्न

२४४. सज्ञा के मूलरूप या विकृत रूप में कारक-चिह्न लगा कर हिन्दी विभक्तियों के रूप बनाये जाते हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के सयोगात्मक रूपों के धीरे धीरे घिस जाने पर मध्यकाल के अन्त में सज्ञा का प्रायः मूलरूप भिन्न भिन्न विभक्तियों में प्रयुक्त होने लगा था। ऐसी स्थिति में अर्थ समझने में कठिनाई पड़ती थी इसलिये भिन्न भिन्न कारकों के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये ऊपर से पृथक् शब्द इन मूलरूपों के साथ जोड़े जाने लगे। हिन्दी के वर्तमान कारक-चिह्न मध्यकाल के अन्त में लगाये जाने वाले इन्ही सहकारी शब्दों के अवशेष मात्र हैं। घिसते घिसते ये प्राय· इतने छोटे हो गये हैं कि इनके मूलरूपों को पहचानना प्रायः दुस्तर हो गया है। इसके अतिरिक्त भाषा के साधारण शब्द समूह मे इनका पृथक् अस्तित्व नहीं रह गया है इसी कारण इन्हे सज्ञा के मूलरूपों के साथ लिखने की प्रवृत्ति हो रही है।

भिन्न भिन्न कारकों में प्रयुक्त चिह्न नीचे दिये जाते हैं साथ ही इनकी व्युत्पत्ति पर भी विचार किया गया है।

कर्ता या करण कारक

२४५. हिन्दी में कर्ता के रूपों में कोई भी कारक-चिह्न प्रयुक्त नहीं होता। सस्कृत तथा प्राकृत मे भी अधिकांश सज्ञाओं में प्रथमा के रूपों में परिवर्तन नहीं होता है।

सप्रत्यय कर्ताकारक का चिह्न ने पश्चिमी हिन्दी की विशेषता है, 'बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना, जनना आदि सकर्मक क्रियाओं को छोड़ शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना, छींकना, खांसना आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत से बने कालों के साथ सप्रत्यय कर्ता कारक आता है।'[1]

[1] गु., हि. व्या., § ५१५।

ने कारक-चिह्न की व्युत्पत्ति के सबध में बहुत मतभेद है। बीम्स[1] इस का विचार करण कारक के अन्तर्गत करते हैं और इसे कर्मणि तथा भावे प्रयोग का अर्थ देने वाला बताते हैं। बीम्स का कहना है कि गुजराती जैसी प्राचीन भाषा तक में करण तथा सप्रदान कारकों का एक दूसरे के लिये प्रयोग होता रहा है। नेपाली में भी संप्रदान तथा करण के कारक-चिह्न बहुत मिलते जुलते हैं। नेपाली में सप्रदान में लाई तथा करण में ले का प्रयोग होता है। पुरानी हिन्दी के कर्म कारक के चिह्न नै तथा आधुनिक हिन्दी के कारक-चिह्न ने में भी साम्य है। नें गुजराती मे भी कर्म-सप्रदान के लिये प्रयुक्त होता है। मराठी मे नें करण का चिह्न है। बीम्स इस सब से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वास्तव मे सप्रदान तथा करण के चिह्न व्युत्पत्ति की दृष्टि से समान थे। इस तरह से उनके मतानुसार ने का सबध *लगि*, *लागि* —जैसे शब्दों से है।

ट्रम्प तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि ने का संबंध संस्कृत की अकारान्त सज्ञाओं के करण कारक के चिह्न –एन से है। इस सबंध मे आपत्ति यह की जाती है कि संस्कृत का यह चिह्न प्राकृत के अन्तिम रूपों तथा चन्द के ग्रथ मे भी कुछ स्थलो पर मिलता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे मराठी मे यह एं तथा गुजराती में एं के रूप मे वर्तमान है। इस तरह –एन के न का धीरे धीरे लोप होता गया है फिर –एन का ने होना कैसे सभव है। यदि –एन के स्थान पर संस्कृत में –नेन कोई चिह्न होता तो उससे ने होना सभव था किन्तु ऐसा कोई भी चिह्न सस्कृत या प्राकृत मे नहीं मिलता।

इस व्युत्पत्ति के विरोध मे बीम्स का यह तर्क भी विचार करने के योग्य है कि यदि ने प्राचीन करण कारण के चिह्न का रूपान्तर होता तो पुरानी हिन्दी मे इसके प्रयोग का बाहुल्य होना चाहिये था। वास्तव मे बात उलटी है। पुरानी हिन्दी में ने का प्रयोग बहुत कम मिलता है। आधुनिक हिन्दी मे आकर ही इसका प्रचार अधिक हुआ। संस्कृत के करण कारक का कोई भी

---

[1] बी, क. ग्रै, भा. २ § ५७।

चिह्न हिन्दी में नहीं रह गया था। ऐसी परिस्थिति में बीम्स के मतानुसार १६वीं १७वीं शताब्दी के लगभग संप्रदान-कारक के लिये प्रयुक्त *ने* का प्रयोग (जैसे मैंने देदे) करण कारक की कुछ क्रियाओं के साथ भी होने लगा होगा। हार्नली[1] का कहना है कि संप्रदान के लिये व्रज में *कौं* *को* और मारवाड़ी में *नैं* *ने* का प्रयोग होता था। संभव है *नैं* या *ने* को संप्रदान के लिये अनावश्यक समझ कर इसे सप्रत्यय कर्ता या करण कारक के लिये ले लिया गया हो। प्राचीन संयोगात्मक कारकों के अवशेष यदि आधुनिक भाषाओं में कहीं रह गये हैं तो संयोगात्मक रूपों में ही रह गये हैं। *ने* हिन्दी में पृथक् कारक चिह्न है। बीम्स के मतानुसार इस बात से भी पुष्टि होती है कि *ने* संस्कृत *–एन* का रूपान्तर नहीं है।

ब्लाक ने ग्रियर्सन का मत उद्धृत करते हुये कहा है कि *ने* का संबंध सं० *–तन–* से होना संभव है। वास्तव में *ने* की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। निश्चय पूर्वक इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कर्म तथा संप्रदान

२४६. हिन्दी तथा हिन्दी की बोलियों में कर्म और संप्रदान के लिये प्रायः एक ही प्रकार के कारक-चिह्न प्रयुक्त होते हैं। खड़ी बोली में *को* दोनों विभक्तियों में आता है। संप्रदान में (*के लिये*) रूप विशेष आता है।

ट्रम्प[2] के मतानुसार *को* की उत्पत्ति सं० *कृतं* से हुई है जो प्राकृत में *कितो* > *किओ* हो कर *को* रूप धारण कर सकता है। प्राकृत में वास्तव में *कतं* और *कद* रूप मिलते हैं। इस संबंध में सब से बड़ी कठिनाई हिन्दी के प्राचीन रूप *कहु* के संबंध में है। ट्रम्प का अनुमान है कि *कृतं* की जब *ऋ* का लोप हुआ होगा तब *त* महाप्राण हो गया होगा। यह विचार शैली बहुत मान्य नहीं दिखलाई पड़ती।

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७१।

[2] ट्रम्प, सिन्धी ग्रैमर, पृ० ११५।

हार्नली और बीम्स[1] को का संबंध सं० कक्ष से जोड़ते हैं। चैटर्जी[2] आदि अन्य आधुनिक विद्वान भी इस व्युत्पत्ति को ठीक समझते हैं यद्यपि कृतं वाली व्युत्पत्ति को भी असंभव नहीं मानते। कक्ष > कक्ख > काखं काह > कहुं कहं > कौं > को ये परिवर्तन की संभव सीढ़ियाँ हैं। अर्थ की दृष्टि से भी कक्ष 'बगल में' भी 'निकट, ओर' से अधिक साम्य रखता है। हिंदी बोलियों में को से मिलते जुलते रूपों की व्युत्पत्ति भी कक्ष से ही मानी जाती है।

२४७. हिंदी के लिये के (के) का संबंध प्रायः सं० कृते से जोड़ा जाता है। सत्य जीवन वर्मा[3] के को संबंध कारक के प्राचीन चिह्न केरक का रूपान्तर मानते हैं। इन के मत में को भी केहि का रूपान्तर है जिस में के अंश केरक का विकसित रूप है और हि अंश अपभ्रंश की सप्तमी विभक्ति का चिह्न है। किन्तु को तथा के की व्युत्पत्ति के संबंध में यह मत अन्य विद्वानों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सका है। प्रथम मत ही सर्व मान्य है।

के लिये के लिये अंश का संबंध सं० लग्ने से माना जाता है। हार्नली[4] के अनुसार लिये की उत्पत्ति सं० लब्धे, 'लाभार्थं' से हुई है। किन्तु यह मत सर्व मान्य नहीं है। संभव है कि इसका संबंध प्रा० √ले से हो। हिंदी बोलियों के लगे, लागि आदि रूपों की व्युत्पत्ति भी लिये के ही समान मानी जाती है। सं० लग्ने > प्रा० लग्गे, लग्गि > हि० बो० लागि, लगे ये सभव परिवर्तन हैं।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५६।
हा., ई. हि. ग्रै., § ३७५।
[2] चै., वे. लै., § ५०५।
[3] सत्य जीवन वर्मा : 'हिंदी के कारक चिह्न' शीर्षक लेख
ना. प्र. प., भाग ५, अङ्क ४।
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७५।

२४८. हिंदी बोलियों में प्रयुक्त चतुर्थी के अन्य मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति हार्नली के मतानुसार[1] संक्षेप में नीचे दी जाती है।

हि० बो० ठाईं < अप० प्रा० ठाएि, ठाये < सं० स्थाने;
हि० बो० पाहिं < अप० प्रा० पक्खे,* पाहे* < सं० पक्षे ;
हि० बो० कने < अप० कएो < सं० कर्णे ;
हि० बो० काज < प्रा० कज्जे < सं० कार्ये ;
हि० बो० ताईं, तईं < अप० तरिए, तइए < सं० तरिते ;
हि० बो० बाटे < प्रा० वट्ट, वत्त < सं० वार्त्ते ;
हि० बो० बरे < सं० वरं।

करण तथा अपादान

२४९. करण के चिह्न ने पर विचार किया जा चुका है। उपकरण के लिये हिंदी में से (अव० सें, सन; व्रज० सों सूं; बुंदेली सें) का प्रयोग होता है। यही चिह्न तथा कुछ अन्य विशेष चिह्न अपादान के लिये भी प्रयुक्त होते हैं।

बीम्स के मतानुसार[2] से का वास्तविक अर्थ 'साथ' है, 'अलग होना' नहीं है, जैसे राम से कहता है, चाकू से कलम बनाओ। अतः व्युत्पत्ति की दृष्टि से बीम्स से का सबंध संस्कृत अव्यय सम से जोड़ते हैं। हार्नली[3] से का संबंध प्रा० सतो, सुतो तथा सं० √अस् से लगाते हैं। आजकल प्रायः बीम्स का मत ही मान्य समझा जाता है।

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७५।
[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५८।
[3] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७६।

२५०. केलाग के अनुसार ब्रज तें या ते का संबंध सं० प्रत्यय -तः से है जो अपादान के अर्थ में संस्कृत संज्ञाओं में प्रयुक्त होता था, जैसे सं० पितृतः, ब्रज पिता तें।

संबंध

२५१. संबंध कारक का संबंध क्रिया से न होकर संज्ञा से होता है। इस का स्पष्ट प्रमाण यह है कि हिन्दी मे संबंध सूचक कारक चिह्नों में आगे आने वाली संज्ञा के अनुसार लिंग भेद होता है, जैसे लड़के का लोटा, लड़के की गेंद।

हिन्दी पुल्लिङ्ग एकवचन में का (ब्रज० को या कौ; अव० कर् केर्), बहुवचन में के, तथा स्त्रीलिंग मे की का व्यवहार होता है।

इन रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध मे बीम्स[1] तथा हार्नली[2] एक मत हैं। इनकी धारणा है कि ये समस्त रूप सं० कृतः तथा प्रा० केरो या केरक से संबद्ध हैं। हार्नली के अनुसार क्रमिक विकास नीचे लिखे ढंग से हुआ होगा। सं० कृतः > प्रा० करितो, करिओ, केरको > पुरानी हि० केरओ, केरो,-हि० केर, का।

पिशेल तथा कुछ अन्य सस्कृत विद्वानो की धारणा थी कि हि० केर स० कार्य से निकला है। केलाग[3] के अनुसार हि० कौ या का का सीधा सबंध स० कृतः के प्राकृत रूप किदः या क्दः से हो सकता है। चैटर्जी[4] का का संबध प्रा०-क से करते हैं क्योंकि उनके मतानुसार स०

[1] बी. क. ग्रै., भा. २, § ५९।
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७७।
[3] के., हि. ग्रै., § १५९।
[4] चै., बे. लै., § ५०३।

कृत: के प्राकृत रूप *कअ* से आधुनिक काल तक आते आते *क* बना रहना संभव नहीं प्रतीत होता। साधारणतया बीम्स तथा हार्नली की व्युत्पत्ति अधिक मान्य मालूम होती हैं। के, कि आदि रूप वचन तथा लिंग की दृष्टि से *का* के रूपान्तर मात्र हैं।

अधिकरण

२५२. अधिकरण के लिये हिन्दी में *में* (ब्रज *मैं*) और *पर* (ब्रज *पै*) का प्रयोग सब से अधिक होता है। अधिकरण के लिये कुछ संयोगात्मक प्रयोग हिन्दी बोलियों में पाये जाते हैं।

में की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद नहीं है। *में* का संबंध सं० *मध्ये* > अप० प्रा० *मज्झे*, *मज्झि*, *मज्झहिं* > पुरानी हि० *मांहि*, *महि* से जोड़ा जाता है।[1]

हिन्दी *पर* का संबंध सं० *उपरि* से स्पष्ट ही है। हार्नली[2] सं० *परे* 'दूर' प्रा० *परि* से इसकी व्युत्पत्ति का अनुमान करते हैं।

कारक चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द

२५३. ऊपर दिये हुये कारक-चिह्नों के अतिरिक्त हिन्दी में कुछ संबंध सूचक अव्यय कारकों के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। गुरु[3] के आधार पर इन में से अधिक प्रचलित शब्द व्युत्पत्ति सहित नीचे दिये जाते हैं। ये शब्द संबंध कारक के रूपों में लगाये जाते हैं।

कर्म : *प्रति* (सं०), *तई*;

करण : *द्वारा* (सं०), *जरिये* (अर०), *कारण* (सं०), *मारे* (सं० *मारितेन*);

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६०।

[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७८।

[3] गु., हि. व्या., § ३१५।

संप्रदान : हेतु (सं०), निमित्त (सं०), अर्थ (सं०), वास्ते (अर०);

अपादान : अपेक्षा (सं०), बनिस्बत (फा०), सामने (सं० सन्मुख), आगे (सं० अग्रे), साथ (सं० सार्थ);

अधिकरण : मध्य (सं०), बीच (सं० विच्), भीतर (सं० अभ्यन्तरे), अन्दर (फा०), ऊपर (सं० उपरि), नीचे (सं० नीचैः) पास (सं० पार्श्व)।

२५५. हिंदी में कभी कभी फ़ारसी-अरबी के कुछ कारक आ जाते हैं, जैसे अज़ (अज़ख़ुद), दर (दरहक़ीक़त)[1]। इन का प्रयोग बहुत ही कम पाया जाता है।

[1] गु., हि. व्या., § ३१६।

अध्याय ७

संख्यावाचक विशेषण

अ. पूर्ण संख्यावाचक

२५५ सख्यावाचक विशेषणों में होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का इतिहास विचित्र है। 'हिन्दी ध्वनियों का इतिहास' शीर्षक अध्याय में इन पर कुछ विचार हो चुका है। यहाँ पर एक जगह क्रम बद्ध रूप से एक बार इन सब पर दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। ये विशेषण अन्य हिन्दी शब्दों के समान प्राय· प्राकृतों मे होकर सस्कृत से आये हुये नहीं मालूम पडते बल्कि ऐसा मालूम होता है कि समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विशेषण पाली अथवा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के सदृश किसी अन्य सर्व प्रचलित भाषा से सबध रखते हैं। केवल किन्हीं किन्हीं रूपों मे प्रादेशिक प्राकृत या अपभ्रश की छाप है (जैसे, गुजराती वे, मराठी दोन, बगाली दुइ)।[1] हिन्दी सख्यावाचक विशेषणों का सब से प्राचीन ऐतिहासिक विवेचन बीम्स[2] के ग्रथ में है। चैटर्जी[3] ने इस विषय पर कुछ नई सामग्री तथा अनेक नये उदाहरण दिये हैं। इन दोनों विवेचनों

---

[1] चै, बे लै, § ५११।

[2] बी, क ग्रै, भा २, § २६ २८।

[3] चै, बे लै, भा २, अ ३।

के आधार पर हिन्दी के सख्यावाचक विशेषणों तथा उनमे होने वाले मुख्य-मुख्य परिवर्तनों पर नीचे विचार किया गया है।

२५६. हि० एक < प्रा० एक्क < स० एक। एक वाली संख्याओं में हि० एक के कई रूप मिलते हैं। ग्यारह मे ग्या अंश प्रा० एगा-रूप से प्रभावित हुआ है अर्थात् क का घोष रूप हो जाता है। स० एकादश में आ द्वादश के प्रभाव के कारण माना जाता है। यह आ प्रा० तथा हिन्दी दोनों में चला आया है। संयुक्त संख्याओ मे एक का इक रूप हो जाता है, जैसे इकीस, इकतीस, इकतालीस आदि। यह स्पष्ट ही है कि इन शब्दों में गुण की ध्वनि (ए) मूलध्वनि है तथा मूलस्वर (इ) गुण की ध्वनि के विकार के कारण हुआ है।

२५७. हि० दो < प्रा० दो < स० द्वौ। सं० द्वौ का व अंश प्रा० तथा गुज० के बे मे मिलता है। हिन्दी में भी इसका अस्तित्व संयुक्त संख्याओं मे है, जैसे बारह, बाइस, बत्तीस, बेयालीस इत्यादि। समासों मे दो के स्थान पर दु, दू तथा दो रूप मिलता है, जैसे दुपट्टा, दुमहला, दुमुंहां, दुधारी; दूसरा, दूना; दोहरा, दोनों।

२५८. हि० तीन < प्रा० तिण्णि < सं० त्रीणि। संयुक्त संख्याओं मे ते, तें, ति या तिर रूप मिलते हैं जिन पर सं० त्रि का प्रभाव स्पष्ट है, जैसे तेरह, तेंतीस, तितालीस, तिरपन। ये रूप तिपाई, तिहाई, तेहरा, तियुरी आदि शब्दों में भी मिलते हैं।

२५९. हि० चार < प्रा० चत्तारि < सं० चत्वारि। संयुक्त संख्याओं तथा समासों मे सं० मूल रूप चतुर् तथा प्रा० चउरो का प्रभाव मालूम होता है अतः हिन्दी में चौ, चौं तथा चौर रूप मिलते हैं जैसे, चौदह, चौंतीस, चौरासी। समासों मे चौ रूप अधिक पाया जाता है, जैसे चौमासा, चौपाई, चौपाये, चौपड़, चौपाल, चौबरी, चौसट, चौराहा। नये समासों में चार का भी प्रयोग होता है जैसे, चारपाई, चारखाना।

२६०. हि० पाँच < प्रा० पंच < सं० पंच । कुछ संयुक्त संख्याओं के प्रा० रूप पण्ण तथा पन्न (जैसे, १५ पण्णरह, ३५ पन्नतीस) का प्रभाव हिंदी की भी संयुक्त संख्याओं मे मिलता है, जैसे पन्द्रह, पैंतीस, पैंतालीस, तिरपन । इक्यावन, चौअन आदि संख्याओं मे पन के स्थान में वन या अन हो जाता है । अन्य संयुक्त संख्याओं तथा समासों मे पाँच का पच् रूप हो जाता है, जैसे पचीस, पचपन, पचासी, पचगुना, पचमेल, पचलड़ी । प्रा० पंचरूप हि० पंचायत, पंचमी, पंचवटी, पंचांग, पंचामृत, पंचपात्र आदि प्रचलित तत्सम शब्दों मे अब भी मिलता है । कभी कभी इसका रूप पँच भी हो जाता है, जैसे पँचमेल, पँचमुखी ।

२६१. हि० छ < प्रा० छ < सं० षट् (√ षष्) । हिन्दी और प्राकृत रूप एक हैं यह तो स्पष्ट ही है किन्तु प्राकृत का रूप संस्कृत रूप से कैसे हो गया यह स्पष्ट नही होता । हि० सोलह तथा साठ आदि संख्याओं मे स० ष् के अधिक निकट की ध्वनि पाई जाती है । अन्य संयुक्त संख्याओं में छ या छ्या रूप बराबर मिलता है, जैसे छब्बीस, छत्तीस, छ्यासठ, छ्यानवे । चैटर्जी[1] के मत से छ् का सबंध प्रा० भा० आ० के एक कल्पित रूप क्षष्* या क्षक* से है । जो हो प्राकृत काल के पहिले इसका संबंध ठीक नही जुड़ता ।

२६२. हि० सात < प्रा० सत्त < सं० सप्त । यह सबंध स्पष्ट है । कुछ सयुक्त संख्याओं मे प्रा० सत्त या सत रूप अब भी चला जाता है, जैसे सत्तरह, सत्ताईस, सतासी, सत्तानवे । इस के अतिरिक्त सैं रूप भी मिलता है, जैसे सैंतीस, सैंतालीस । इनमे अनुनासिकता पैंतीस, पैंतालीस आदि के अनुकरण से हो सकती है । सरसठ, या सड़सठ, में सर या सड़ रूप असाधारण है । यह बादवाली सख्या अड़सठ से प्रभावित हो सकता है ।

---

[1] चै, बे लैं, § ५१७ ।

२६३. हि० आठ < प्रा० अट्ठ < सं० अष्ट। संयुक्त संख्याओं में अट्ठ, अठा, अठ आदि रूप मिलते हैं, जैसे अट्ठाईस, अठारह, अठहत्तर। अड़तीस, अड़तालीस, और अड़सठ में अठ का अड़ हो जाता है। इस परिवर्तन का कारण स्पष्ट नहीं है।

२६४. हि० नौ < प्रा० नअ < सं० नव। संयुक्त संख्यायें प्रायः नौ लगा कर नहीं बनाई जातीं बल्कि दहाई की संख्या में सं० एकोन या ऊन (एक कम) > प्रा० ऊण > हि० उन लगा कर बनती हैं, जैसे उन्नीस, उन्तालीस, उनासी आदि। केवल नवासी और निन्यानबे में नौ लगाया जाता है। इन संख्याओं में संस्कृत में भी ऐसा ही होता है जैसे, सं० नवाशीति, नवनवति। निनानबे में निना अंश की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है।

२६५. हि० दस < प्रा० दस < सं० दश। ग्यारह आदि संयुक्त संख्याओं में प्रा० के दह, रह, लह आदि समस्त रूप वर्तमान हैं, जैसे चौदह, अठारह, सोलह। दहाई शब्द में भी दह वर्तमान है। प्रा० में द के र होने का कारण स्पष्ट नहीं है। हिन्दी में र का ल, या ल का ह हो जाना साधारण परिवर्तन है।

दहाई की संख्याओं के नाम प्रायः प्राकृत में हो कर संस्कृत से आये हैं।

२६६. हि० बीस < प्रा० बीसइ < सं० विंशति। उन्नीस में व का न हो गया है। हिन्दी का कोडी शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कोल शब्द माना जाता है। कोल-भाषाओं में बीसी से गिनती होती है। चौबीस और छब्बीस को छोड़ कर इकीस आदि संयुक्त संख्याओं में बीस का ईस रह जाता है, जैसे बाईस, तेईस, पचीस आदि।

२६७. हि० तीस < प्रा० तीसा < सं० त्रिंशत्। संयुक्त संख्याओं में भी तीस रूप रहता है, जैसे इकतीस, बत्तीस, तैंतीस आदि।

२६८. हि० चालीस < प्रा० चत्तालीसा < सं० चत्वारिंशत्। संयुक्त संख्याओं में प्रा० चत्तालीसा के च का लोप हो जाने से चालीस

का *तालीस* और *त* के लुप्त हो जाने से *यालीस* या *श्रालीस* रूपान्तर मिलते हैं, जैसे *उनतालीस*, *इकतालीस*, *ब्यालीस*, *चवालीस* आदि।

२६९. हि० *पचास* < प्रा० *पचासा* < सं० *पंचाशत्*। संयुक्त संख्याओं मे *पचास* के स्थान मे *पन* तथा *वन*, *व* *अन* रूप मिलते हैं। इनका संबंध प्रा० पचासा के प्रचलित रूप *पणासा*, *पन्ना* आदि से मालूम होता है, जैसे हि० *बावन* < प्रा० *बावण्णं*, *तिरपन*, *चौअन*। *उनन्चास* में *पचास* का रूपान्तर वर्तमान है।

२७०. हि० *साठ* < प्रा० *सट्ठि* < सं० *षष्टि*। संयुक्त संख्याओं में *सठ* रूप मिलता है, जैसे *उनसठ*, *इकसठ*, *बासठ* आदि।

२७१. हि० *सत्तर* < प्रा० *सत्तरि* < सं० *सप्तति*। पाली में ही अन्तिम *त* ध्वनि *र* मे परिवर्तित हो गई थी (प्रा० *सत्तति*, *सत्तरि*), किन्तु इसका कारण स्पष्ट नहीं है। चैटर्जी[1] का मत है कि प्राचीन रूप *सत्तति* मे *ति* आप ही *टि* हो गया और *टि*, *ढि* हो कर *रि* हो गया। किन्तु यह कारण बहुत संतोषप्रद नहीं मालूम होता। जो हो हि० सत्तर में र प्राकृत से आया है। संयुक्त संख्याओं मे *सत्तर* के *स* का *ह* हो जाता है, जैसे *उनहत्तर*, *इकहत्तर*, *बहत्तर* आदि। *सतत्तर* में *ह* का लोप हो गया है, तथा अठत्तर में *ह*, *ट* को महाप्राण करके उसमें मिल जाता है।

२७२. हि० *अस्सी* < प्रा० *असीइ* < सं० *अशीति*। संयुक्त संख्याओं में *आसी* या *यासी* रूप मिलता है, जैसे *उनासी*, *इक्यासी*, *ब्यासी* आदि। *अस्सी* में *स* का दोहरा हो जाना संभवतः पंजाबी से आया है।

२७३. हि० *नब्बे* < प्रा० *नब्वए* < सं० *नवति*। संयुक्त संख्याओं में *नवे* रूप मिलता है, जैसे *इक्यानवे*, *ब्यानवे*, *तिरानवे*, *चौरानवे* आदि। *इक्यासी*

---

[1] चै., बे. लै., § ५२८।

आदि रूपों के प्रभाव के कारण कदाचित् इक्यानवे आदि में भी आ आ गया है।

२७४. हि० *सौ* (१००) < प्रा० *सअ*, *सय* < सं० *शत*। संयुक्त संख्याओं मे *सै* रूप भी मिलता है, जैसे *सैकडा*, *एक सै एक*, *चार सै*।

२७५. हि० *हज़ार* (१०००) फ़ारसी का तत्सम शब्द है। सं० *सहस्र* के स्थान पर सं० *दशशत* का प्रचार मध्य युग मे हो गया था। कदाचित् इसी कारण से फ़ारसी का एक शब्द *हज़ार* मुसल्मान काल से समस्त उत्तर भारत में प्रचलित हो गया।

२७६. हि० *लाख* (१००,०००) सं० *लक्ष* से निकला है। समासों में *लख* रूप हो जाता है, जैसे *लखपती*।

२७७. हि० *करोड़* (१०,०००,०००) की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। सं० *कोटि* से मिलता जुलता यह शब्द कभी गढ लिया गया हो तो असभव नहीं।

२७८. हि० *अरब* (१०००,०००,०००) सं० *अर्बुद* से संबंध रखता है। हि० *खरब* सं० *खर्व* (१००,०००,०००,०००) का रूपान्तर है। अरब और खरब का प्रयोग साधारणतया असंख्यता का बोध कराने के लिए किया जाता है।

आ. अपूर्ण संख्यावाचक

२७९. अपूर्ण संख्यावाचक विशेषणों से पूर्ण संख्या के किसी भाग का बोध होता है। हिन्दी तथा प्राचीन रूपों का सबध नीचे दिखलाया गया है।

¼ · हि० *पाव*, *पउआ* < प्रा० *पाव*–, *पाअ*– < सं० *पाद*, *पादिक*।
संयुक्त रूपों मे *पई* रूप भी मिलता है, जैसे *अधपई*।
हि० *चौथाई* सं० *चतुर्थिका* से सबद्ध है।
हि० *आधा* < सं० *अर्द्ध*।
संयुक्त रूपों मे *अध* रूप हो जाता है, जैसे *अधेला*, *अधमेरा*, *अधनर*।

१/३ : हि० *तिहाई* का संबंध सं० *त्रिभागिक* से संभव है।

१ १/२ : हि० डेढ < प्रा० *दिअड्ढ* < सं० *द्वयर्द्ध*।

२ १/२ : हि० *ढाई*, *अढाई* < प्रा० *अड्तीय* < स० *अर्द्ध-तृतीय*; हि० ढाई भी स० *अर्द्ध-तृतीय* से संबद्ध है। केवल अ–का लोप समझ में नहीं आता।

३ १/२ · हि० *अहुठ* (साढ़े तीन) का प्रयोग प्रचलित नहीं है। यह शब्द कदाचित् सं० *अर्द्ध-चतुर्थ* से सबद्ध है। प्रा० में *अड्ढ–चउट्ठ** > *अड्ढ–अउट्ठ** > *अड्ढउट्ठ** आदि रूप संभव हैं। सं० मे फिर से यह शब्द *अध्युष्ठ* के रूप में आ गया है।

+१/४ : हि० *सवा* < प्रा० *सवाअ–* < स० *सपाद*। *सवा* के बहुत रूप रूपान्तर हो जाते हैं, जैसे *सवाया*, *सवाई*, *सवाये*।

+१/२ : हि० *साढे* < प्रा० *सड्ढ* < स० *सार्द्ध*। *साढे* विकृत रूप मालूम होता है।

—१/४ · हि० *पौन* < सं० *पादोन*। केवल *पौन* शब्द ३/४ के लिये प्रयुक्त होता है। अन्य संख्याओं में लगा देने से वह संख्या १/४ से घट जाती है, जैसे *पौने आठ*=७ ३/४।

इ. क्रम संख्यावाचक

२८०. इनका सबंध संस्कृत के प्रचलित क्रम-वाचक रूपों से सीधा नहीं है। संस्कृत के आधार पर नये ढग से ये बाद को बने हैं।

हि० *पहला* < प्रा० पठिल्ल*, पथिल्ल* < सं० *प्र-थ+इल**।

संस्कृत *प्रथम* से आधुनिक *पहला* शब्द की उत्पत्ति सभव नहीं है। बीम्स[1] के मत मे हि० *पहला* सं० *प्रथर** रूप से निकला है।

हि० *दूसरा*, *तीसरा*।

---

[1] बी., क ग्रै, भाग २, § २७।

सं० *द्वितीय*, *तृतीय* से हिन्दी *दूजा*, *तीजा* तो निकल सकते हैं किन्तु दूसरा, तीसरा नहीं निकल सकते। बीम्स[1] इनका संबंध सं० *द्वि+सृतः*, *त्रि+सृतः* से जोड़ते हैं।

हि० *चौथा* < प्रा० चउट्ठ < सं० *चतुर्थ*। तिथि तथा लगान के लिये चौथ रूप प्रयुक्त होता है।

चार की सख्या तक क्रमवाचक विशेषणों की उत्पत्ति भिन्न भिन्न ढंगों से हुई है। इसके आगे –वाँ लगा कर समस्त रूप बनाये जाते हैं, जैसे *पाँचवाँ*, *सातवाँ*, *बीसवाँ* इत्यादि। ये रूप सं०—*तम* से निकले माने जाते हैं।[2]

हि० *छठा* प्रा० मे भी *छठा* था। यह सं० *षष्ठ* का रूपान्तर है।

ई. आवृत्ति संख्यावाचक

२८१. हि० आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण *दुगना*, *तिगना*, *चौगुना*, सं० *गुण* लगा कर बने हैं।

उ. समुदाय संख्यावाचक

२८२. हि० में कुछ समुदायवाचक विशेषण प्रचलित हैं किंतु ये प्रायः अन्य भाषाओं के हैं। कौड़ियाँ गिनने में चार के लिये *गंडा* शब्द आता है। बीसवीं संख्या के लिये *कोड़ी* शब्द का जिक्र किया जा चुका है। बारह के लिये आधुनिक समय मे अंग्रेजी *दर्जन* प्रचलित हो गया है। अंग्रेजी का *ग्रोस* शब्द बारह दर्जन के लिये कुछ प्रचलित हो चला है।

परिशिष्ट

पूर्ण संख्यावाचक

२८३. हिन्दी पूर्ण संख्यावाचक विशेषण तथा उनके संस्कृत तथा प्राप्त

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § २७।

[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § २७।

प्राकृत रूप तुलना के लिये नीचे दिये जाते हैं। प्राकृत रूपों के इकट्ठा करने में हार्नली के व्याकरण[1] से विशेष सहायता मिली है।

हिन्दी	प्राकृत	संस्कृत
(१) एक	एक्क, एक्को, एगो, एओ	एक
(२) दो	दो, दुए, दुये, दोवि; वे	द्वौ (√द्वि)
(३) तीन	तिरिण, तओ	त्रीणि (√त्रि)
(४) चार	चत्तारि, चत्तारो, चउरो	चत्वारि (√ चतुर्)
(५) पाँच	पञ्च	पंच (√पंचन्)
(६) छः	छ	षट् (√षष्)
(७) सात	सत्त	सप्त (√सप्तन्)
(८) आठ	अट्ठ	अष्ट, अष्टौ
(९) नौ	णव, नव, नअ	नव
(१०) दस	दस, दह, डह, रह	दश
(११) ग्यारह	एआरह	एकादश
(१२) बारह	बारह	द्वादश
(१३) तेरह	तेरह	त्रयोदश
(१४) चौदह	चउद्दह	चतुर्दश
(१५) पन्द्रह	पणरह, पणरहो, पण्णारहो	पंचदश
(१६) सोलह	सोलह	षोडश
(१७) सत्रह	सत्तरह	सप्तदश

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § २९७।

पूर्ण संख्यावाचक

हिन्दी	प्राकृत	संस्कृत
(१८) अठारह	अट्ठरह, अट्ठारह	अष्टादश
(१९) उन्नीस	उनवीसइ, उनवीसा, एकूनवीसा, ऊनविंशति, एकोनविंशति	
(२०) बीस	वीसा, वीसइ	विंशति
(२१) इक्कीस	एक्क वीसा	एकविंशति
(२२) बाईस	बावीसं, बावीसा	द्वाविंशति
(२३) तेईस	तेवीसं, तेवीसा	त्रयोविंशति
(२४) चौबीस	चउव्वीसं	चतुर्विंशति
(२५) पच्चीस	पंचवीसां,* पंचवीस*	पंचविंशति
(२६) छब्बीस	छव्वीस	षड्विंशति
(२७) सत्ताईस	सत्तावीसा	सप्तविंशति
(२८) अट्ठाईस	अट्ठावीसा	अष्टाविंशति
(२९) उन्तीस	अगुणतीसा, एकूणतीसा	ऊनत्रिंशत्
(३०) तीस	तीसा, तीसआ	त्रिंशत्
(३१) इकतीस		एकत्रिंशत्
(३२) बत्तीस	बत्तीसा	द्वात्रिंशत्
(३३) तैंतीस	तेत्तीसा	त्रयस्त्रिंशत्
(३४) चौंतीस		चतुस्त्रिंशत्
(३५) पैंतीस	पन्नतीस, पणतीस	पञ्चत्रिंशत्
(३६) छत्तीस		षट्त्रिंशत्
(३७) सैंतीस	सत्ततीस	सप्तत्रिंशत्
(३८) अड़तीस	अट्ठतीसा	अष्टात्रिंशत्

हिन्दी	प्राकृत	संस्कृत
(३९) उन्तालीस		ऊनचत्वारिंशत्
(४०) चालीस	चत्तालीसा	चत्वारिंशत्
(४१) इक्तालीस	एक्कचत्तालीसा	एकचत्वारिंशत्
(४२) व्यालीस	वायालीस	द्वि ,,
(४३) तितालीस	तेश्रालीसा	त्रि ,,
(४४) चवालीस	चोग्रालीसा	चतुश् ,,
(४५) पैंतालीस	पञ्चचत्तालीसा	पञ्च ,,
(४६) छियालीस	*छच्चत्तालीसा	षट् ,,
(४७) सैंतालीस	*सत्तश्रत्तालीस	सप्त ,,
(४८) अडतालीस	अड्याले, अट्ठअत्तालीस	अष्ट ,,
(४९) उन्चास	ऊणपचासा, ऊणपचासा	ऊनपचाशत्
(५०) पचास	पणासा, पंचासा,* पन्ना	पंचाशत्
(५१) इक्यावन		एकपंचाशत्
(५२) बावन	वावण	द्वा ,,
(५३) तिरपन	त्रिप्पण*, तेवण	त्रि ,,
(५४) चौअन	चउप्पण*	चतुः ,,
(५५) पचपन	पंचावण	पञ्च ,,
(५६) छप्पन	छप्पण*	षट् ,,
(५७) सत्तावन	सत्तावण*	सप्त ,,
(५८) अट्ठावन	अट्ठवणं*	अष्ट ,,
(५९) उनसठ		ऊनषष्टि

पूर्ण संख्यावाचक

हिन्दी	प्राकृत	संस्कृत
(६०) साठ	सट्ठि, सट्ठी	षष्टि
(६१) इकसठ		एकषष्टि
(६२) बासठ		द्वा "
(६३) तिरसठ		त्रि "
(६४) चौंसठ		चतुः"
(६५) पैंसठ		पंच "
(६६) छियासठ		षट् "
(६७) सड़सठ	सत्तसट्ठी	सप्त "
(६८) अड़सठ	अट्ठसट्ठी	अष्ट "
(६९) उनहत्तर		ऊनसप्तति
(७०) सत्तर	सत्तरि	सप्तति
(७१) इकहत्तर		एकसप्तति
(७२) बहत्तर		द्वि "
(७३) तिहत्तर		त्रि "
(७४) चौहत्तर		चतुस्"
(७५) पचहत्तर		पञ्च "
(७६) छिहत्तर		षट् "
(७७) सतत्तर		सप्त ,,
(७८) अठत्तर		अष्ट ,,
(७९) उनासी		एकोनाशीति
(८०) अस्सी	असीइ	अशीति

हिन्दी	प्राकृत	संस्कृत
(८१) इक्यासी		एकाशीति
(८२) बयासी		द्व्यशीति
(८३) तिरासी		त्र्यशीति
(८४) चौरासी		चतुरशीति
(८५) पचासी		पञ्चाशीत
(८६) छियासी		षडशीति
(८७) सतासी		सप्ताशीति
(८८) अठासी		अष्टाशीति
(८९) नवासी		नवाशीति
(९०) नव्वे	नउए, नव्वए*	नवति
(९१) इक्यानवे		एकनवति
(९२) बानवे		द्वि ''
(९३) तिरानवे		त्रि ''
(९४) चौरानवे		चतुर् ''
(९५) पंचानवे		पञ्च ''
(९६) छियानवे		षण्णवति
(९७) सत्तानवे	सत्तानउए	सप्तनवति
(९८) अट्ठानवे		अष्टानवति
(९९) निन्यानवे		नवनवति
(१००) सौ	सत, सय, सआ, सअं	शत

पूर्ण संख्यावाचक

हिन्दी	प्राकृत	संस्कृत
१०५ एक सौ पांच	पंचोत्तरसउ	पञ्चोत्तर शत
२०० दो सौ		द्विशत
१,००० हज़ार (दस सौ)		सहस्र
१००,००० लाख (सौ हज़ार)		लक्ष
१००,००,००० करोड़ (सौ लाख)		कोटि
१००,००,००,००० अरब (सौ करोड़)		अर्बुद
१००,००,००,००,००० खरब (सौ अरब)		खर्व

अध्याय ८

सर्वनाम

२८४. हिन्दी सर्वनामों के नीचे लिखे आठ मुख्य भेद हैं—

अ – पुरुषवाचक (मैं, तू)

आ – निश्चयवाचक (यह, वह)

इ – संबधवाचक (जो)

ई – नित्यसंबंधी (सो)

उ – प्रश्नवाचक (कौन, क्या)

ऊ – अनिश्चयवाचक (कोई, कुछ)

ए – निजवाचक (अपना)

ऐ – आदरवाचक (आप)

नीचे इन पर तथा विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों पर व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार किया गया है। हिन्दी सर्वनामों मे प्रायः संज्ञाओं के समान ही कारक चिह्न लगते हैं अतः सर्वनामों की कारक रचना पर विचार करना व्यर्थ होगा।

अ. पुरुषवाचक (मैं, तू)

क. उत्तमपुरुष (मैं)

२८५. उत्तमपुरुष मैं के नीचे लिखे मुख्य रूपान्तर होते हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	मैं	हम
विकृतरूप	मुझ (संप्र० मुझे)	हम (संप्र०) हमें
संबंध कारक	मेरा	हमारा

हि० *मैं* का संबंध संस्कृत तृतीया के रूप *मया* से माना जाता है —सं० *मया* > प्रा० *मइ, मए*; अप० *मइं, मई* > हि० *मैं*। सं० *अहं* से इसका संबंध कुछ भी नहीं है।[1] चैटर्जी के अनुसार *मैं* का अनुनासिक अंश सं० तृतीया-एन के प्रभाव के कारण हो सकता है।[2]

२८६. हि० *मुझ* का संबंध षष्ठी कारक के प्राकृत रूप *मह* के अतिरिक्त एक अन्य रूप *मज्झ* < पा० *मह्यं*, सं० *मह्यं* से किया जाता है। *मुझ* या *मझ* का प्रयोग पुरानी हिन्दी में षष्ठी के अर्थ में भी होता था।[3] *उ* का आगम हि० *तुझ* के प्रभाव के कारण हो सकता है। चतुर्थी में *मुझको* के अतिरिक्त *मुझे* रूप भी प्रयुक्त होता है। यह *ए* विकृत रूप का चिह्न है जो *मुझ* में ऊपर से लगा है।

२८७. हि० *हम* का संबंध प्रा० *अम्हे* या *म्हे* से है जिसके *म* और *ह* में स्थान परिवर्तन हो गया है। इन प्राकृत रूपों की व्युत्पत्ति *अस्मे* से मानी जाती है। यह रूप वैदिक भाषा में वास्तव में मिलता है। कुछ कारकों में संस्कृत में भी इसके रूपान्तर पाये जाते हैं, जैसे *अस्मान्*, *अस्माभिः*। संस्कृत प्रथम पुरुष बहुवचन *वयं* से हि० *हम* का किसी तरह भी संबंध नहीं हो सकता। हि० *हमें* का संबंध प्रा० अप० *अम्हइं* से किया जाता है।[4]

---

[1] बी, क ग्रै, भा. २, § ६३।
[2] चै, बे. लै., § ५३९।
[3] बी, क. ग्रै, भा. २, § ६३।
[4] बी., क. ग्रै., भा २, § ६४।

२८८. ब्रज आदि पुरानी हिन्दी के हौं का संबंध सं० अहं या अहकं* से है। शौरसेनी में इसका रूप अहमं तथा अहअं और अपभ्रंश में हमुं तथा हउं मिलता है। अप० हमुं से ब्रज हउ या हौं रूप होना संभव है।

संबंध कारक को छोड़ कर अन्य कारकों में ब्रज भाषा में एक वचन में मो विकृत रूप मिलता है। बीम्स के मतानुसार इसका संबंध सं० षष्ठी के मम रूप से है।[1] प्रा० मे षष्ठी में मम, मह, मंझ तथा मे रूप मिलते हैं। इनके अतिरिक्त मह रूप भी पाया गया है। अप० में यही महु हो जाता है। महु से मौं तथा मो हो सकना असंभव नहीं है।

ख. मध्यमपुरुष (तू)

२८९. मध्यमपुरुष सर्वनाम के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	तू	तुम
विकृतरूप	तुझ (संप्र० तुझे)	तुम (संप्र० तुम्हें)
संबंध कारक	तेरा	तुम्हारा

हि० तू का संबंध सं० त्व > प्रा० तुम, तुअं > अप० तुहं से है।

ब्रज आदि पुरानी हिन्दी का तैं रूप हिन्दी मैं की तरह सं० त्वया > प्रा० तइ, तए > अप० तइ से संबंध रखता है।

२९०. हि० तुझ का संबंध प्राकृत के षष्ठी के तुह के रूपान्तर तुज्झ से माना जाता है। प्राकृत के पूर्व संस्कृत में इस तरह के रूप नहीं मिलते। हि० तुझ में ए विकृत रूप का चिह्न है।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३।

ब्रज० तो अप० तुहं > सं० तव से निकला माना जाता है।

२९१. हि० तुम का संबंध प्रा० तुम्हे, तुम्ह < सं० तुष्मे* से माना जाता है। हि० तुम्हें का संबंध प्रा० अप० तुम्हइं से है।

२९२. षष्ठी के मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा रूप विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं अतः साथ में आने वाली संज्ञा के अनुरूप इन के लिंग तथा वचन में भेद होता है। र लगाकर बने हुये षष्ठी के इन सब रूपों का संबंध करकः, करौ, केरा, करा आदि प्राकृत प्रत्ययों के प्रभाव से माना जाता है। उदाहरण के लिये प्रा० मह केरो या मह करो रूप से हि० म्हारो, मारो, मेरा आदि समस्त रूप निकल सकते हैं—

अम्ह करको > अम्ह अरओ > अम्हारौ > हमारो > हमारा ;

तुम्ह करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारौ > तुम्हारो > तुम्हारा।

आ. निश्चयवाचक (यह, वह)

क. निकटवर्ती (यह)

२९३. संस्कृत के अन्यपुरुष के रूप हिन्दी में इस अर्थ में प्रचलित नहीं हैं। हिन्दी में अन्यपुरुष का काम निश्चयवाचक सर्वनामो से लिया जाता है। हिन्दी मे निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम यह के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

यह (इ : य)

	एक०	बहु०
मूलरूप	यह	ये
विकृतरूप	इस (संप्र० इसे)	इन (संप्र० इन्हें)

हि० यह, ये की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। संभव है हिन्दी के ये रूप अपभ्रंश तथा प्राकृत में प्रचलित किन्हीं असाहित्यिक रूपों से निकले हों। हार्नली[1],

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ४३८।

इनका संबंध सं० एष· से जोड़ते हैं। चैटर्जी के मतानुसार निकटवर्ती निश्चयवाचक समस्त रूपों का संबंध सं० मूल शब्द एत- (एष., एषा, एतद्) से है।[1]

हि० इस स्पष्ट रूप से प्रा० अस्स < सं० अस्य से संबद्ध मालूम होता है। चैटर्जी इसका संबंध सं० एतस्य से जोड़ते हैं। हि० इन रूप प्रा० एदिणा, एइणा < सं० एतेन से संबद्ध नहीं हो सकता। इन के -न में सं० संबंध कारक बहुवचन के चिह्न का प्रभाव मालूम होता है।

इसे और इन्हें मूल रूपों के विकृत रूप हैं।

ख. दूरवर्ती (वह)

२९४. हिन्दी दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम वह के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित हैं—

वह (उ : व)

	एक०	बहु०
मूलरूप	वह	वे
विकृतरूप	उस (संप्र० उसे)	उन (संप्र० उन्हें)

सं० तद् (सः, सा, तत्) के रूपों से हिन्दी के इस सर्वनाम का संबंध नहीं है। चैटर्जी[2] के अनुसार हि० वह सं० के कल्पित रूप अव* > प्रा० ओ* से संबंध रखता है। ईरानी में अव और ओ रूप पाये जाते हैं। दर्द भाषाओं में भी ये वर्तमान हैं। यदि यह व्युत्पत्ति ठीक है तो हि० उस का संबंध प्रा० अउस्स* < सं० अवस्य* से जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार वे और उन के संबंध में कल्पनायें की जा सकती हैं। उसे और उन्हें विकृत रूप माने जा सकते हैं। वास्तव में इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

---

[1] चै, बे लै, § ५६६।

[2] चै, बे. लै, § ५७२।

इ. संबंधवाचक (*जो*)

२९५. हिन्दी संबंधवाचक सर्वनामों के रूपान्तर निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप :	जो	जो
विकृतरूप :	*जिस* (संप्र० *जिसे*)	*जिन* (संप्र० *जिन्हें*)

हि० *जो* का संबंध संस्कृत *यः* से है। हि० *जिस* < *यस्य* > प्रा० *जिस्स, जस्स* से संबद्ध है। हि० *जिन* सं० षष्ठी बहुवचन *याना** से निकला माना जाता है यद्यपि साहित्यिक संस्कृत मे येषा रूप प्रचलित है। *जिसे* और *जिन्हें* इस ढग के अन्य प्रचलित रूपों के समान ही बने हैं।

ई. नित्यसंबंधी (*सो*)

२९६. हिन्दी नित्यसबंधी सर्वनाम *सो* का व्यवहार साहित्यिक हिन्दी में कम होता है। इसके स्थान पर प्रायः दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम व्यवहृत होने लगा है। हि० *सो* के निम्नलिखित रूपान्तर संभव हैं।

	एक०	बहु०
मूलरूप :	*सो*	*सो*
विकृतरूप :	*तिस* (संप्र० *तिसे*)	*तिन* (संप्र० *तिन्हें*)

व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिन्दी *सो* का संबंध स० *सः* > प्रा० *सो* से है। पुरानी हिन्दी तथा बोलियों में *सो* का प्रयोग अन्यपुरुष के अर्थ मे बराबर मिलता है। हि० *तिस* का संबध प्रा० *तस्स* < स० *तस्य* से है। हि० *तिन* की उत्पत्ति प्रा० *ताणं* < सं० *ताना** (*तेषा*) से मानी जाती है।

उ. प्रश्नवाचक (*कौन, क्या*)

२९७. हिन्दी प्रश्नवाचक सर्वनाम *कौन* के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप :	कौन	कौन
विकृतरूप :	*किस* (संप्र० *किसे*)	*किन* (संप्र० *किन्हें*)

हि० कौन की व्युत्पत्ति प्रा० कवन, कवण, कोउण < सं० कः पुनः से मानी जाती है। हिन्दी की बोलियों में कौन के स्थान पर को के रूप भी मिलते हैं जिनका संबंध सं० कः के से सीधा है। हि० किस का संबंध प्रा० कस्स < सं० कस्य से स्पष्ट है। हि० किन की उत्पत्ति सं० काना* (केषां) कल्पित रूप से मानी जाती है। *किसे*, *किन्हें* रूप अन्य प्रचलित रूपों के समान बने प्रतीत होते हैं।

हि० नपुंसक लिंग *क्या* की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। सं० किं से इसका संबंध संभव नहीं है।

ऊ. अनिश्चयवाचक (कोई, कुछ)

२९८. हिन्दी अनिश्चयवाचक सर्वनाम कोई के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	कोई	कोई
विकृतरूप	किसी	किन्हीं

हि० कोई की व्युत्पत्ति प्रा० कोवि < सं० कोऽपि से मालूम पड़ती है। हि० *किसी* का संबंध सं० कस्यापि से हो सकता है। हि० *किन्हीं* रूप की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

हि० नपुंसक लिंग कुछ का संबंध सं० किंचिद् या कश्चिद् रूप से जोड़ा जाता है। प्रा० में कच्छु* संभावित रूप माना जाता है।

ए. निजवाचक (आप)

२९९. हि० निजवाचक सर्वनाम आप, प्रा० अप्पा, आपा < सं० आत्मन् से निकला है। हि० *अपना* वास्तव में आप का संबंध कारक रूप है किन्तु हिन्दी में निजवाचक होकर स्वतंत्र शब्द हो गया है। इस रूप का संबंध प्रा० अप्पाणो > अप० अप्पाणु जैसे रूपों से माना जाता है। सं० *आत्मा* से संबद्ध प्रा० अत्ता, अत्ताणो रूप आधुनिक भाषाओं में नहीं आ सके हैं। हि० आपस का संबंध प्रा० आपस्स* < सं० आत्मस्य* संभावित रूपों से जोड़ा जाता है।

ऐ. आदरवाचक

३००. व्युत्पत्ति की दृष्टि से आदरवाचक *आप* और निजवाचक *आप* एक ही शब्द हैं। शिष्ट हिन्दी मे मध्यम पुरुष *तू* या *तुम* के स्थान पर प्राय सदा ही आप का व्यवहार होने लगा है।

ओ. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनाम

३०१. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं[1]—

परिमाणवाचक	गुणवाचक
इतना	*ऐसा*
उतना	*वैसा*
तितना	*तैसा*
जितना	*जैसा*
कितना	*कैसा*

व्युत्पत्ति की दृष्टि से परिमाणवाचक रूपों का संबंध सं० *इयत्*, *कियत्* > प्रा० *एत्तिय*, *केत्तिय* आदि से है।[2]—*ना* को बीम्स ने लघुता सूचक अर्थ का द्योतक माना है।[3]

गुण वाचक रूपों का सबध सं० *यादृश्*, *तादृश्* आदि रूपों से जोडा जाता है, जैसे स० *कीदृश्* > प्रा० *केरिसा* > हि० *कैसा*।

---

[1] गु, हि व्या, § १४१।
[2] हा, ई हि ग्रै, § २९६।
[3] बी, क ग्रै, भा २ § ७४।

अध्याय ९

क्रिया

अ. संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा हिन्दी क्रिया[1]

३०२, एक दो कालों के रूपों को छोड़ कर संस्कृत क्रिया पूर्णतया संयोगात्मक थी। छः प्रयोगों, दस कालों तथा तीन पुरुष और तीन वचनों को लेकर प्रत्येक संस्कृत धातु के ५४० (६ × १० × ३ × ३) भिन्न रूप होते हैं। फिर संस्कृत की समस्त धातुओं के रूप समान नहीं बनते। इस दृष्टि से संस्कृत की २००० धातुयें दस श्रेणियों में विभक्त हैं जिन्हें गण कहते हैं। एक गण की धातुओं के रूप दूसरे गण की धातुओं से भिन्न होते हैं। इस तरह संस्कृत क्रिया का ढंग बहुत पेचीदा है।

यह अवस्था बहुत दिन नहीं रह सकती थी। म० भा० आ० काल में आते आते क्रिया को बनावट सरल होने लगी। यद्यपि म० भा० आ० में क्रिया संयोगात्मक ही रही किन्तु पाली क्रिया में उतने रूप नहीं मिलते जितने संस्कृत में पाये जाते हैं। दस गणों में से पाँच (१, ४, ६, ७, १०) के रूप पाली में इतने मिलते जुलते होने लगे कि इन्हें साधारणतया एक ही गण माना जा सकता है। शेष गणों के रूपों पर भी भ्वादिगण (१) का प्रभाव अधिक पाया जाता है। संस्कृत की धातुयें भ्वादिगण में सब से अधिक संख्या

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, अ. १।

में पाई जाती हैं। संभवतः भ्वादिगण का अन्य गणों के रूपों पर अधिक प्रभाव का यही कारण रहा हो। इसके अतिरिक्त तीन वचनों में से द्विवचन पाली से लुप्त होगया और छः प्रयोगों मे से आत्मनेपद और परस्मैपद मे अन्तिम का प्रभाव विशेष हो जाने से वास्तव में पाँच ही प्रयोग पाली मे रह गये। संस्कृत के लुट् और लृङ् के निकल जाने से पाली में लकारों की सख्या भी दस से आठ रह गई। इस तरह किसी एक धातु के पाली में साधारणतया २४० (५ × ८ × २ × ३) ही रूप हो सकते हैं।

प्राकृतों की क्रिया सरलता मे एक कदम और आगे बढ़ गई। महाराष्ट्री में गणों का प्रायः अभाव है समस्त क्रियायें साधारणतया प्रथम भ्वादिगण के समान रूप चलाती हैं। छः प्रयोगों में से केवल तीन—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा प्रेरणार्थक—रह गये। द्विवचन तो लौट कर आया ही नहीं। कालों में केवल चार—वर्तमान, आज्ञा, भविष्य तथा कुछ विधि के चिह्न रह गये। कालों के कम हो जाने से कृदन्त के रूपों का व्यवहार अधिक होने लगा जिसका प्रभाव आ० आ० भा० की क्रिया के इतिहास पर विशेष पड़ा। अब तक भी क्रिया के अधिकांश रूप संयोगात्मक ही थे यद्यपि इस संबंध में कुछ गड़बड़ी शुरू हो गई थी।

प्रा० तथा म० आ० भा० की क्रिया के विकास के संबंध मे सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सस्कृत, पाली तथा प्राकृत तीनों मे क्रिया संयोगात्मक ही रही किन्तु रूपों को संख्या मे क्रमशः कमी होती गई। जब प्रत्येक प्रयोग, काल तथा वचन आदि के अर्थों को व्यक्त करने के लिये धातु के पृथक् पृथक् रूप नहीं रह गये तब वियोगात्मक ढंग से नये रूपों का बनाया जाना स्वाभाविक था। यह अवस्था हमे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में आकर मिलती है।

अन्य आ० भा० आ० भाषाओं की क्रियाओं की तरह ही हिन्दी क्रिया के रूपान्तरों का ढंग भी अत्यन्त सरल है। पाँच धातुओं को छोड़ कर शेष हिन्दी धातुओं मे संस्कृत के गणों के समान किसी प्रकार का भी श्रेणी विभाग नहीं है। प्रयोगों के भावों को प्रकट करने का ढंग भी हिन्दी का अपना नया

है। इसकी सहायता से हिन्दी में प्रयोगों के भाव स्पष्ट रूप से किन्तु सरलता-पूर्वक प्रकट हो जाते हैं। ये रूप संयोगात्मक हैं। कालों की संख्या पन्द्रह के लगभग है किन्तु ये प्राय: कृदन्त अथवा कृदन्त और सहायक क्रिया के संयोग से बनते हैं। संस्कृत कालों से विकसित काल हिन्दी में दो ही तीन हैं। म०भा० आ० भाषाओं के समान हिन्दी में एकवचन और बहुवचन ये दो ही वचन हैं जिनके तीन पुरुषों मे तीन तीन रूप होते हैं। सब से बड़ी विशेषता यह है कि हिन्दी क्रिया के रूपों की बनावट बहुत बड़ी संख्या में वियोगात्मक होगई है। शुद्ध संयोगात्मक रूप बहुत कम मिलते हैं। कुछ में दोनों प्रकार के रूपों का मिश्रण है। इस संबंध में विस्तार पूर्वक आगे विचार किया जायगा।

आ. धातु

३७३. धातु क्रिया के उस अंश को कहते हैं जो उसके समस्त रूपान्तरों में पाया जाता हो, जैसे *चलना*, *चला*, *चलेगा*, *चलता* आदि समस्त रूपों में *चल्* अंश समान रूप से मिलता है अतः *चल्* धातु मानी जायगी। धातु की धारणा वैयाकरणों के मस्तिष्क की उपज है। यह भाषा का स्वाभाविक अंग नहीं है। क्रिया के –*ना* से युक्त साधारण रूप से –*ना* हटा देने पर हिन्दी धातु निकल आती है, जैसे *खाना*, *देखना*, *चलना* आदि में *खा*, *देख*, *चल* धातु हैं।

[1] वैयाकरणों के अनुसार संस्कृत धातुओं की संख्या लगभग २००० मानी जाती है। इनमे से केवल ८०० का प्रयोग वास्तव मे प्राचीन साहित्य में मिलता है। इन ८०० मे २०० के लगभग तो केवल वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों में प्रयुक्त हुई हैं, ५०० वैदिक और संस्कृत दोनों साहित्यों मे मिलती हैं और १०० से कुछ अधिक केवल संस्कृत मे मिलती है। म० भा० आ० में आते आते इन ८०० धातुओं की संख्या और रूपो में परिवर्तन हुआ। जैसा ऊपर कहा जा चुका है वैदिक काल की लगभग २०० धातुयें संस्कृत काल में ही लुप्त हो चुकी

---

[1] चै., बे. लै., § ६१४।

थीं। आगे चल कर संस्कृत में प्रयुक्त धातुओं में से भी बहुतों का प्रचार नहीं रहा। प्राचीन धातुओं के आधार पर कुछ नई धातुयें भी बन गईं तथा कुछ बिलकुल नई धातुयें तत्कालीन प्रचलित भाषाओं से भी आ गईं। प्राकृत धातुओं की ठीक ठीक गणना अभी कदाचित् नहीं हो पाई है।

हार्नली[1] के अनुसार हिन्दी धातुओं की संख्या लगभग ५०० है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी धातुयें दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं—मूलधातु और यौगिकधातु। हिन्दी मूलधातु वे हैं जो संस्कृत से हिन्दी में आई हैं। हार्नली के अनुसार इनकी संख्या ३९३ है। मूल धातुओं में भी कई वर्ग किये जा सकते हैं। कुछ मूल धातुयें संस्कृत धातुओं से बिलकुल मिलती जुलती हैं (हि० *खा* < सं० *खाद्*), कुछ में संस्कृत के किसी विशेष गण के रूप का प्रभाव पाया जाता है या गण परिवर्तन हो जाता है (हि० *नाच* < सं० *नृत्-य*) और कुछ में वाच्य का परिवर्तन मिलता है (हि० *बेच* < सं० *विक्रि-य*)। इस दृष्टि से हार्नली ने मूल धातुओं को सात वर्गों में रक्खा है। चैटर्जी[2] मूल धातुओं को निम्नलिखित चार मुख्य वर्गों में रखते हैं—

(१) वे मूल धातुयें जो प्रा० भा० आ० से आई हैं (तद्भव)।

(२) वे मूल धातुयें जो प्रा० भा० आ० की धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों से आई हैं (तद्भव)।

(३) वे मूल धातुयें जो आधुनिक काल में संस्कृत से लेली गई हैं (तत्सम या अर्द्ध तत्सम)।

(४) वे मूल धातुयें जिनकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है। ये सब देशी हों यह आवश्यक नहीं है।

---

[1] हार्नली, 'हिन्दी रूट्स', जर्नल आव द एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल, १८८०, भाग १।

[2] चै., बे. लै., § ६१५।

हिन्दी यौगिक धातुयें वे कहलाती हैं जो संस्कृत धातुओं से तो नहीं आई हैं किन्तु जिनका संबंध या तो संस्कृत रूपों से है और या वे आधुनिक काल मे गढी गई हैं। ये तीन वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—

(१) नाम धातु (हि० जम < सं० जन्म)।

(२) संयुक्त धातु (हि० चुक < सं० च्युत् + कृ)।

(३) अनुकरण मूलक, अथवा एक ही धातु को दोहरा कर बनाई हुई धातुये (हि० फूकना, फड़फड़ाना)।

हार्नली के अनुसार हिन्दी यौगिक धातुओं की संख्या ३८९ है।

मूल और यौगिक धातुओं के अतिरिक्त कुछ विदेशी भाषाओं की धातुयें तथा शब्द हिन्दी मे धातुओं के समान प्रयुक्त होने लगे हैं।

इ. सहायक क्रिया[1]

३०४. हिंदी की काल रचना में कृदन्त रूपों तथा सहायक क्रियाओं से विशेष सहायता ली जाती है इसलिये काल रचना पर विचार करने के पूर्व इन पर विचार कर लेना अधिक युक्ति संगत होगा। हिन्दी काल रचना में *होना* सहायक क्रिया का व्यवहार होता है। इसके रूप भिन्न भिन्न अर्थों और कालों में पृथक् होते हैं। *होना* के मुख्य रूप नीचे दिये जाते हैं—

वर्तमान निश्चयार्थ

१	हूं	है
२	है	हो
३	है	है

भूत निश्चयार्थ

१	था	थे

[1] ग्री., क. ग्रै., भा. ३, अ. ४।

२	था	थे
३	था	थे

भविष्य निश्चयार्थ

१	होऊँगा	होवेंगे
२	होगा	होगे
३	होगा	होंगे

वर्तमान आज्ञा

१	होऊँ	हो
२	हो	होओ
३	हो	होवें

भूत संभावनार्थ

१	होता	होते
२	होता	होते
३	होता	होते

भविष्य आज्ञा के अर्थ में मध्यम पुरुष बहुवचन में होना रूप प्रयुक्त होता है। स्त्रीलिंग मे इन में से अनेक रूपों मे परिवर्तन होते हैं।

ये सब रूप हिन्दी में होना क्रिया के रूपान्तर माने जाते हैं किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से इनका संबंध संस्कृत की एक से अधिक क्रियाओं से है।

३०५. हूँ आदि वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों का संबंध सं० √ अस् से माना जाता है, जैसे हि० हूँ० (बो० हौं) < प्रा० अम्हि, अस्मि, < सं० अस्मि; हि० है (बो० आहि) < प्रा० अत्थि, अस्थि < सं० अस्ति। इस क्रिया से बने हुये हिन्दी बोलियों के अनेक रूपों में तथा कुछ अन्य प्रा० भा० आ० भाषाओं के रूपों में भी √ अस् का अ- वर्तमान है। खड़ी बोली हिन्दी में यह लुप्त होगया है।

३०६. *था* आदि भूत निश्चयार्थ के रूपों का संबंध सं० √स्था से माना जाता है जैसे,

हि० *था* < प्रा० *थाइ ठाइ* < सं० *स्थित* ।

३०७. हि० √ *होना* के शेष समस्त रूपों का संबंध सं० √ भू से माना जाता है जैसे,

हि० *होता* < प्रा० *होन्तो–* < सं० *भवन्* ।

हि० *हुआ* (बो० *हुयो*, *भयो*) < प्रा० *भविओ* < सं० *भवित* ।

३०८. पूर्वी हिन्दी की कुछ बोलियों में पाये जाने वाले बाटे आदि रूपों का संबंध सं० √वृत् से जोड़ा जाता है, जैसे हि० *बाटे* < प्रा० *वट्टइ* < सं० *वर्तते* ।

हि० *रहना* की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। चैटर्जी[1] ने इस संबंध में विस्तार के साथ विचार किया है किन्तु किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। टर्नर[2] इसका सम्बन्ध सं० '*रहित*' आदि शब्दों को √रह् धातु से जोड़ते हैं।

पहाड़ी, बगाली, गुजराती, राजस्थानी तथा पुरानी अवधी आदि में पाई जाने वाली छ से युक्त सहायक क्रिया की व्युत्पत्ति प्रा० भा० आ० की कल्पित धातु √ अच्छ्* से मानी जाती है।[3] टर्नर[4] अन्यमतों का खंडन करके सं० *आ* + √क्षे से इसका उद्‌गम समझते हैं। हिन्दी में इसके रूपों का व्यवहार नहीं होता है।

---

[1] चै, बे लै, § ७६८।

[2] टर्नर, नेपाली डिक्शनरी, पृ० ५३१ रहनु।

[3] चै, बे. लै., § ७६६।

[4] टर्नर, नेपाली डिक्शनरी, पृ० १९१ छनु।

ई. कृदन्त

३०९. हिन्दी कालरचना मे वर्तमान कालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्त के रूपों का व्यवहार स्वतन्त्रता पूर्वक होता है।

वर्तमान कालिक कृदन्त धातु के अन्त मे—*ता* लगाने से बनता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत वर्तमान कालिक कृदन्त के—*अन्त* (शतृ प्रत्ययान्त) वाले रूपो से मानी जाती है जैसे,

हि० पचता < प्रा० पचंतो < सं० पचन्

हि० पचती < प्रा० पचती < सं० पचन्ती

३१०. भूतकालिक कृदन्त धातु के अन्त में—*आ* लगाने से बनता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाचक कृदन्त के त, इत (क्त प्रत्ययान्त) वाले रूपों से मानी जाती है जैसे,

हि० चला (बो० चल्यो) < प्रा० चलिओ < चलितः

हि० करा < प्रा० करिओ < सं० कृतः

भोजपुरी आदि बिहारी बोलियो मे भूतकालिक कृदन्त मे —*ल* अन्त वाले रूप भी पाये जाते हैं। इनका सबंध म० भा० आ० की—*इल्ल* तथा प्रा० भा० आ० की—*ल* प्रत्यय से जोड़ा जाता है। इस सबंध में चैटर्जी[1] ने विस्तार के साथ विचार किया है।

३११. हिन्दी में पाये जाने वाले अन्य कृदन्त रूपो की व्युत्पत्ति भी यहाँ ही दे देना उपयुक्त होगा।

पूर्वकालिक कृदन्त अविकृत धातु के रूप मे रहता है या धातु के अन्त में *कर*, *के*, *करके* लगा कर बनता है।

संस्कृत में यह कृदन्त-*त्वा* और-*य* लगा कर बनता है। क्रिया के पहले उपसर्ग आने पर ही संस्कृत में-*य* लगता था किन्तु प्राकृत मे यह भेद भुला

---

१ चै, वे लै, § ६८१-६८८ ।

दिया गया और उपसर्ग न रहने पर भी सं०-*य* से संबंध रखने वाले रूपों का व्यवहार प्रचलित हो गया। इस तरह धातु रूप में पाये जाने वाले हिन्दी पूर्वकालिक कृदन्त का संबंध सं०-*य* अन्त वाले रूप से है चाहे संस्कृत में इन विशेष शब्दों में-*त्वा* ही लगाया जाता हो जैसे,

हि० *सुन* (ब्र० *सुनि*) < प्रा० *सुणिश्र* : सं० *श्रुत्वा*

हि० *सींच* (ब्र० *सींचि*) < प्रा० *सींचिश्र* : सं० *सिक्त्वा*

हिन्दी की बोलियों मे इस प्रकार के इकारान्त संयोगात्मक पूर्वकालिक कृदन्त रूपों का प्रयोग बराबर पाया जाता है। व्यवहार मे आते आते इस इकार का भी लोप होगया और खड़ी बोली में *वह बात सुन सीधा घर गया* इस तरह के वाक्य बराबर व्यवहृत होते हैं। अन्त्य-*इ* के लुप्त हो जाने से क्रिया के धातु वाले रूप और इस कृदन्त के रूप मे कुछ भी भेद नही रह गया अतः ऊपर से *कर, के, कर के* आदि शब्द जोड़े जाने लगे हैं जैसे, *वह बात सुन कर घर गया*। हि० *कर* की व्युत्पत्ति प्रा० *करिश्र* से तथा हि० *के* की व्युत्पत्ति प्रा० *कइय* से है।

३१२, *क्रियार्थक संज्ञा* धातु के अन्त मे-*ना* जोड़ने से बनती है। बीम्स के अनुसार-*ना* का संबंध संस्कृत भविष्य कृदन्त-*अनीय* (ल्युट्) से है जैसे, हि० *करना* < प्रा० *करणश्रं*, *करणीश्र* < सं० *करणीय*।

बोलियों मे एक रूप-*अन* मिलता है, जैसे *देखन* (*देखना*), *चलन* (*चलना*)। इस-*अन* का संबंध संस्कृत क्रियार्थक संज्ञा-*अन* (जैसे सं० *करण, चलन*) से लगाया जाता है। चैटर्जी[1] के मत से हि०-*ना* भी इसी संस्कृत प्रत्यय से संबद्ध है। क्रियार्थक संज्ञा का व्यवहार हिन्दी में भविष्य आज्ञा के लिये भी होता है जैसे, *तुम कल घर जरूर जाना*।

---

[1] चै., बे. लै., § ७४३।

ब्रजभाषा तथा बंगला, उड़िया, गुजराती आदि कुछ अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में-*ब* लगाकर क्रियार्थक संज्ञा बनती है। इसका संबंध संस्कृत कर्मवाच्य भविष्य कृदन्त प्रत्यय-*तव्य* से माना जाता है जैसे, हि० बो० *करब* < प्रा० *करेअव्वं*, *करिअव्वं* < सं० *कर्तव्यम्*। हिन्दी की कुछ बोलियों में भविष्य काल में भी इस-*ब* अन्त वाले रूप का व्यवहार पाया जाता है।

३१३. *कर्तृवाचक संज्ञा* क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में *वाला*, *हारा* आदि शब्द लगा कर बनाई जाती है, जैसे *मरने वाला*, *जाने वाला* आदि। हि० *वाला* का संबंध सं० *पालक* से जोड़ा जाता है तथा हि० *हारक* की व्युत्पत्ति कुछ लोग सं० *धारक* तथा अन्य सं० *कारक* से मानते हैं।

> बोलियों में-*अइया* लगाकर भी कर्तृवाचक संज्ञा बनती है, जैसे *पढ़ैया*, *चढ़ैया* आदि। इसका संबंध सं० कर्तृवाचक संज्ञा की प्रत्यय-*तृ*- +*क* से माना जाता है जैसे, हि० *पढ़ैया* < सं० *पठितृकः*।[1]

३१४. *तात्कालिक कृदन्त* रूप वर्तमानकालिक कृदन्त के विकृत रूप में *ही* लगाकर बनता है, जैसे *आते ही*, *खाते ही* आदि। *अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त*, वर्तमानकालिक कृदन्त का विकृत रूप मात्र है, जैसे *उसे काम करते देर होगई*। *पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त* भूतकालिक कृदन्त का विकृत रूप है, जैसे *उसे गये बहुत दिन होगये*।

उ. कालरचना

३१५. मुख्यकाल तीन हैं—वर्तमान, भूत, भविष्य। निश्चयार्थ, आज्ञार्थ तथा संभावनार्थ इन *तीन मुख्य अर्थों* तथा *व्यापार की सामान्यता*, *पूर्णता*

---

[1] सक., ए. अ., § २८९।

तथा अपूर्णता को ध्यान में रखते हुए समस्त हिन्दी कालों की संख्या १६ हो जाती है। क्रिया की रचना की दृष्टि से इनका संक्षिप्त वर्गीकरण नीचे दिया जाता है।

क. साधारण अथवा मूलकाल

		उदाहरण
(१)	भूत निश्चयार्थ	वह चला
(२)	भविष्य "	वह चलेगा
(३)	वर्तमान संभावनार्थ	अगर वह चले
(४)	भूत "	अगर वह चलता
(५)	आज्ञा	वह चले
(६)	भविष्य आज्ञा या परोक्ष विधि	तुम चलना

ख. संयुक्त काल

वर्तमानकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

(७)	वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ	वह चलता है
(८)	भूत " "	वह चलता था
(९)	भविष्य " "	वह चलता होगा
(१०)	वर्तमान " संभावनार्थ	अगर वह चलता हो
(११)	भूत " "	अगर वह चलता होत

भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

(१२)	वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	वह चला है
(१३)	भूत " "	वह चला था
(१४)	भविष्य " "	वह चला होगा
(१५)	वर्तमान "	अगर वह चला हो
(१६)	भूत "	अगर वह चला होता

३१६. ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी कालों को तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है[1]—

क. संस्कृत कालों के अवशेष काल—इस श्रेणी मे वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा आते हैं।

ख. संस्कृत कृदन्तो से बने काल—इस श्रेणी में भूत निश्चयार्थ, भूत-संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा आते हैं।

ग. आधुनिक संयुक्तकाल—इस श्रेणी मे कृदन्त तथा सहायक क्रिया के संयोग से आधुनिक काल मे बने समस्त अन्य काल आते है।

हिन्दी भविष्य निश्चयार्थ की बनावट असाधारण है। यह इन तीन वर्गों मे से किसी के अन्तर्गत भी नहीं आता है। संस्कृत *गम्* धातु के कृदन्त रूप के संयोग के कारण इसे ख. वर्ग मे रक्खा जा सकता है।

क. संस्कृत कालों के अवशेष

३१७. जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, संस्कृत कालो के अवशेष स्वरूप हिन्दी में केवल दो काल हैं—वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा।

ग्रियर्सन[2] ने इन कालों के संबंध मे विस्तार पूर्वक विचार किया है। उनके मत में हिन्दी वर्तमान संभावनार्थ के रूपों का सबंध संस्कृत के वर्तमान काल के रूपों से है। ग्रियसन के अनुसार तुलनात्मक कोष्ठक नीचे दिया जाता है—

	स०	प्रा०	अप०	हि०
एक० (१)	चलामि	चलामि	चलउ	चलूं
(२)	चलसि	चलसि	चलहि, चलइ	चले
(३)	चलति	चलइ	चलहि, चलइ	चले

[1] थी, क ग्रै, भा २, § ३२।

[2] ग्रियर्सन, रैडिकल ऐन्ड पार्टिसिपियल टेन्सेज, जर्नल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, १८९६, पृ० ३५२-३७५।

बहु०	(१) चलामः	चलामो	चलहुं	चलें
	(२) चलथ	चलह	चलहु	चलो
	(३) चलन्ति	चलन्ति	चलहिं	चलें

३१८. हिन्दी प्रथम पुरुष के रूपों का विकास संस्कृत रूपों से स्पष्ट है। सं० प्रथमपुरुष बहुवचन का त मराठी में अब भी मौजूद है, जैसे म० उठती (वे उठते हैं)।

हिन्दी मध्यम पुरुष के रूपों के विकास के संबंध में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। किन्तु उत्तम पुरुष के हिन्दी रूपों का संबंध संस्कृत रूपों से उतनी सरलता से नहीं जुड़ता। बीम्स[1] के अनुसार इस पुरुष के एकवचन और बहुवचन के रूपों में आपस में परिवर्तन हो गया है जैसे, सं० *चलामः* > प्रा० *चलामु*, *चलांउ** > *चलों*, *चलूं*। इसी प्रकार सं० *चलामि* > प्रा० *चलांइ** > चलैं, चलें। ऐसा भी माना जाता है कि सं० *चलामि* से ही इकार के लोप हो जाने और म के अनुस्वार में परिवर्तित हो जाने से हि० एकवचन *चलूं* बना होगा। ऐसी अवस्था में हिन्दी उत्तमपुरुष बहुवचन का रूप प्रथमपुरुष बहुवचन के रूप से प्रभावित माना जा सकता है। इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। वर्तमान निश्चयार्थ से वर्तमान संभावनार्थ में परिवर्तन आधुनिक माना जाता है।

३१९. ग्रियर्सन के मतानुसार हिन्दी आज्ञा के रूपों का संबंध भी संस्कृत वर्तमान काल के रूपों से ही है किन्तु बीम्स इनका संबंध संस्कृत आज्ञा के रूपों से जोड़ते हैं जो संभव नहीं प्रतीत होता। कदाचित् संस्कृत के वर्तमान और आज्ञा दोनों ही का प्रभाव हिन्दी के आज्ञा के रूपों पर पड़ा है। नीचे संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी के आज्ञा के रूप बराबर बराबर दिये जा रहे हैं—

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ३३।

	सं०	प्रा०	हि०
एक०	(१) चलानि	चलमु	चलूँ
	(२) चल	चलसु, चलाहि, चल	चल
	(३) चलतु	चलदु, चलउ	चले
बहु०	(१) चलाम	चलामो	चलें
	(२) चलत	चलह, चलधं	चलो
	(३) चलन्तु	चलन्तु	चलें

यह ध्यान देने योग्य बात है कि मध्यमपुरुष एकवचन को छोड कर आज्ञार्थ के अन्य हिन्दी रूप वर्तमान संभावनार्थ के ही समान हैं। आज्ञा और संभाव्य भविष्यत् के रूपों का इस तरह का हेल मेल कुछ कुछ पाली प्राकृत में भी पाया जाता है।

आदरार्थ आज्ञा का विशेष रूप हिन्दी मे मध्यम पुरुष बहुवचन मे मिलता है, जैसे *आप मीठा लीजिये*। इसकी व्युत्पत्ति स० आशीलिङ् के चिह्न *–या–* (जैसे दद्यात्) से मानी जाती है। प्राकृत मे यह *–एज्ज*,*–इज्ज* (देज्ज, *दिज्ज*) रूपों मे मिलता है।

३२०. खडी बोली में तो नही किन्तु ब्रज, कनौजी मे जो ह लगा कर भविष्य निश्चयार्थ बनता है वह भी इसी श्रेणी में आता है। ग्रियर्सन के अनुसार दिये हुये नीचे के कोष्ठक से यह संबंध बिलकुल स्पष्ट हो जावेगा—

	स०	प्रा०	अप०	ब्रज
एक०	(१) चलिष्यामि	चलिस्पामि चलिहिमि	चलिस्सउ, चलिहिउ	चलिहौं
	(२) चलिष्यसि	चलिस्ससि चलिहिसि	चलिस्सहि चलिस्सइ चलिहिहि चलिहिइ	चलिहै

(३) चलिष्यति चलिस्सइ चलिस्सहि चलिस्सइ चलिहै
चलिहिइ चलिहिहि चलिहिइ

बहु० (१) चलिष्यामः चलिस्सामो चलिस्सहुं चलिहिहुं चलिहैं
चलिहिमो

(२) चलिष्यथ चलिस्सह चलिस्सहु चलिहिहु चलिहौ
चलिहिह

(३) चलिष्यन्ति चलिस्सन्ति चलिस्सहि चलिहिहिं चलिहैं
चलिहिन्ति

वर्तमान संभावनार्थ के समान यहाँ भी उत्तमपुरुष के एक-वचन और बहुवचन के रूपों में अदल बदल का होना मानना पड़ेगा, अथवा उत्तमपुरुष बहुवचन के रूप पर प्रथमपुरुष के बहुवचन के रूप का भी प्रभाव हो सकता है।

खड़ी बोली हिन्दी में *वर्तमान निश्चयार्थ* नहीं पाया जाता है किन्तु पुरानी साहित्यिक ब्रज में यह काल मिलता है, जैसे *खेलत स्याम अपने रंग*, *बनते आवत धेनु चराये*। यह वर्तमान कालिक कृदन्त है।

३२१. हिन्दी भविष्य निश्चयार्थ देखने में मूल काल मालूम होता है किन्तु वास्तव में यह बाद का बना हुआ काल है। ध्यान देने से मालूम पड़ता है कि इसकी रचना वर्तमान संभावनार्थ के रूपों में *गा, गे, गी, गीं* आदि लगा कर होती है। भविष्य के इस *ग* का संबंध संस्कृत √*गम्* के भूतकालिक कृदन्त *गत* > प्रा० *गदो, गयो, गओ* से जोड़ा जाता है।[1]

इसी प्रकार मारवाड़ी आदि भाषाओं में *ल* अन्त वाले भविष्य में पाये जाने वाले *ल* का संबंध सं० *लग्न* > प्रा० *लग्गो* से जोड़ा जाता है।[2]

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ५४।
[2] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ५५।

ख. संस्कृत कृदन्तों से बने काल

३२२. संस्कृत कृदन्तों से बने हिन्दी कालों का सबंध संस्कृत कालों से सीधा नहीं है। संस्कृत कृदन्तों के आधार पर बने हुये हिन्दी कृदन्तों का प्रयोग आधुनिक समय मे काल के लिये होने लगा। कृदन्तों के रूपो को काल के स्थान पर प्रयुक्त करने का ढंग बहुत पुराना है। स्वयं साहित्यिक संस्कृत में ही बाद को यह ढंग चल गया था। मूल कालों की सख्या मे कमी हो जाने पर प्राकृत मे भी कृदन्तो का इस तरह का प्रयोग बहुत पाया जाता है। आधुनिक काल मे आकर जब प्राचीन कालों के संयोगात्मक रूप नष्टप्राय हो गये थे तब अधिकांश कालों की रचना के निमित्त कृदन्त रूपों का व्यवहार स्वाभाविक है।

केवल मात्र कृदन्तों से बने काल हिन्दी मे तीन हैं—भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा। इनके लिये क्रम से भूतकालिक कृदन्त, वर्तमान कालिक कृदन्त तथा क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग होता है। इन कृदन्तों की व्युत्पत्ति पर ऊपर विचार किया जा चुका है अतः इन कृदन्ती कालों के इतिहास में कोई विशेषता नही रह जाती। मूल कृदन्त के रूपों के बहुवचन मे एकारान्त विकृत रूप (चले, चलते) हो जाते हैं, तथा स्त्रीलिंग एकवचन में ई (चली, चलती) और बहुवचन मे ईं (चलीं, चलतीं) लगाई जाती है। इन कृदन्ती कालों के कारण ही हिन्दी क्रिया मे लिंगभेद पाया जाता है।

संस्कृत कर्मवाच्य भविष्य कृदन्त प्रत्यय -तव्य से संबद्ध ब अन्त वाले भविष्य काल का प्रयोग हिन्दी की अवधी आदि बोलियों मे पाया जाता है।

ग. संयुक्त काल

३२३. हिन्दी के शेष समस्त काल इस श्रेणी मे आते हैं। इनकी रचना वर्तमान या भूतकालिक कृदन्त के रूपों में सहायक क्रिया लगा कर होती है। इन कालों का संबंध संस्कृत के कालों से बिलकुल भी नहीं है केवल क्रिया के

कृदन्त रूप तथा सहायक क्रिया की व्युत्पत्ति संस्कृत रूपों से अवश्य हुई है। इन रूपो का इतिहास कृदन्त तथा सहायक क्रिया शीर्षक विवेचनों में दिखलाया जा चुका है। दोनो को मिलाकर कालरचना के लिये व्यवहार होना आधुनिक है।

ऊ. वाच्य

३२४. हिन्दी मे वाच्य बनाने का ढंग आधुनिक है। मूल क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के रूपों में जाना धातु के आवश्यक रूपों के संयोग से हिन्दी कर्मवाच्य बन जाता है।

सस्कृत में *–य–* लगाकर कर्मवाच्य बनता था। प्राकृतों में यह *–य–* *–इय–* *–इय्य* या *–ईय–* तथा *–इज्ज–* मे परिवर्तित हो गया था। कुछ आधुनिक आर्य भाषाओं मे *–इज्ज–* > *–ईज–* या *–ईअ–* *–इआ–* रूप प्राकृतों से होकर संस्कृत से आये हैं जैसे, सिन्धी *करीजे*, मारवाड़ी, *करीजणो*।[1] पुरानी ब्रजभाषा तथा अवधी में भी संयोगात्मक रूप मिलते हैं, जैसे अवधी *दीजिय, डरिअइ*।[2]

कुछ लोगों के मत मे हिन्दी के आदरसूचक आज्ञार्थ के रूप (*कीजिये* आदि) भी इससे प्रभावित हैं।

–आ– लगा कर कर्मवाच्य बनाने के कुछ उदाहरण बोलियो में पाये जाते हैं, जैसे *तन की तपन बुझाय* (तन की तपन बुझ जाती है), *कहावे* (कहा जाता है)। चैटर्जी[3] के मतानुसार *–आ–* कर्मवाच्य की उत्पत्ति सं० नाम धातु के चिह्न *–आय–* से हुई है।

हिन्दी में भूत निश्चयार्थ काल संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाचक कृदन्त से संबद्ध है। संस्कृत के कर्मणि प्रयोग के चिह्न हिन्दी में अब तक

---

[1] चै., बे. लै., § ६५३।

[2] सक, ए. अ, § २७३।

[3] चै., बे लै., § ६७१।

मौजूद हैं अर्थात् अकर्मक धातुओं में क्रिया का यह रूप कर्ता से संबद्ध रहता है और सकर्मक धातु में कर्म से। पिछली अवस्था में कर्ता करण कारक में रक्खा जाता है—

सं०	हि०
कृष्णः चलितः	*कृष्ण चला*
कृष्णेन पुस्तिका पठिता	*कृष्ण ने पुस्तक पढ़ी*

आधुनिक मागधी भाषाओं में भूतकाल में कर्तरि प्रयोग ही रह गया है। इसी कारण बिहार आदि पूर्वी प्रान्तों के लोग अपनी बोलियों के प्रभाव के कारण हिन्दी में भी यथास्थान कर्मणि प्रयोग नहीं कर पाते हैं। उधर के लोगों के मुँह से *उसने आम खाया* के स्थान पर *वह आम खाया* निकलता है।

ए. प्रेरणार्थक धातु

३२५. संस्कृत मे प्रेरणार्थक (णिजन्त) रूप धातु में *-अय-* लगाकर बनता है। कुछ स्वरान्त धातुओं मे धातु और *-अय-* के बीच में *-प-* भी लगता है। जैसे √*कृ कारयति*, √*हस् हासयति*, किन्तु √*दा दापयति*, √*गै गापयति*। पाली प्राकृत मे अधिकांश प्रेरणार्थक धातुओं मे *-प-* जुड़ने लगा था यद्यपि पाली काल तक यह वैकल्पिक रहा जैसे, सं० *पाचयति*, पाली *पाचयति*, *पाचेति*, *पाचापयति*, *पचापेति*। प्राकृत मे भी प्रेरणार्थक धातु बनाने के दो ढंग थे, एक मे संस्कृत का *अय–ए–* मे परिवर्तित हो जाता था, जैसे सं० *कारयति* > प्रा० *करेइ*, दूसरे ढंग में *–प– –व–* मे बदल जाता था, जिससे प्राकृत में *करावेइ* या *कारावेइ* रूप बनते थे।[1]

हिन्दी में प्रेरणार्थक धातु के चिह्न *–आ– –वा–* प्राचीन चिह्नों के रूपान्तर मात्र हैं। अकर्मक धातुओं मे *–आ–* लगाने से धातु सकर्मक मात्र

---

[1] पी., क. ग्रै., भा. ३, § २६।

होकर रह जाती है अतः ऐसी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप –वा– लगा कर बनते हैं, जैसे *जलना, जलाना, जलवाना; पकना, पकाना, पकवाना।* सकर्मक धातुओं में –आ– या –वा– दोनों चिह्न प्रेरणार्थ का ही बोध कराते हैं, जैसे *लिखना, लिखाना*, या *लिखवाना; करना, कराना*, या *करवाना।* हिन्दी मे वास्तव में –वा– रूप व्युत्पत्ति की दृष्टि से स्पष्ट प्रेरणार्थ है।

ऐ. नामधातु

३२६. नामधातु भारतीय आर्यभाषाओं में प्राचीनकाल से पाये जाते हैं। संज्ञा या विशेषण मे क्रिया के प्रत्यय जोड़ने से हिन्दी नामधातु बनते हैं। हिन्दी नामधातु के मध्य मे आने वाले –आ– का संबंध संस्कृत नामधातु के चिह्न –आय– से जोडा जाता है। इस पर प्रेरणार्थक के –आपय– का प्रभाव भी माना जाता है।[1] जो हो हिन्दी में प्रेरणार्थक –आ– और नामधातु के –आ– के रूप में कोई भेद नहीं रह गया है।

ओ. संयुक्त क्रिया

३२७. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में जो काम प्रत्यय आदि लगा कर *लिया जाता था वह काम अब बहुत कुछ संयुक्त क्रियाओं से होता है।* अन्य आधुनिक भाषाओं के समान हिन्दी में भी संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग बहुत पाया जाता है। हिन्दी संयुक्त क्रियाओं की रचना आधुनिक है अतः इस संबंध मे ऐतिहासिक विवेचन असंभव है। संयुक्त क्रियायें द्राविड़ भाषाओं में भी बहुत प्रचलित हैं किन्तु उन का हिन्दी पर प्रभाव पड़ना कठिन मालूम पड़ता है। हिन्दी संयुक्त क्रियाओं का विस्तृत वर्गीकरण गुरु[2] तथा केलाग[3] के व्याकरणों में दिया हुआ है।

---

[1] चै, बे लै, § ७६५।

[2] गु, हि. व्या, § ३९९-४३३।

[3] के., ई. हि ग्रै, § ३४५-३६५।

शब्द को दोहरा कर बनी हुई कुछ संयुक्त क्रियायें भी हिन्दी मे पाई जाती हैं जैसे, *खटखटाना*, *फड़फड़ाना*, *तिलमिलाना*। ये प्राय: अनुकरण मूलक हैं और ऐतिहासिक व्याकरण की दृष्टि से ऐसी साभ्यास क्रियाये कोई महत्व नही रखती।

अध्याय १०

अव्यय

३२८. व्याकरण के अनुसार अव्यय प्राय: चार समूहों में विभक्त किये जाते हैं--(१) क्रियाविशेषण, (२) समुच्चयबोधक, (३) संबंधसूचक और (४) विस्मयादिबोधक। हिन्दी विस्मयादिबोधक अव्ययों का कोई विशेष इतिहास नहीं है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कुछ शब्द अवश्य रोचक हैं[1] जैसे, हि० दुहाई (दो + हाय), शाबाश (फा० शादबाश)। हि० अरे का संबंध द्राविड़ भाषाओं के अडे रूप से बतलाया जाता है। अधिकांश संबंध सूचक अव्ययों पर विचार 'संज्ञा' शीर्षक अध्याय में 'कारक चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द' नाम के प्रकरण में हो चुका है। अतः इस अध्याय में हिन्दी क्रिया-विशेषण और समुच्चयबोधक अव्ययों के संबंध में ही विचार किया गया है।

अ. क्रियाविशेषण

३२९. क्रियाविशेषणों की उत्पत्ति प्राय: संस्कृत संज्ञाओं अथवा सर्वनामों से हुई है। अर्थ की दृष्टि से ये कालवाचक, स्थानवाचक तथा रीतिवाचक इन तीन मुख्य वर्गों में विभक्त किये जाते हैं। आजकल संस्कृत तथा फारसी अरबी के भी बहुत से शब्द तत्सम या तद्भव रूपों में क्रियाविशेषण के समान हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। इतिहास की दृष्टि से ऐसे शब्द विशेष महत्व नहीं रखते।

---

[1] बी, क. ग्रै., भा. ३, § ८४।

विशेषणों का उच्चारण *यां*, *वां*, *जां*, *तां*, *कां* की तरफ झुकता जाता है। चैटर्जी[1] के अनुसार इन रूपों का संबंध म० भा० भा० के—त्थ < सं०—त्र से है।

व्रज के *इतै*, *जितै*, *तितै*, *कितै* का संबंध सं० *अत्र*, *यत्र*, *तत्र*, *कुत्र* से माना जाता है।

दिशावाचक क्रियाविशेषण—*इधर*, *उधर*, *जिधर*, *तिधर*, *किधर*

३३२. हिन्दी के इन रूपों की व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है। बीम्स ने —*धर* अंश का सम्बन्ध सं० *मुख* के लघुत्व बोधक सम्भावित रूप *मुखर** से किया है, जैसे सं० *मुखर** > *म्हर* (भोज० *एम्हर*, *उम्हर*) > *न्हर* (बिहारी *एहर*) > *न्धर* > *धर*। यह व्युत्पत्ति संतोषजनक नहीं मालूम होती।

रीतिवाचक *यों*, *ज्यों*, *त्यों*, *क्यों* (— *यों* लगाकर)

३३३. बीम्स[2] इन का संबंध सं० *मत्* > प्रा० *मन्तो* से मानते हैं यद्यपि संस्कृत में इस प्रत्यय से बने हुये रूप अर्थ की दृष्टि से परिमाणवाचक होते हैं, जैसे *इयत्*, *कियत्* आदि। ध्वनि साम्य की दृष्टि से बंगाली *केमन्त* आदि तथा अवधी *इमि*, *जिमि*, *तिमि*, *किमि* बीच के रूप मालूम होते हैं।

केलाग[3] हिन्दी के इन रूपों का संबध सं० *इत्थं*, *कथं* जैसे रूपों से मानते हैं किन्तु हिन्दी शब्दों में *य* के आगम का कोई सतोषजनक कारण नही देते। चैटर्जी[4] इन की उत्पत्ति अप० *जैंव*, *तेंव*, *केंव* = *जेवं*, *तेवं*, *केवं* से मानते हैं और इन अपभ्रंश रूपों को प्रा० भा० आ० के *येव**, *तेव**, *केव** संभावित रूपों से संबद्ध करते हैं जो उन के मत में वैदिक *एव* की नकल पर बने होंगे। वास्तव मे इन रूपों की व्युत्पत्ति अत्यन्त संदिग्ध है।

---

[1] चै., बे. लै., § ३०४।
[2] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ८१।
[3] के., हि. ग्रै., § ४९४।
[4] चै., बे. लै., § ६१०।

ख. संज्ञामूलक, क्रियामूलक तथा अन्य क्रियाविशेषण

३३४. सर्वनाममूलक क्रियाविशेषणों के अतिरिक्त मुख्य मुख्य अन्य विशेषणों की सूची नीचे दी जाती है।[१] इनकी व्युत्पत्ति भी यथासभव दिखलाने का यत्न किया गया है।

कालवाचक

हि० *आज* < पा० *अज्ज* < सं० *अद्य*।

हि० *कल*, सं० *कल्य* से निकला है जिसका अर्थ उपाकाल होता है। हिन्दी मे यह शब्द आने वाले तथा गुजरे हुये दोनों दिनो के लिये प्रयुक्त होता है।

हि० *परसों* < स० पर · *श्वस्* बोलियो मे *परौं* रूप अधिक प्रचलित है। हिन्दी मे इसका प्रयोग गुजरे हुये दूसरे दिन के लिये भी होता है। संस्कृत मे इसका अर्थ केवल आने वाला दूसरा दिन था।

हि० *तरसों* या *अतरसों* . परसो के ढंग पर शायद सं० *त्रि* के आधार पर ये रूप गढे गये हैं (स० *त्रि+श्वस्*)।

हि० *नरसो* : चौथे दिन के लिये कभी कभी प्रयुक्त होता है। अन्य+तरसों के मेल से इसकी उत्पत्ति की सभावना संदिग्ध है।[२]

हि० *सवेर अवेर* इनका प्रयोग बोलियों में विशेष होता है। ये शब्द स० *वेला* के साथ *स* तथा *अ* लगा कर बने मालूम होते हैं।

---

[१] हिन्दी बोलियो में पाये जानेवाले क्रियाविशेषणों के लिये देखिये के, हि ग्रै, § ४९९। अवधी क्रियाविशेषणो के लिये देखिये सक, ए. अ, अध्याय ७।

[२] बी, क ग्रै, भा ३, § ८२।

हि० तड़के का सबन्ध √तड़ (टूटना) धातु के पूर्वकालिक कृदन्त अव्यय से लगाया जाता है किन्तु यह व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

हि० भोर शब्द का स० √ भा (चमकना) से संबध सिद्ध नहीं होता।

हि० तुरत तुरत < स० अव्यय त्वरितम्।

हि० झट < स अव्यय झटति।

हि० अचानक की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। कुछ लोग इसका संबंध स० अ + √ चिन्त् 'बिना सोचे' से जोड़ते हैं और कुछ स० चमत्कार > हि० चौंक के निकट इसे बताते हैं। किन्तु दोनो व्युत्पत्तियें अत्यन्त संदिग्ध हैं।

स्थानवाचक

हि० भीतर < स० अभ्यन्तर्

हि० बाहिर < स० बहि

रीतिवाचक

हि० जानो < हि० जानना

हि० मानो < हि० मानना

हि० ठीक का स० √ स्था[1] से संबध संदिग्ध है।

हि० सचमुच का संबध सं० सत्य से है। हिन्दी मे यह रूप दोहरा कर बनाया गया है।

अन्य

हि० हा की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। केलाग इसकी तुलना मराठी क्रिया आहें, आहों से करते हैं।

हि० नहीं को केलाग न + आहि का संयुक्त रूप बताते हैं।[2]

---

[1] के, हि ग्रै, § ४९९।
[2] ,, ,, ,, § ३७२।

आ. समुच्चयबोधक

३३५. नीचे मुख्य मुख्य समुच्चयबोधक अव्यय व्युत्पत्ति सहित दिये जा रहे हैं—

हि० और (प्राचीन रूप अवर, अरु) < सं० अपर (दूसरा)।

हि० *भी* < प्रा० *वि हि* < सं० *अपि हि* ।

हि० पर < सं० परं । इस अर्थ में सं० *वा* तथा अरबी *या* का प्रयोग भी हिन्दी में होता है।

हि० कि कदाचित् फारसी से आया है। सं० *किं* से इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

हि० जो < प्रा० जअ*, जद < सं० *यदि* ।

हि० बरन < सं० *वरन* ।

हि० चाहे < हि० *चाहना* ।

हि० *तो* < सं० *तु* ।

परिशिष्ट

पारिभाषिक शब्द-संग्रह

अ. हिन्दी-अंग्रेजी

अंकित लेख	Inscription
अग्र, अगला	Front
अघोष	Voiceless, breathed
अनुकरणमूलक	Onomatopoetic
अनुनासिक	Nasal
अनुरूपता	Assimilation
अनुलिपि	Transliteration
अन्तर्वर्ती	Intermediate, mediate
अपवाद	Exception
अप्रयुक्त	Obsolete
अभ्यास	Duplication
अर्द्ध-विवृत्	Half open
अर्द्ध-संवृत्	Half close
अर्द्ध-स्वर	Semi vowel
अलिजिह्वा, कौवा	Uvula
अलिजिह्व	Uvular
अल्पप्राण	Un-aspirated

अव्यय	*Indeclinable*
अस्पष्ट ल	Dark *l*
आदि स्वरागम	Prothesis
आधुनिक भारतीय आर्यभाषा	New Indo-Aryan
उच्चस्थानीय स्वर	High vowel
उच्चारण	Pronunciation
उच्चारण स्थान	Place of articulation
उत्क्षिप्त	*Flapped*
उदासीन स्वर	Neutral vowel
उद्धृत शब्द	Loan-word
उपकुल	Sub-family (of speech)
उपशाखा	Sub-branch (of speech)
उपसर्ग	Prefix
उपसर्गात्मक अव्यय	Preposition
उपान्त्य	Penultimate
उपालिजिह्व	*Pharyngal*
ऊष्म	Sibilant
ओष्ठ	Lip
ओष्ठ्य	Labial
औपम्य, सादृश्य	Analogy
कंठ्य	Velar, guttural
कंठ-तालव्य	Gutturo-palatal
कंठ्योष्ठ्य	Gutturo-labial
जिह्वामूलीय	Back guttural
कंपन युक्त	Trilled.
कर्तावाची संज्ञा	Noun of Agency

कारक	Case
काल	Tense
मूलकाल	radical
कृदन्ती काल	participial
सयुक्त काल	periphrastic
काल रचना	formation of tenses
वर्तमान निश्चयार्थ	present indicative
भूत निश्चयार्थ	past indicative
भविष्य "	future indicative
वर्तमान सभावनार्थ	present conjunctive
भूत "	past conjunctive
आज्ञा	imperative
भविष्य आज्ञा	future imperative
वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ	present imperfect indicative
भूत " "	past imperfect indicative
भविष्य " "	future imperfect indicative
वर्तमान " सभावनार्थ	present imperfect conjunctive
भूत " "	past imperfect conjunctive
वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	present perfect indicative
भूत " "	past perfect indicative
भविष्य " "	future perfect indicative
वर्तमान " सभावनार्थ	present perfect conjunctive
भूत " "	past perfect conjunctive
क्रिया	Verb
सकर्मक	transitive
अकर्मक	intransitive

क्रियार्थक संज्ञा	Infinitive, verbal noun
क्रियारूप	Conjugation
क्रियार्थ भेद	Mood
निश्चयार्थ	indicative
संभावनार्थ	contingent
सदेहार्थ	presumptive
आज्ञार्थ	imperative
सकेतार्थ	negative contingent
आदरार्थ आज्ञा	optative
क्रियाविशेषण	Adverb
कुल	*Family (of speech)*
कृदन्त	Participle
वर्तमान कालिक कृदन्त	present participle
भूत कालिक "	past participle
पूर्ण कालिक "	conjunctive participle
केन्द्रवर्ती समुदाय	Central group
खड	Paragraph
घोष	Voiced
घोष स्पर्श	Voiced plosive
जिह्वा	*Tongue*
नोक	tip
जिह्वाग्र	front
जिह्वामध्य	middle
पश्चजिह्वा	back
जिह्वामूल	root
जिह्वाफल	blade

तालव्य	Palatal
तालु	Palate
कठोर	hard
कोमल	soft
कृत्रिम	artificial
दन्त्य	Dental
दन्त्याग्रीय	Pre-dental
दन्त्यमध्यीय	Centro-dental
दन्त्यमूलीय	Post-dental
दन्त्योष्ठ्य	Dento-labial, labio-dental
दीर्घ	Long
द्वयोष्ठ्य	Bilabial
धातु	Root
मूल	*primary*
यौगिक	secondary
नाम	denominative
संयुक्त	compounded and suffixed
अनुकरणमूलक	onomatopoetic
ध्वनि	Sound
ध्वनिविकार संबंधी नियम	Phonetic law
ध्वनिविज्ञान	Phonetics
ध्वनिश्रेणी	Phoneme
ध्वनिसंबंधी, ध्वन्यात्मक	Phonetic
ध्वनिसंबंधी चिह्न	Phonetic sign
ध्वन्यात्मक लेखन या लिपि	*Phonetic transcription*
नामधातु	Denominative

नासिका विवर	Nasal cavity
नियम, व्यापक नियम	Law
निरर्थक, स्वार्थिक	Pleonastic
निम्नस्थानीय स्वर	Low vowel
परसर्ग	Postposition
पश्च, पिछला	Back
पुरुष	Person
उत्तम	first
मध्यम	second
प्रथम	third
पार्श्विक	Lateral
प्रत्यय	Suffix
प्रधान स्वर	Cardinal vowel
प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र	Experimental phonetics
प्राचीन भारतीय आर्यभाषा	Old Indo-Aryan
प्रामाणिक उच्चारण	Standard pronunciation
प्रेरणार्थक धातु	Causative
फुसफुसाहट	Whisper
फुसफुसाहट वाला स्वर	Whispered vowel
बल	Stress
वाक्य बल	sentence stress
अक्षर बल	syllabic stress
शब्द बल	word stress
बल देना	to stress
बली	stressed
बलहीन	unstressed

बोली	Dialect
भारत-ईरानी	Indo-Iranian
भारत-यूरोपीय कुल	Indo European Family
भारतीय आर्य्य भाषा	Indo-Aryan speech
भाषा	Language, speech
भाषा-ध्वनि	Speech sound
भाषण अवयव	Speech mechanism
भाषा विज्ञान	Linguistics, philology, science of language
भाषा तत्वविज्ञ	Philologist
भाषा समुदाय	Group of speech
मध्यकालीन भारतीय आर्य्यभाषा	Middle Indo Aryan
मध्यवर्ती	Inner
महाप्राण	Aspirated
महाप्राणत्व	Aspiration
मात्रा-काल	Quantity (of a vowel)
मिथ्या औपम्य या सादृश्य	False analogy
मिश्रित स्वर	Mixed vowel
मुखरता, व्यक्तता	Sonority
मुखविवर	Mouth cavity
मूल धातु	Primary root
मूर्द्धन्य	Retroflex
मूल रूप	Direct form
मूल शब्द, प्रातिपदिक	Stem
मूल स्वर	Simple vowel
रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय	Formative Affix

लिपि	Script
लिपि चिह्न, अक्षर	Character
लिंग	Gender
लोप	Elision
वंशक्रम	Genealogy
वंशक्रमानुसार वर्गीकरण	Genealogical classification
वचन	Number
वर्ग	Class
वर्गीकरण	Classification
वर्त्स्य	Alveolar
वर्ण	Letter, alphabetic sound
वर्णमाला	Alphabet
वाक्य विन्यास	Construction
कर्तृवाचक वाक्यविन्यास	active construction
कर्म वाचक ”	passive construction
वाक्यांश	Phrase
वाच्य	Voice
कर्तृ	active
कर्म	passive
वाह्य	Outer
विकार	Change
विकृत रूप	Oblique form
विदेशी शब्द	Foreign words
विपर्यय	Metathesis
वियोगात्मक	Analytic
विवृत् (स्वर)	Open (vowel)

विवृत्ति, विच्छेद	Hiatus
विस्मयादि बोधक	Interjection
व्यंजन	Consonants
व्युत्पत्ति	Derivation
शब्द विन्यास	Spelling
शब्द समूह	Vocabulary
शब्दांश, अक्षर	Syllable
एकाक्षरी शब्द	monosyllabic
अनेकाक्षरी शब्द	polysyllabic
शाखा	Branch (of speech)
श्रुति	Glide
पश्चात् श्रुति	off glide
पूर्व श्रुति	on glide
श्वास	Breath
निःश्वास	out
प्रश्वास	in
श्वास नाल	Wind pipe
संकेत	Symbol
संख्यावाचक	Numerals
पूर्णांक संख्यावाचक	cardinal
क्रम संख्यावाचक	ordinal
अपूर्ण संख्यावाचक	fractional
समुदाय संख्यावाचक	multiplicative
संघर्ष	Friction
संघर्षी	Fricative
संज्ञारूप	Declension
संयुक्त क्रिया	Compound verb

संयुक्त व्यंजन	Consonantal group
संयुक्त स्वर	Diphthong
संयोगात्मक	Synthetic
संवृत् (स्वर)	Close (vowel)
समास	Compound
समुच्चय बोधक	Conjunction
सहायक क्रिया	Auxiliary verb
सर्वनाम	Pronoun
पुरुषवाचक	personal
निश्चयवाचक	demonstrative
संबंधवाचक	relative
नित्यसंबंधी	correlative
प्रश्नवाचक	interrogative
अनिश्चयवाचक	indefinite
निजवाचक	reflective
आदरवाचक	honorific
साधारण अनुलिपि	Broad transcription
सानुनासिकता	Nasalization
साभ्यास क्रिया	Duplicated verb
स्थान भेद	Quality (of a vowel)
स्पर्श	Stop
स्पर्श-संघर्षी	Affricate
स्पष्ट ल	Clear *l*
स्फोट	Explosion
स्फोटक	Explosive
स्वतः अनुनासिकता	Spontaneous nasalization

स्वर	Vowel
आदि	initial
मध्य	middle
अन्त्य	final
अग्र	front
अन्तर्	central
पश्च	back
स्वरतंत्री	Vocal chord
स्वरयन्त्र	Larynx
स्वरयंत्रमुख आवर्ण	Epiglottis
स्वरयंत्र मुखी	Glottal
स्वराघात	Accent
बलात्मक	stress
गीतात्मक	musical, pitch
ह्-कार	Aspirate
महाप्राण व्यंजन	aspirated consonant
महाप्राणत्व	aspiration
ह्रस्व	Short

आ. अंग्रेज़ी-हिन्दी

Accent	स्वराघात
stress	बलात्मक
pitch, musical	गीतात्मक
Adverb	क्रियाविशेषण
pronominal	सर्वनाममूलक
Affricate	स्पर्श-संघर्षी

Alphabet	वर्णमाला
alphabetic sound	वर्ण
Alveolar	वर्त्स्य
Analogy	औपम्य, या सादृश्य
Analytic	वियोगात्मक
Aspirate	ह्-कार
aspirated consonant	महाप्राण व्यजन
aspiration	महाप्राणत्व
Anaptyxis	मध्यस्वरागम
Assimilation	अनुरूपता
Auxiliary verb	सहायक क्रिया
Back	पश्च, पिछला
Bilabial	द्व्योष्ठ्य
Branch (of speech)	शाखा
Breath	श्वास
out	नि श्वास
in	प्रश्वास
Breathed	See Voiceless
Cardinal vowel	प्रधान स्वर
Case	कारक
Causative	प्रेरणार्थकधातु
Central group	केन्द्रवर्ती समुदाय
Change	विकार
Character	लिपिचिह्न, अक्षर
Class	वर्ग
Classification	वर्गीकरण
Clear *l*	स्पष्ट ल

Close (vowel)	संवृत् (स्वर)
Compound	समास
Compound verb	संयुक्त क्रिया
Conjugation	क्रिया रूप
Conjunction	समुच्चय बोधक
Consonant	व्यंजन
consonantal group	संयुक्त व्यंजन
Construction	वाक्य विन्यास
active	कर्तृवाचक
passive	कर्म वाचक
Dark *l*	अस्पष्ट ल
Declension	संज्ञा रूप
Denominative	नामधातु
Dental	दन्त्य
Dento labial	दन्त्योष्ठ्य
Derivation	व्युत्पत्ति
Dialect	बोली
Diphthong	सयुक्त स्वर
Direct form	मूल रूप
Duplicated verb	साभ्यास क्रिया
Duplication	अभ्यास
Elision	लाप
Epiglottis	स्वरयंत्रमुख आवर्ण
Exception	अपवाद
Experimental phonetics	प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र
Explosion	स्फोट
Explosive	स्फोटक

False analogy	मिथ्या औपम्य या सादृश्य
Family (of speech)	कुल (भापा-)
Flapped	उत्क्षिप्त
Foreign words	विदेशी शब्द
Formative affix	रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय (रचनात्मक अनुवंध)
Fricative	संघर्षी
Friction	सघर्प
Front	अग्र, अगला
Gender	लिंग
Genealogical classification	वंशक्रमानुसार वर्गीकरण
Genealogy	वंश क्रम
Glide	श्रुति
off-glide	पश्चात् श्रुति
on-glide	पूर्व श्रुति
Glottal	स्वरयंत्रमुखी
Group of speech	भापा समुदाय
Guttural	कंठ्य
gutturo-palatal	कंठ-तालव्य
gutturo labial	कंठ्योष्ठ्य
back-guttural	जिह्वामूलीय
Half-close	अर्द्ध-संवृत्
Half-open	अर्द्ध-विवृत्
Hiatus	विवृत्ति, विच्छेद
High vowel	उच्चस्थानीय स्वर
Indeclinable	अव्यय
Indo-Aryan speech	भारतीय आर्य्यभापा

Indo-European (Family)	भारत-यूरोपीय कुल
Indo-Iranian	भारत-ईरानी
Infinitive	क्रियार्थक संज्ञा
Inner	मध्यवर्ती
Inscription	अंकित लेख
Interjection	विस्मयादिबोधक
Intermediate, mediate	अन्तर्वर्ती
Labial	ओष्ठ्य
Labio-dental	See Dento-labial
Language	भाषा
Larynx	स्वरयन्त्र
Lateral	पार्श्विक
Law	नियम, व्यापक नियम
Letter	वर्ण
Lip	ओष्ठ
Linguistics	भाषा विज्ञान
Loan-word	उद्धृत शब्द
Long	दीर्घ
Low vowel	निम्नस्थानीय स्वर
Mechanism of speech	भाषण अवयव
Metathesis	विपर्यय
Middle Indo-Aryan	मध्यकालीन भारतीय-आर्य्यभाषा
Mixed vowel	मिश्रित स्वर
Mood	क्रियार्थभेद
indicative	सामान्यार्थ, निश्चयार्थ
contingent	संभावनार्थ
presumptive	संदेहार्थ

imperative	आज्ञार्थ
negative contingent	संकेतार्थ
optative	आदरार्थ
Mouth cavity	मुख विवर
Nasal	अनुनासिक
Nasal Cavity	नासिका विवर
Nasalized	सानुनासिक
Nasalization	सानुनासिकता
Neutral vowel	उदासीन स्वर
New Indo-Aryan	आधुनिक भारतीय-आर्यभाषा
Noun of Agency	कर्तृवाची संज्ञा
Number	वचन
Numeral	संख्यावाचक
cardinal	पूर्ण संख्यावाचक
ordinal	क्रम संख्यावाचक
fractional	अपूर्ण संख्यावाचक
multiplicative	समुदाय संख्यावाचक
Oblique form	विकृत रूप
Obsolete	अप्रयुक्त
Old Indo Aryan	प्राचीन भारतीय-आर्य्यभाषा
Open (vowel)	विवृत् (स्वर)
Onomatopoetic	अनुकरण मूलक
Outer	बाह्य
Palatal	तालव्य (कठोर)
Palate	तालु
hard	कठोर
soft	कोमल

artificial	कृत्रिम
Paragraph	खंड
Participle	कृदन्त
present	वर्तमानकालिक
past	भूतकालिक
conjunctive	पूर्वकालिक
Penultimate	उपान्त्य
Person	पुरुष
first	उत्तम
second	मध्यम
third	प्रथम
Pharyngal	उपालिजिह्व
Pitch-accent	See Musical accent
Philologist	भाषा विज्ञानी
Philology	See Linguistics
Phoneme	ध्वनि श्रेणी
Phonetic	ध्वनिसंबंधी, ध्वन्यात्मक
Phonetic Law	ध्वनिविकार संबंधी नियम
Phonetics	ध्वनि विज्ञान
Phonetic sign	ध्वनिसंबंधी चिह्न
Phonetic transcription	ध्वन्यात्मक लेखन या लिपि
Phrase	वाक्यांश
Place of articulation	उच्चारणस्थान
Pleonastic	निरर्थक प्रत्यय, स्वार्थिक
Post-dental	दन्त्यमूलीय
Postposition	परसर्ग
Pre-dental	दन्त्याग्रीय

centro dental — दन्त्यमध्यीय
Prefix — उपसर्ग
Preposition — उपसर्गात्मक अव्यय
Primary roots — मूलधातु
Pronoun — सर्वनाम
personal — पुरुषवाचक
demonstrative — निश्चयवाचक
relative — सबंध वाचक
correlative — नित्यसबधी
interrogative — प्रश्नवाचक
indefinite — अनिश्चयवाचक
reflexive — निजवाचक
honorific — आदरवाचक
Pronunciation — उच्चारण
Prothesis — आदिस्वरागम
Quality (of a vowel) — स्थानभेद
Quantity (of a vowel) — मात्राकाल
Retroflex — मूर्द्धन्य
Rolled — लुठित
Root — धातु
primary — मूल
secondary — यौगिक
denominative — नाम
compound — सयुक्त
onomatopoetic — अनुकरण मूलक
Science of Language — See Linguistics
Script — लिपि

Semi vowel — अर्द्धस्वर
Short — ह्रस्व
Sibilant — ऊष्म
Simple vowel — मूलस्वर
Sonority — मुखरता या व्यक्तता
Sound — ध्वनि
Speech — भाषा
  speech-sound — भाषा-ध्वनि
  speech-mechanism — भाषण-अवयव
Spelling — शब्द विन्यास
Spontaneous Nasalization — स्वतः अनुनासिकता
Standard pronunciation — प्रामाणिक उच्चारण
Stem — मूलशब्द, प्रातिपदिक
Stop — स्पर्श
Stress — बल
  sentence stress — वाक्यबल
  syllabic " — अक्षर "
  word " — शब्द "
  to stress — बलदेना
  stressed — बली
Sub branch — उपशाखा
Sub family — उपकुल
Suffix — प्रत्यय
Syllable — शब्दांश, अक्षर
  monosyllabic — एकाक्षरी
  polysyllabic — अनेकाक्षरी
Symbol — संकेत, प्रतीक

Synthetic	सयोगात्मक
Tense	काल
radical	मूल काल
participial	कृदन्ती काल
periphrastic	सयुक्त काल
formation of tense	काल रचना
present indicative	वर्तमान निश्चयार्थ
past indicative	भूत "
future indicative	भविष्य "
present conjunctive	वर्तमान सभावनार्थ
past conjunctive	भूत "
imperative	आज्ञा
future imperative	भविष्य आज्ञा
present imperfect indicative	वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ
past imperfect indicative	भूत " "
future imperfect indicative	भविष्य " "
present imperfect conjunctive	वर्तमान " सभावनार्थ
past imperfect conjunctive	भूत , "
present perfect indicative	वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ
past perfect indicative	भूत " "
future perfect indicative	भविष्य " "
present perfect conjunctive	वर्तमान " सभावनार्थ
past perfect conjunctive	भूत " "
Tongue	जिह्वा
back	पश्च जिह्वा
blade	जिह्वा फल
front	जिह्वाग्र

middle	जिह्वा मध्य
root	जिह्वामूल
tip	नोक
Transliteration	अनुलिपि
Trilled	कंपनयुक्त
Unaspirated	अल्पप्राण
Unstressed	बलहीन
Uvula	अलिजिह्वा, कौवा
Uvular	अलिजिह्व
Velar	कंठ्य
Verb	क्रिया
transitive	सकर्मक
intransitive	अकर्मक
Verbal noun	क्रियार्थक संज्ञा
Voice	वाच्य
active	कर्तृ
passive	कर्म
Voiced	घोष
voiced plosive	घोष स्पर्श
Voiceless, breathed	अघोष
Vocabulary	शब्दसमूह
Vocal chords	स्वरतंत्री
Vowel	स्वर
initial	आदि
middle	मध्य
final	अन्त्य
front	अग्र

central	अन्तर्
back	पश्च
Whisper	फुसफुसाहट
Whispered vowel	फुसफुसाहट वाला स्वर
Wind-pipe	श्वास नाल

अनुक्रमणिका

सूचना—अंक पृष्ठों के सूचक है।